सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)

Samajik Yatharth Ke Sandrbh Mein 21vi Sadi Ke Punjab Ki Hindi Kavita Ka Vishleshanatmak Adhyayan (2020 tak prakashit Chaynit Kavya Sangrahon Ke Sandrbh Mein)

Thesis Submitted for the Award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

Hindi

By

Preety Gupta

Registration Number: 41800857

Supervised By

Dr. Anil Kumar Pandey

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

PUNJAB

2023

घोषणा – पत्र

मैं प्रीति गुप्ता, शोधार्थी, पीएच. डी. हिंदी प्रमाणित करती हूँ कि ‘सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)’ विषय पर किया गया शोध मेरा मौलिक शोध कार्य है। प्रस्तुत शोध प्रबंध लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच.डी. हिंदी की उपाधि हेतु किया गया है। यह शोध कार्य डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय, सहायक प्राध्यापक, समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब के निर्देशन में पूरा किया गया है।

मैं यह भी प्रमाणित करती हूँ कि मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया शोध प्रबंध आंशिक अथवा पूर्ण रूप से किसी अन्य उपाधि के लिए अन्य किसी विश्वविद्यालय को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

दिनांक: 29.12.2023

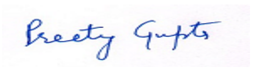

प्रीति गुप्ता (शोधार्थी)

पंजीयन संख्या: 41800857

समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय,

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

प्रमाण– पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी प्रीति गुप्ता ने ‘सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)’ विषयक शोध-प्रबंध मेरे निर्देशन में स्वयं लिखा है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री शोधपरक एवं मौलिक है। मैं इस शोध-प्रबंध को लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच.डी. की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

दिनांक: 29.12.2023

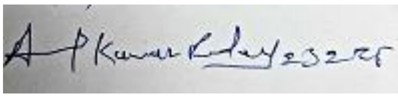

डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, हिंदी-विभाग

समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब।

भूमिका

पिछले कई वर्षों से मेरे मन में पंजाब की हिंदी कविता पर शोध-कार्य करने की प्रबल इच्छा थी। लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी में प्रवेश लेने के उपरान्त जब विषय की खोज शुरू हुई तो लगभग एक वर्ष मैं विषय-खोज में लगी रही। यह तो निर्धारित था कि शोध कार्य पंजाब की हिंदी कविता पर करना है लेकिन विषय स्पष्ट न होने के कारण अनिश्चितता बनी हुई थी। लेकिन इस प्रक्रिया में यह विचार बराबर बना रहा कि वर्तमान परिवेश में जो कुछ हो रहा है, वह इसके केंद्र में रहे। अपने शोध-निर्देशक से चर्चा-परिचर्चा करने पर यह निर्धारित हुआ कि इक्कीसवीं सदी को केंद्र में रखना है लेकिन सम्पूर्ण इक्कीसवीं सदी को रखना असंभव था क्योंकि बहुत कुछ है जो अभी भविष्य के गर्भ में है। इसलिए यह निश्चित हुआ कि 2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य-संग्रहों के सन्दर्भ में ही शोध कार्य करना है। अंततः 'सामाजिक यथार्थ के सन्दर्भ में इक्कीसवीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य-संग्रहों के सन्दर्भ में)' विषय निर्धारित हुआ।

पंजाब प्रदेश से जुड़े लगभग सभी कवियों का अध्ययन किया गया और महत्त्वपूर्ण कवियों का चयन कर उन पर कार्य करना शुरू किया गया। फिर विषय-सामग्री के चयन से लेकर संदर्भ ग्रंथों की खोज के लिए सक्रियता बनी रही। इसी दायरे में शोध संबंधी विषयों को देखते-समझते हुए काफी कुछ नया अनुभव प्राप्त हुए। इसी दौरान विषयों की गंभीरता और गहनता का एहसास भी हुआ। सम्बद्ध साहित्य के सर्वेक्षण से लेकर उसकी प्राप्ति तक के लिए जो उद्यम करना पड़ा वह अनुकरणीय रहा और इसी के परिणाम स्वरूप मैं अपने शोध कार्य में पूर्णता ला सकी।

इस शोध-कार्य को कुल छः अध्यायों में बाँटा गया है। इसमें प्रथम अध्याय 'सामाजिक यथार्थ की अवधारणा का सैद्धांतिक विवेचन' है जिसके अंतर्गत समाज का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसके सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के उद्धरण दिए गए हैं। समाज की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए सामाजिक यथास्थिति से लेकर उसके परिवर्तन तक की प्रक्रिया को ध्यान में रखा गया है और इसके साथ ही सामाजिक विकास के विभिन्न पहलुओं पर भी विचार किया गया है। 'यथार्थ' शब्द प्रायः भारतीय परिवेश के लिए बहुत दिनों तक अनभिज्ञ-सा रहा लेकिन जैसे-जैसे परिस्थितियों का नया दौर आया और चिंतकों का चिंतन भारतीय जनमानस में व्याप्त होने लगा तो इस पर भी गंभीरता से कार्य किया जाने लगा। इस शोध-प्रबंध में समाज की तरह ही यथार्थ शब्द का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं उसके विभिन्न रूपों की व्याख्या की गयी है। इसके अनंतर यथार्थवाद और आदर्शवाद में अंतर भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। समाज और यथार्थ के बाद इस अध्याय के अंतर्गत सामाजिक यथार्थ के संयुक्त अर्थ को देखने-परखने का कार्य किया गया है। इन सबके बाद मानव जीवन के विभिन्न सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में यथार्थबोध का क्या अर्थ हो सकता है, इस पर विचार किया गया है।

इस शोध-प्रबंध के दूसरे अध्याय में सामाजिक यथार्थ के दायरे में 'वैयक्तिक संघर्ष' के अर्थ, स्वरूप और परिभाषा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वैयक्तिक संघर्ष में अस्तित्वबोध की भावना का विवेचन, कुंठा और संत्रास की अभिव्यक्ति, स्वार्थी प्रवृत्तियों का चित्रण, एकाकी जीवन की अभिव्यक्ति, सम्बन्धों में अंतर्द्वंद्व जैसे उपशीर्षक रखकर उनका पंजाब के हिंदी कवियों के चयनित संग्रहों के माध्यम से विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है। कविताओं के उद्धरणों के साथ-साथ

आवश्यकतानुसार विद्वानों के विचार भी रखे गए हैं। मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में जो परिस्थितियाँ, विसंगतियाँ एवं समस्याएँ आती हैं या आ सकती हैं उन्हें भी इस अध्याय के दायरे में रखने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का तीसरा अध्याय 'समकालीन विमर्शों का यथार्थ' है। इस अध्याय के अंतर्गत यह प्रयास किया गया है कि जिन महत्त्वपूर्ण विमर्शों पर पंजाब के हिंदी कवियों ने कार्य किया है, उन्हें प्रकाश में लाया जा सके। विमर्शों की दृष्टि से समकालीन हिंदी कविता-जगत काफी हद तक समृद्ध है लेकिन उसे पंजाब का हिंदी कवि इक्कीसवीं सदी में किस तरह देख रहा है, यह खोजना मेरे लिए उत्सुकता का विषय रहा। इस अध्याय में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, वृद्ध विमर्श एवं पर्यावरण-प्रकृति विमर्श विशेष रूप से शामिल किए गए हैं। दलित व स्त्री विशेष तौर पर उपेक्षित एवं हाशिए पर धकेले गए लोग हैं जिन्होंने अस्मितामूलक विमर्श के माध्यम से अपने अधिकारों के संरक्षण के प्रति जागरूक होकर आततायी शक्तियों का प्रतिरोध शुरू किया व अपनी मुक्ति की आवाज़ उठाई। पंजाब का हिंदी कवि इन प्रवृत्तियों को गंभीरता से देखता है और उसे अपने काव्य का विषय बनाता है। पिछले कुछ दशकों से देखा जा रहा है कि भारत में भी वृद्धाश्रम खोले जाने लगे हैं। वर्तमान समय में वृद्धों की इतनी उपेक्षा हो रही है कि घर पर सभी के रहते हुए भी उनसे बोलने और हाल-चाल लेने वाला कोई नहीं है। यह एक तरह की त्रासदी है जिस पर पंजाब का हिंदी कवि गंभीरता से विचार करता है। पर्यावरण-प्रकृति भी आज के समय में सबसे अधिक त्रासदपूर्ण स्थिति में हैं। पर्यावरण-प्रकृति को शोध का विषय बनाकर इस शोध-प्रबंध को सम्पूर्णता देने का प्रयास किया गया है। इन सभी का विश्लेषण करते समय चयनित काव्य संग्रहों की कविताओं के उद्धरण दिए गए और सही अर्थ में सामाजिक यथार्थ खोजने की कोशिश की गयी।

शोध-प्रबंध का चौथा अध्याय 'अर्थतंत्र का बदलता प्रारूप' है। इस अध्याय में अर्थ-तन्त्र किन नए रूपों में बदल रहा है और उनका यथार्थ क्या है, इसे विश्लेषित किया गया है। भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के दौर में बाज़ार प्रमुख रूप से मनुष्य के मन-मस्तिष्क में किस तरह भरता जा रहा है जिसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य जितना अधिक विकसित हुआ है वह उतना ही अपनी जड़ों से कटता जा रहा है। इस अध्याय में अर्थ-तन्त्र के इस रूप का विशेष तौर पर वर्णन किया गया। श्रमिक और किसान वर्ग की अपेक्षा और विश्वास को भी इस अध्याय में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही अर्थतंत्र के विविध परिदृश्य को रेखांकित करते हुए कार्पोरेट जगत का यथार्थ अभिव्यक्त करने का प्रयास भी किया गया है। इन सभी में मनुष्य जिस तरह से आर्थिक उन्नति कर रहा है, वह विकास है या फिर विनाश, उसके यथार्थ परिदृश्य को देखने का यत्न तो किया ही गया है, आम आदमी की समस्याओं और प्राप्तियों पर भी विचार किया गया है। साथ ही पंजाब की हिंदी कविताओं के माध्यम से उनका समाधान भी तलाशने की कोशिश की गयी है।

इस शोध-प्रबंध का पाँचवा अध्याय है- 'धर्म और संस्कृति' धर्म और संस्कृति इस देश के प्राणतत्त्व हैं। इस अध्याय में धर्म और संस्कृति के यथार्थ को देखने-परखने का प्रयास किया गया है जिसके अंतर्गत धार्मिक विश्वास, सांप्रदायिक समन्वय, रीति-रिवाज व परम्पराएँ आदि उप विषयों के अंतर्गत धर्म एवं संस्कृति का विवेचन विश्लेषण करने का प्रयास हुआ है। पंजाब की हिंदी कविता के उद्धरणों के माध्यम से धर्म और संस्कृति के यथार्थ परिदृश्य का अध्ययन-विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

साहित्यिक विधाओं का अध्ययन करते समय अक्सर यह कहा जाता है कि साहित्य में समाज का सब कुछ चित्रित नहीं हो पाता है। यह भी कहा जाता है कि अधिकांश स्थितियाँ, जिनका चित्रण होता है, काल्पनिक होती हैं। इसीलिए शोध-प्रबंध के अंतिम और छठे अध्याय में व्यावहारिक अध्ययन पर बल देते हुए उनका जीवंत उदाहरण तलाशने की कोशिश की गयी है। इस अध्याय में साक्षात्कार, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, यूट्यूब, सरकारी आँकड़ों और अन्य संचार माध्यमों का सहारा लेते हुए उनके उद्धरणों के माध्यम से पंजाब की हिंदी कविताओं में उठाए गये विषयों तथा समस्याओं की सत्यता को साबित करने का प्रयास गया है। ऐसा करते हुए प्रायः कवि संवेदना और सामाजिक यथार्थ के मध्य शोध प्रक्रिया का पूरा ध्यान रखा गया और प्राप्त निष्कर्ष को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया।

शोध-प्रबंध के अंत में उपसंहार और भावी शोध की तरफ संकेत को प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। उपसंहार के अंतर्गत शोध-प्रबंध में जितने भी कार्य किये गए हैं, उनका परिचयात्मक विवरण रखते हुए शोध-प्रबंध के मंतव्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक अध्याय की संक्षिप्त रूपरेखा भी दी गयी है। भावी शोध संकेत में यह कोशिश की गयी है कि अधिक संभावनाशील एवं उर्वर विषय को लेकर भविष्य में कार्य किया जाए जिससे गुणवत्तापूर्ण मूल्यांकन एवं चयन में सार्थक विवेक का प्रयोग किया जा सके। यह शोध कार्य अपने उद्देश्य में सफल सिद्ध हो और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अपनी तरह का योगदान कर सके, इसकी पूरी कोशिश की गयी है।

आभार-पूर्ति

साहित्य में जो कुछ है वही समाज में दिखता है और समाज में जो कुछ है लगभग वही साहित्य में वर्णित होता है। यह भाव इस तरह एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध है कि इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता है। समाज अपनी संरचना में विविधरंगी है। उसका आदर्श जितना प्रभावित और प्रेरित करता है, यथार्थ उतना ही परेशान और आश्चर्य में डालता है। मनुष्य अपनी विचारों की प्रक्रिया में समाज से रागात्मक संबंध रखता है इसलिए सुख-दुःख, आपदा-विपदा, हास-परिहास और इस तरह की तमाम परस्पर विरोधाभासी प्रक्रिया में अपने संघर्ष को ज़िन्दा रखता है। ये बातें मेरे लिए आश्चर्य से कहीं अधिक शोध का विषय रही हैं। यही भाव पंजाब की हिंदी कविताओं में सामाजिक यथार्थ को देखने और परखने के लिए प्रेरणा का माध्यम बना। पंजाब की हिंदी कविता इसलिए क्योंकि पंजाब मेरी जन्मभूमि होने के कारण यहाँ की सांस्कृतिक भावभूमि और सामाजिक पृष्ठभूमि से मेरा आत्मीय संबंध है। कविताओं के लेखन व पठन में मेरी शुरु से ही रूचि रही है। जब मेरे शोध-निर्देशक ने यह बताया कि शोध की दृष्टि से पंजाब की हिंदी कविता पर अधिक कार्य नहीं हुआ है। शोध के लिए पंजाब की हिंदी कविता का चयन किया जा सकता है तो मैंने यह सुझाव अपनाने तथा इस विषय के साथ आगे बढ़ने का निर्णय किया। इस प्रकिया में कविता के साथ जीवन और समाज के अंतर्संबंध को देखना मेरे लिए बेहद सुखद रहा है।

शोध कार्य एक कठिन कार्य है जिसमें यदि शोध-निर्देशक का समुचित निर्देशन न मिले तो बहुत कुछ अधूरा रह जाता है। मेरे शोध-कार्य के दौरान कोरोना का प्रभाव भी रहा जिससे कि पुस्तकालय आदि में जाने का अवसर कम मिला। शोध सामग्री की उपलब्धता के लिए पत्रिकाओं से लेकर आलोचना-पुस्तकों की ओर रुख

किया जिसमें पर्याप्त सफलता भी मिली। मेरे शोध-निर्देशक डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय जी ने इस दिशा में सदैव मेरा मार्गदर्शन किया। क्या पढ़ना चाहिए और क्या नहीं, किन सन्दर्भों को शामिल करना है और किन्हें नहीं, हर पल और हर क्षण उनका सहयोग मिलता रहा, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। उनका सौम्य व्यवहार और कुशल निर्देशन ही रहा जिसकी वजह से अपना शोध कार्य मैं सही समय पूर्ण कर सकी।

शोध कार्य को पूर्ण करने में हिंदी विभाग के समस्त प्राध्यापकों का विशेष योगदान रहा। मैं अपने सभी गुरुजन की हृदय से आभारी हूँ। विशेष रूप से डॉ. विनोद कुमार जी का जिन्होंने हर कदम और हर स्तर पर मेरी सहायता की। उनके पास जब भी किसी विषय की जानकारी लेने के लिए गई, उन्होंने निराश नहीं किया और उचित दिशा-निर्देश देते हुए कार्य करते रहने के लिए प्रेरित किया। विभाग के अन्य शिक्षकों का व्यवहार भी सुरूचिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण रहा जिसकी वजह से यह बड़ा कार्य अपने ठीक समय में पूर्णता की ओर उन्मुख हो सका। आभार व्यक्त करती हूँ अपने उन सभी साथियों का जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में अपना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योगदान दिया। इनमें संजय यादव, शुभम व शमन गुप्ता आदि प्रमुख रूप से सहायक रहे। विश्वविद्यालय प्रतिष्ठान के विभाग के अन्य शिक्षकों ने भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की, जिसके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। विश्वविद्यालय के सभी कार्मिकों का इसलिए आभार कि उन्होंने हर समय अपनी उपलब्धता को सुनिश्चित किया और शोध कार्य को पूर्ण करने में सहायता दी। प्रो. अनुराधा चड्ढा जी का विशेष आभार जिन्होंने मुझे अप्राप्य पुस्तकें उपलब्ध करवाकर मेरे कार्य को सहज बनाया। आभार जगदीप चौधरी, लोचन गुप्ता, भूपेश

गुप्ता, ऋतु शर्मा व नदीम शर्मा जी का जिन्होंने समय-समय पर मुझे अपनी प्रेरणा से इस कार्य में सक्रिय रहने के लिए प्रेरित किया।

अपने पति **रोहित गुप्ता** जी के साथ और सहयोग के बिना ये कार्य वैसे भी संभव न था। उन्होंने मुझ पर अपना विश्वास जताया और घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर शोध करने के लिए प्रेरित किया, इसके लिए आभार शब्द छोटा पड़ जाता है। **सासू माँ** के श्री चरणों में विशेष प्रणाम जिन्होंने सास हो कर भी माँ जैसी भूमिका निभाई। मुझे घर के संचालन की जिम्मेवारी से मुक्त रखा और हर समय ईश्वर से मेरी सफलता की कामना की। अपने दोनों पुत्रियों, **लक्षा एवं त्विषा** का इसलिए आभार और आशीर्वाद कि उन्होंने अपना सुख कुर्बान करके मुझे पढ़ने की फुर्सत और क्षमता दी। माता-पिता का सहयोग और आशीर्वाद हर समय मिला विशेषकर पिता जी का, जिन्होंने बड़ी दिलचस्पी दिखाते हुए मेरी सहायता की। अंत में पत्रिका के संपादकों, प्रकाशकों, लेखकों, कवियों, आलोचकों आदि का भी विशेष आभार जिनके बिना न तो इस विषय की परिकल्पना सम्भव थी और न ही तो यह शोध-कार्य ही। मुझे इस बात का विश्वास है कि आने वाले दिनों में मेरा ये शोध-कार्य समाज के हितकारी होगा और किसी न किसी रूप में सामाजिक परिवर्तन और संवर्धन में अपनी भूमिका का निर्वहन करेगा।

अनुक्रमणिका

विषय-प्रवेश 5-21

- प्रस्तावना
- समस्या कथन
- समस्या औचित्य
- उद्देश्य
- चुनौतियाँ
- प्रविधियाँ
- परिसीमांकन
- परिकल्पना
- पूर्व सम्बद्ध साहित्यावलोकन
- शोध अन्तराल

प्रथम अध्याय- सामाजिक यथार्थ की अवधारणा का सैद्धांतिक विवेचन 22-84

1.1. समाज: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.1.1. समाज: अर्थ

1.1.2. समाज की परिभाषा : पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.1.3. समाज की परिभाषा : भारतीय दृष्टिकोण

1.1.4. समाज का स्वरूप

1.2 साहित्य और समाज का अंतः संबंध

1.2.1. साहित्यकार का समाज के प्रति कर्तव्य

1.3 यथार्थ: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.3.1. यथार्थ: अर्थ

1.3.2. यथार्थ: परिभाषा एवं स्वरूप

1.4 यथार्थवाद: अवधारणा एवं स्वरूप

1.4.1. आदर्शवाद: अवधारणा एवं स्वरूप

1.4.2 यथार्थवाद और आदर्शवाद में अंतर

1.4.3 यथार्थवाद के विभिन्न रूप

1.4.3 .1 प्रकृतिवाद यथार्थवाद

1.4.3 .2 मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

1.4.3 .3 आलोचनात्मक यथार्थवाद

1.4.3.4 अतियथार्थवाद

1.4.3 .5 समाजवादी यथार्थवाद

1.4.3 .6 जादुई यथार्थवाद

1.4.3 .7 ऐतिहासिक यथार्थवाद

1.4.3.8 सामाजिक यथार्थ

1.5 सामाजिक यथार्थ: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.6 यथार्थबोध: मानव जीवन के विभिन्न संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में

1.7 पंजाब के हिंदी कवि एवं कविता : एक परिचय

1.8 शोध में सम्मलित कवियों का परिचय

1.9 शोध के लिए चयनित काव्य संग्रह

द्वितीय अध्याय- वैयक्तिक संघर्ष 85-111

2.1 अस्तित्वबोध की अभिव्यक्ति

2.2 कुंठा और संत्रास की अभिव्यक्ति

2.3 स्वार्थी प्रवृत्तियों की अभियक्ति

2.4 एकाकी जीवन की अभिव्यक्ति

2.5 सम्बन्धों में अंतर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति

तृतीय अध्याय- समकालीन विमर्शों का यथार्थ 112-156

3.1 दलित विमर्श का यथार्थ

3.2 स्त्री विमर्श का यथार्थ

3.3 वृद्ध विमर्श का यथार्थ

3.4 पर्यावरण-प्रकृति का यथार्थ

चतुर्थ अध्याय - अर्थतन्त्र का बदलता प्रारूप 157-182

4.1. श्रमिक और किसान के यथार्थ का परिदृश्य

4.2. अर्थतन्त्र के विविध परिदृश्य

4.3. कार्पोरेट जगत का परिदृश्य

4.4. आर्थिक उन्नति : विकास या विनाश का परिदृश्य

पंचम अध्याय- धर्म और संस्कृति 183-216

5.1 धर्म का अर्थ एवं स्वरूप

5.2 धार्मिक विश्वास एवं सांप्रदायिक समन्वय

5.3 संस्कृति : अर्थ एवं स्वरूप

5.4 ग्रामीण एवं शहरीकरण का यथार्थ

5.5 रीति-रिवाज एवं परम्पाराएं

5.6 बाज़ार एवं विज्ञापनी संस्कृति का यथार्थ

षष्ठम अध्याय- व्यावहारिक अध्ययन 217-237

6.1 साक्षात्कार

6.2 व्यावहारिक सर्वेक्षण

6.3 दस्तावेजी सर्वेक्षण

उपसंहार 238-246

- शोध प्रबंध का सार
- भावी शोध संकेत

ग्रंथ सूची 247-253

- आधार ग्रंथ
- सहायक ग्रंथ
- कोश ग्रंथ
- वेब पोर्टल

परिशिष्ट 254-332

- साक्षात्कार
- प्रश्नावली
- शोध आलेख
- सम्मेलन सहभागिता

सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी में तेज़ी से राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। जहाँ पिछली सदी में देश में राजनीतिक स्तर कांग्रेस का वर्चस्व रहा। वहीं नयी सदी में उसका वर्चस्व कम होता चला गया, केंद्रिय स्तर पर भाजपा का वर्चस्व बड़ा तो विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व बढ़ता चला गया। राजनीतिक स्तर पर नए प्रतिमान गढ़े गए, देश की सरकार राजनीतिक गठबंधन के दौर से निकल, एक दल के वर्चस्व की ओर बढ़ी। इसी प्रकार आर्थिक स्तर पर यह सदी नव परिवर्तनों की साक्षी बनी। भूमंडलीकरण ने आर्थिक क्षेत्र में देश में नित नए प्रतिमान गढ़े। देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन होने से देश के लोगों की आय में वृद्धि हुई। आय में वृद्धि होने के कारण लोगों की क्रय शक्ति में वृद्धि हुई। बाज़ार खुली अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख हुआ। आर्थिक क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में भी देखने को मिलता है। पिछली सदी में सामाजिक व्यवस्था का जो ताना-बाना था, वह इस सदी में टूटने लगा। महिलाएँ जिनका कार्यक्षेत्र घर और परिवार था, अब उनकी पहुँच आर्थिक गतिविधियों में देखने को मिली। अधिकतर आर्थिक गतिविधियाँ बड़े क्षेत्रों तक ही सीमित थी, जिसके कारण शहरों में रोजगार की अपार संभावनाएँ पनपी, जिसके चलते लोगों ने गाँव से शहरों की ओर पलायन किया। गाँव जहाँ संयुक्त परिवारों की प्रथा थी, शहरों में टूटने लगी क्योंकि एक तो पूरे परिवार को शहरों में

ला पाना संभव नहीं, दूसरे शहरों में आवास एक विकट समस्या है। संयुक्त परिवारों के टूटने से एकल परिवार की प्रथा का उद्भव होना शुरू हुआ। इस सदी में शिक्षा एवं सांस्कृतिक स्तर पर भी परिवर्तन देखे गए हैं। शिक्षा के कारण लोगों की सोच, जीवन स्तर में भी परिवर्तन आया। जिसका प्रभाव सांस्कृतिक स्तर पर देखा जाने लगा। लोगों के पहनावे खान-पान में परिवर्तन आया। लोगों ने भारतीय परिधानों को छोड़कर पश्चिमी परिधानों तथा विदेशी व्यंजनों को अपनाया। भूमंडलीकरण, उदारीकरण तथा मुक्त बाज़ार जैसी व्यवस्था के लाभ समाज के ऊँचे तबके के लोगों को ही हुआ, जबकि निचले पायदान पर बैठा व्यक्ति, दलित-आदिवासी या फिर हाशिये पर जीवन-यापन कर रहे लोग इस लाभ से वंचित रह गए। इस व्यवस्था में अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब बनता चला गया, जिसके परिणाम स्वरूप गरीबी और भूख जैसे समस्याएँ अति विकट होती चली गई। गरीबी के कारण बाल मज़दूरी तथा मानव तस्करी जैसी कुरीतियाँ समाज में व्याप्त होती चली गई। अर्थ की चाह और भौतिकवादी प्रवृत्ति ने मानव की इच्छाओं को असमिति कर दिया, जिनकी पूर्ति न होने से मानव को कुंठा और अवसाद जैसी प्रवृत्ति घेरने लगी। जो विकट समस्या के रूप में आज हमारे समक्ष उपस्थित है। आत्म-कुंठा और आत्म-संघर्ष ने मनुष्य को उन्मादी, कठोर, स्वार्थी बना दिया है। आत्मकेंद्रित होने के कारण मनुष्य के लिए परिवार, समाज, धर्म जैसे शब्द कोई मायने नहीं रखते। समाज में जो कुछ घटित होता है, साहित्यकार उसे अपनी क्षीण कलम के माध्यम से उकेरने का प्रयास करता है। परिवर्तन समाज पर लागू होता है तो एक कवि इससे अलग कैसे रह सकता है। कवि सामान्य व्यक्ति के जीवन एवं सामाजिक यथार्थ को अपनी काव्य दृष्टि के माध्यम से परखने का प्रयास करता है। कविता के माध्यम से सामाजिक

यथार्थ चीत्कार बनकर कवि के हृदय से प्रस्फुटित होता है। वर्तमान समय में देश में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक स्तर पर अनेकानेक परिवर्तन देखने को मिलते है, देश का एक प्रांत होने के कारण पंजाब भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रहा है। इन्हें 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध 21वीं सदी के कवियों की समाज के प्रति इसी दृष्टि का अवलोकन करते हुए सामाजिक यथार्थ व चेतना की अभिव्यक्ति को स्वर देने का प्रयास है।

समस्या-कथन :

शोध प्रबंधन में कविताओं के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है, जिसका सबसे प्रमुख कारण है कि कविता कवि के मर्म से निकलती है। जिस विषय को गद्य में हजारों शब्दों के माध्यम से भी नहीं कहा जा सकता, उस विषय को कविता में कुछ शब्दों के माध्यम से ही कहा जा सकता है। कहा भी तो गया है कि जहां न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि। सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने का कविता से बेहतर माध्यम कोई नहीं है। शोध कार्य में 21वीं सदी के कवियों के काव्य संग्रह का चयन करने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि इस दिशा में अभी तक अधिक शोध कार्य नहीं हुआ। अतः शोध का शीर्षक 'सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन' (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में) है।

समस्या का औचित्य :

प्रत्येक शोध कार्य को करने से पूर्व एक समस्या का चयन करना आवश्यक होता है यदि वह समस्या समाज व मानव जाति के लिए हितकर न हो तो वह शोध कार्य अर्थहीन तथा महत्त्वहीन होगा। इस शोध प्रबंध में 21वीं सदी की पंजाब की हिंदी कवियों की समाज सापेक्ष दृष्टि का आंकलन करने का प्रयास किया जाएगा। हिंदी साहित्य की समृद्धि तथा समाज कल्याण की दृष्टि से भी यह शोध प्रबंध अति उपयोगी है। अति महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद भी यह विषय अभी तक शोधार्थियों से दूर ही रहा, इसी तथ्य को ध्यान में रखकर शोध के लिए इस विषय का चयन किया गया है। गूढ़ता, नवीनता, रचनात्मकता, सघनता, उत्कृष्टता तथा विशिष्टता की दृष्टि से भी यह शीर्षक 'सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन' (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में) अति महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है।

उद्देश्य :

मानव जीवन की प्रत्येक क्रिया को सफल बनाने के लिए उद्देश्य का विशेष महत्त्व होता है बिना उद्देश्य के हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते। शोध के क्षेत्र में भी यह बात लागू होती है। प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. सामाजिक संरचना एवं सामाजिक यथार्थ की पहचान करना।
2. 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में निहित सामाजिक यथार्थ को खोजना। (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)
3. 21वीं सदी के पंजाब के हिंदी कवियों के समसामयिक विषयों पर दृष्टिकोण का विवेचन करना। (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)
4. 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में कवियों द्वारा प्रदत्त सामाजिक समस्याओं को चिह्नित करना। (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)
5. 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में कवियों द्वारा प्रदत्त सामाजिक समस्याओं के सांकेतिक समाधान को रेखांकित करना। (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)

शोध कार्य में चुनौतियाँ :

मनुष्य किसी भी विषय को पूरी तरह जान लेने के लिए शुरू से ही उत्सुक रहा है। अपनी इस जिज्ञासा या आवश्यकता को पूरा करने के लिए वह शोध या अनुसंधान करता रहा है। किसी विषय पर शोध करते हुए उसे कई चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों पर विजय प्राप्त कर ही समाज के लिए उपयोगी व कल्याणकारी शोध किया जा सकता है। प्रस्तुत विषय पर शोध करते हुए हमें निम्नांकित चुनौतियों से संघर्ष करना पड़ेगा-

1. पहली चुनौती कवियों के ऐसे काव्य संग्रहों के चुनाव से संबंधित रहेगी जिनमें सामाजिक यथार्थ की प्रधानता हो ।
2. कविताओं के मर्म को उसी संदर्भ में समझना जिसमें रचनाकार ने लिखा है एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा।
3. कविताओं का विश्लेषण करते समय एक आलोचक की भांति तटस्थ दृष्टि रखना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा।
4. निर्धारित समय अवधि में अपने शोध कार्य को पूर्ण करना भी एक चुनौती होगी।

शोध-प्रविधि :

किसी भी मनुष्य को अपने लक्ष्य या ध्येय की प्राप्ति तभी हो सकती है जब उसके पास उस दिशा की ओर बढ़ने के लिए निश्चित रूप रेखा हो। एक शोधार्थी निर्धारित समय अवधि में अपने शोध के निष्कर्ष पर तभी पहुँच सकता है जब वह उचित शोध प्रविधियों का चुनाव करें। प्रस्तुत शोध 'समाजिक यथार्थ के संदर्भ में पंजाब की 21वीं सदी की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन' (चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में) में निम्नांकित शोध प्रविधियों की सहायता से शोध कार्य पूर्ण करने का प्रयास किया जाएगा

- **ऐतिहासिक प्रविधि-** पंजाब के सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए इसके इतिहास के पन्नों को भी उलटना आवश्यक हो जाता है। यहाँ हुए विभाजन, सांप्रदायिक दंगों के दंश आज भी कवियों की रचनाओं में देखे जाते हैं।
- **तुलनात्मक प्रविधि-** जब हम शोध को एक समय सीमा में बांध देते हैं तो उस समय सीमा से बाहर के साहित्य से उसकी स्वयं ही तुलना हो जाती है।
- **विश्लेषणात्मक प्रविधि -** साहित्यकार के साहित्य का विवचेन, विश्लेषण करते समय, एक सामाजिक दृष्टि का रहना आवश्यक है और यह गुण तभी आ सकता है, जब हम उस कृति को समाज से जोड़कर उसका अध्ययन करे।
- **मनोविश्लेषणात्मक प्रविधि-** एक कवि की रचना के वास्तविक मर्म को समझने के लिए हमें उसकी मनोस्थिति या मानसिकता को भी समझना आवश्यक हो जाता है, जो कि मनोविश्लेषणात्मक प्रविधि द्वारा ही समझी जा सकती है।

- **अन्य सहायक प्रविधियाँ-** इसके अतिरिक्त शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए आवश्यकतानुसार अन्य प्रविधियां की भी सहायता ली जाएगी।

परिसीमांकन :

वर्तमान कवि सामाजिक यथार्थ को बगैर किसी बनावटीपन के देखने और कहने का पक्षधर है। इससे कविता की मूल प्रवृत्ति और निर्धारित काव्यात्मक तत्वों में परिवर्तन आया। आज का कवि इन परिवर्तनों को सदैव ही अपने काव्य में स्थान देता आया है। सन् 2000 के पश्चात् के 20 वर्षों का समय 21वीं सदी के कवियों के लिए इन परिवर्तनों को व्यक्त करने हेतु पर्याप्त है। प्रस्तुत शोध में 21वीं सदी के सन् 2001-2020 के पंजाब के कवियों द्वारा रचित काव्य संग्रहों (चयनित) में दिखाए गए बदलते सामाजिक यथार्थ को दर्शाने का प्रयास किया जाएगा।

परिकल्पनाः

किसी भी कार्य के पूर्व अनुमानित निष्कर्षों को परिकल्पना कहा जाता है। प्रस्तावित शोध द्वारा हम निम्नांकित परिकल्पना करते हैं-

1. 21वीं सदीं के प्रारम्भिक दो दशकों की पंजाब की हिंदी कविता में समाज के बदलते परिवेश को सही ढंग से दर्शाया गया है।
2. 21वीं सदीं के प्रारम्भिक दो दशकों की पंजाब की हिंदी कविता में मनुष्य जीवन के यथार्थ का सही ढंग से चित्रण हुआ है।

3. 21वीं सदीं के प्रारम्भिक दो दशकों की पंजाब की हिंदी कविता में समसामयिक विषयों, सामाजिक विकृतियों तथा समसामयिक समस्याओं का सही ढंग से चित्रण किया गया है।
4. पंजाब के हिंदी कवि में न तो पुरातपंथी है और न ही आधुनिकता विरोधी, परन्तु वे तो एक वर्ग विशेष को लाभ के विरोधी है।

पूर्व सम्बद्ध साहित्यावलोकन :

पंजाब की हिंदी कविता पर प्राप्त शोध कार्य का पुनरावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि पंजाब की हिंदी कविता के वर्चस्व को ऊँचा उठाने के लिए डॉ. हुकमचंद राजपाल ने सबसे अधिक सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी पहली कृति सन् 1989 में लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित 'पंजाब की हिंदी कविता-आधुनिक काल' में समकालीन पंजाब के कवियों तथा कवयित्रियों का विस्तृत अध्ययन प्राप्त होता है।

इनकी दूसरी कृति सन् 2015 में बिटवीन लाइंस, पटियाला से प्रकाशित 'पंजाब की समकालीन कविता' में इन्होंने कविता के विकास युग को दर्शाते हुए सभी बहुचर्चित, अल्प चर्चित और नए उभरते हुए रचनाकारों को यथा स्थान प्रस्तुत किया है और उनकी काव्य प्रतिभा को समाज के समक्ष लाने का प्रयास किया है।

पंजाब की कविता के वर्चस्व को ऊँचा उठाने के लिए सन् 1995 में पीएच.डी स्तर पर डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी के निर्देशन में डॉ. देस राज द्वारा किया गया शोध कार्य 'पंजाब की हिंदी कविता-आधुनिक संदर्भ' भी एक सराहनीय प्रयास है। इसमें

उन्होंने कालक्रम अनुसार पंजाब के लेखकों तथा उनकी कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन किया है।

पंजाब की कवयित्रियों को हिंदी साहित्य में समुचित स्थान दिलवाने के लिए सन् 2013 में हिमांशु शर्मा द्वारा डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी के निर्देशन में पीएच.डी स्तर पर 'पंजाब की आधुनिक हिंदी कवयित्रियों की काव्य रचना' विषयागुत किया गया शोध कार्य भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। इसमें उन्होंने पंजाब के महिला हस्ताक्षरों के काव्य लेखन का कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विश्लेषण करते हुए उनके काव्य कौशल को हिंदी जगत के समक्ष लाने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पंजाब की कविता का मूल्यांकन कवियों और कवयित्रियों के काव्य कौशल अथवा काव्य प्रतिभा को को आधार बनाकर ही किया गया है। सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से पंजाब की कविता का विवेचन नहीं किया गया इसलिए शोध के लिए प्रस्तुत विषय 'सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)' मौलिक एवं नवीन है।

शोध-प्रबंध:

- अनिल कुमार पाण्डेय 'महामति प्राणनाथ के काव्य में सामाजिक चेतना' पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 2018 तत्कालीन समय समाज में फैली अव्यवस्था को समाप्त कर जन-जागरण के लिए अलख जगाने के उद्देश्य से महामति ने जो प्रयास किए उन्हें दर्शाना प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है।

- कविता चौहान ‘21वीं सदी के उपन्यासों में कुंठा और संत्रास’ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, 2017 प्रस्तुत शोध में 21वीं सदी के पहचान बिंदुओं का वर्णन करते हुए सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में आए परिवर्तनों को आधार बनाकर वर्तमान मनुष्य के कुंठित व संत्रासित होने के कारणों व मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन किया गया है।
- मोहम्मद शानू ‘काशीनाथ सिंह के कथा-साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ’ अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, 2016 इसमें काशीनाथ के कथा साहित्य में प्रस्तुत मानवीयता, राजनीति, भूख, निराशा, भूमंडलीकरण, पारिवारिक संबंधों की झुंझलाहट आदि सामाजिक यथार्थ को उजागर करने का प्रयास किया गया है।
- पर्वज्योत कौर ‘मृणाल पांडे के कथा-साहित्य में सामाजिक सरोकार’ पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 2016 प्रस्तुत शोध में दर्शाया गया है कि मृणाल पांडे की साहित्य साधना समाज से भी जुड़ती है और उसके तथ्यों से भी, फिर उन दोनों के सम्यक संतुलन से जो रचना सृजित होती है, वह यथार्थवादी होती है जो सीधे मर्म तक पहुँचती है और भीतर की पीड़ा को उजागर करती है।
- ममता देवी ‘21वीं शताब्दी के नए हिंदी नाटकों में संघर्ष के विविध आयाम’ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, 2016 प्रस्तुत शोध में 21वीं सदी के विकास का जनमानस के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करते हुए 21वीं सदी के

नाटकों में वर्णित व्यक्ति के संघर्ष के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक आयामों का वर्णन किया गया है ।

- विश्वनाथ गुप्त 'हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना' पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 2016 मध्य काल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक देश में अनेक राजनीतिक उतार-चढ़ाव हुए, विभिन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई और उन्हीं के अनुरूप राष्ट्रीयता का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा, जिसकी छाया हिंदी काव्य पटल पर स्पष्ट देखी जा सकती है। उसी का प्रतिपादन करना इस शोध कार्य का मूल उद्देश्य है।
- शकिला जब्बार मुल्ला 'मुस्लिम लेखकों के कहानी साहित्य में मुस्लिम समाज का चित्रण' सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, गणेश खिंड पुणे, 2016 इसमें समाज के स्वरूप को मुस्लिम समाज व जीवन के हर पहलू से जुड़े यथार्थ को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है।
- दीपशिखा 'नई कविता में भारतीय काव्यशास्त्र की प्रसंगिकता' (अज्ञेय, मुक्तिबोध, धूमिल, धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेंहता, भवानी प्रसाद मिश्र तथा शमशेर बहादुर सिंह के विशेष संदर्भ में) पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 2015 प्रस्तुत शोध के अनुसार काव्य का वास्तविक सौंदर्य कलापक्ष न होकर भावपक्ष में ही निहित है। नई कविता ने समाज में हो रहे परिवर्तन और उसके परिणाम को अनुभव किया। इसलिए यह जीवन के वास्तविक यथार्थ को अभिव्यक्त करती है।

- मंजूषा रानी 'समकालीन हिंदी कविता पर सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव और मानव मूल्यः एक अध्ययन', दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, 2014 प्रस्तुत शोध में समकालीन कवियों ने समाज में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव स्वरूप मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों को अभिव्यक्त किया है।
- चंद्रशेखर चौधरी 'सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन में संचार माध्यमों की भूमिका' का समाजशास्त्रीय अध्ययन (ग्रामीण एवं नगरीय प्रवेश के संदर्भ में) समाजशास्त्र विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2014 प्रस्तुत शोध में संचार माध्यमों के महत्त्व को दर्शाते हुए समाजिक संगठनों को बनाए रखने के लिए उनकी भूमिका को दर्शाया गया है। साथ ही उन से हो रहे नुकसान की तरफ भी समाज का ध्यान दिलाया गया है।
- शालिनी '21वीं सदी की हिंदी कहानी में सामाजिक न्याय' कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 2012 प्रस्तुत शोध में स्त्री और दलित संदर्भ में सामाजिक न्याय की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है इसमें स्त्री और दलित संबंधी समस्याओं, प्रचलित बुराइयों एवं अन्याय का चित्रण करते हुए सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिए उनके विद्रोह का चित्रण है।
- शैलजा 'पंजाब के हिंदी साहित्य की चिंतनधारा में प्रमुख चिंतकों का अवदान', गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, 2012 इस शोध प्रबंध में पंजाब के हिंदी साहित्य लेखन परंपरा के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है तथा महत्त्वपूर्ण चिंतकों की उपलब्धियों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

- कांता ‘हिंदी काव्य का उत्तर आधुनिक संदर्भ’ (1991 की परवर्ती कविताओं के विशिष्ट संदर्भ में) पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 2011 इसमें उत्तर आधुनिक सामाजिक स्थिति के बारे में हिंदी कवियों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। कवि आज भी मानवता के बहुत बड़े भाग को दुखी और पीड़ित पाते हैं और अपनी विचारधारा के अनुसार ही प्रतिक्रिया करते हैं।
- अनीस अहमद सिद्दीकी ‘जायसी के काव्य में सामाजिक चेतना’ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ, 2009 प्रस्तुत शोध में जायसी अपने युग के यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हुए युगीन विसंगतियों को अपने काव्य में चित्रित करते हुए मानव को सही राह पकड़ाते हैं और समाज को विकास की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं।
- पूनम कुमारी ‘नागार्जुन की कविता में राजनैतिक अभिव्यक्ति का स्वरूप’ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, 2008 प्रस्तुत शोध का उद्देश्य नागार्जुन की काव्य रचनाओं के आधार पर उनकी राजनैतिक दृष्टि का विश्लेषण करना है। उनकी राजनैतिक अवधारणा जनसाधारण को झकझोरती है और बौद्धिक वर्ग को भी।
- राधेश्याम ‘सामाजिक-राजनीतिक विघटन के परिप्रेक्ष्य में मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य का अध्ययन’ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ 2002 प्रस्तुत शोध में दर्शाया गया है कि स्वाधीनता के पश्चात् देश में आए सामाजिक राजनीतिक विघटन ने हमारे सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया। एक और देश विभाजन के समय आम व्यक्ति अपने पराए का

भेद भूल गया और अमानवीय व्यवहार करने लगा। दूसरी और औद्योगीकरण के कारण उसे विकास के नए अवसर प्रदान हुए और उसके जीवन में नयी समस्याएँ पैदा की। इस प्रकार मनु भंडारी के उपन्यास और कहानियों के माध्यम से समाज के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करना इस शोध का उद्देश्य है।

- घनश्यामदास 'ग्रामीण परिवेश में गुटबंदी: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' समाजशास्त्र विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी, 2002 प्रस्तुत शोध में ग्रामीण जीवन में बढ़ रही गुटबंदी और खत्म हो रहे आपसी प्रेम के कारणों को जानने का प्रयास किया गया है।
- इरशाद मोहम्मद 'समकालीन हिंदी कविता में समय और समाज' पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 1995 प्रस्तुत शोध के अनुसार साहित्य, समय और समाज तीनों एक दूसरे पर आश्रित है। समकालीन कविता उस काल की राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक और तकनीकी परिस्थितियों को आंकती है तथा समाज में रहने वाले साधारण मनुष्य की मानसिक अवस्थाओं को अभिव्यंजित करती है।
- तृप्ता कुमारी 'अमृतलाल नागर के कथा-साहित्य में व्यक्ति और समाज' पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 1992 इस शोध प्रबंध के अनुसार समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए व्यक्ति को सामाजिक संबंध स्थापित करने पड़ते हैं। सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति के सभी क्रिया-कलाप समाज से प्रभावित है तथा दोनों विशिष्ट हैं, दोनों महत्त्वपूर्ण हैं और दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं।

- प्रेमलता दुआ 'नागार्जुन के काव्य में समाजवादी यथार्थवाद' पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 1989 नागार्जुन की काव्य रचनाएँ अपने युग के यथार्थ को अपने में समाहित करती है तथा समाज को समाजवाद की ओर उत्प्रेरित करती है।

शोध-पत्र:

- बृजमोहन शर्मा, 'पंजाब की समकालीन हिंदी कविता में पंजाबी संवेदना' 'प्राधिकृत' अंक 16 संपादिका: मधु संधु, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर 2002 इसके अंतर्गत पंजाब के 28 प्रतिनिधि एवं महत्त्वपूर्ण काव्यकारों का कथ्यगत अध्ययन पंजाबी संवेदना के संदर्भ में किया गया है।
- हुकुमचंद राजपाल, 'पंजाब प्रांतीय हिंदी कविता के संदर्भ में महिला हस्ताक्षर' 'प्राधिकृत' अंक 16 संपादिका: मधु संधु, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर 2002 इसके अंतर्गत पंजाब की बहुत-सी हिंदी कवयित्रियों का कथ्यगत संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।
- शशि धमीजा, 'हिंदी साहित्य पंजाब का योगदान शोध लेख' 'प्राधिकृत' अंक 15 पंजाब का हिंदी साहित्य विशेषांक संपादिका: मधु संधु, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर 2000-2001 हिंदी साहित्य के वर्चस्व को ऊँचा उठाने हेतु पंजाब की हिंदी साहित्य के योगदान का अवलकन किया गया है।
- हरमहेंद्र सिंह बेदी, 'पंजाब का हिंदी साहित्य-दर्पण और प्रतिबिम्ब' 'प्राधिकृत' अंक 15 पंजाब का हिंदी साहित्य विशेषांक संपादिका: मधु संधु, गुरु नानक

देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर 2000-2001 इसके अंतर्गत साहित्य और समाज का अंतः संबंध क दर्शाया गया है।

- देस राज, 'पंजाब की हिंदी कवयित्रियों का काव्य लेखन समकालीन संदर्भ' 'प्राधिकृत' अंक 12 संपादक हरमहेंद्र सिंह बेदी, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर 1997 इसके अंतर्गत पंजाब की कवयित्रियों का कथ्यगत संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।
- देस राज, 'पंजाब की समकालीन हिंदी कविता' 'प्राधिकृत' अंक 10, संपादक हरमहेंद्र सिंह बेदी, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर 1994-95 प्रस्तुत शोध लेख में कुमार विकल, मोहन सपरा और डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी प्रमुख तीन कवियों के काव्य अध्ययन को प्रस्तुत कर उनकी काव्य प्रतिभा को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

शोध-अंतराल:

पंजाब की कविता पर हुए शोध कार्यों के पुनरावलोकन से ज्ञात हता है कि पंजाब की कविता का मूल्यांकन कवियों और कवयित्रियों के शिल्प विधान को आधार बनाकर ही किया गया है । सामाजिक पक्ष की दृष्टि से पंजाब की कविता का समग्र अध्ययन अभी भी उपेक्षित है। इसलिए शोध के लिए प्रस्तुत विषय 'सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य संग्रहों के संदर्भ में)' अपने अंदर समग्र को समाहित करते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न है।

प्रथम अध्याय- सामाजिक यथार्थ की अवधारणा का सैद्धांतिक विवेचन

1.1 समाज: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.1.1. समाज: अर्थ

1.1.2. समाज की परिभाषा : पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.1.3. समाज की परिभाषा : भारतीय दृष्टिकोण

1.1.4. समाज का स्वरूप

1.2 साहित्य और समाज का अंतः संबंध

1.2.1. साहित्यकार का समाज के प्रति कर्त्तव्य

1.3 यथार्थ: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.3.1. यथार्थ: अर्थ

1.3.2. यथार्थ: परिभाषा एवं स्वरूप

1.4 यथार्थवाद: अवधारणा एवं स्वरूप

1.4.1. आदर्शवाद: अवधारणा एवं स्वरूप

1.4.2 यथार्थवाद और आदर्शवाद में अंतर

1.4.3 यथार्थवाद के विभिन्न रूप

1.4.3 .1 प्रकृतिवाद यथार्थवाद

1.4.3 .2 मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

1.4.3 .3 आलोचनात्मक यथार्थवाद

1.4.3.4 अतियथार्थवाद

1.4.3 .5 समाजवादी यथार्थवाद

1.4.3 .6 जादुई यथार्थवाद

1.4.3 .7 ऐतिहासिक यथार्थवाद

1.4.3.8 सामाजिक यथार्थ

1.5 सामाजिक यथार्थ: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.6 यथार्थबोध: मानव जीवन के विभिन्न संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में

1.7 पंजाब के हिंदी कवि एवं कविता : एक परिचय

1.8 शोध में सम्मलित कवियों का परिचय

1.9 शोध के लिए चयनित काव्य संग्रह

यथार्थ समस्त कला और साहित्य का मूल आधार है, उसके बिना साहित्य की कल्पना करना असंभव है। मानव जीवन ही साहित्य का उत्स है इसके भाव, काव्यरूप, भाषा, अलंकार आदि सभी तत्त्व यथार्थ जीवन द्वारा निर्धारित होते हैं। साहित्य मानव-जीवन का दर्पण होता है या यों कहें कि साहित्य ही मानव-जीवन का यथार्थ है। यही जीवन-यथार्थ विविध विधाओं के माध्यम से साहित्य में अभिव्यक्त होता है। साहित्य और कला का उद्देश्य मानव जीवन के यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति करना है। कला और साहित्य में रचनाकार जीवन-सत्य को ही मूर्त रूप देता है। यथार्थ का संबंध वास्तविकता या सच्चाई से है जो समाज में ही विद्यमान है। सामाजिक यथार्थ में समाज की सच्चाई निहित रहती है। सामाजिक यथार्थ शब्द दो शब्दों के योग से मिलकर बना है जिसको संदर्भित विषय के अनुसार संपूर्णता से समझने के लिए समाज और यथार्थ दोनों शब्दों के अलग-अलग अर्थ को जान लेना आवश्यक हो जाता है जो इस प्रकार है:

1.1 समाज: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

समाज की अवधारणा पर काफी समय से विचार होता आया है। विभिन्न विद्वानों, चिंतकों, समाजशास्त्रियों इत्यादि द्वारा किए गए विचारजन्य निष्कर्षों को यहाँ संक्षेप में देते हुए इस धारणा को और गहराई से समझा जा सकता है।

1.1.1. समाज: अर्थ

वृहत् हिंदी कोश के अनुसार- ‘समाज’ पु. (सं.) मिलाना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति आधिक्य, सम्मान करने वालों का समूह, विशेष

उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघटित संस्था, ग्रहों का योग, हाथी। (वृहत् हिंदी कोश 1371)

वृहत हिंदी कोश में दिए गए 'समाज' शब्द के अर्थ पर विचार किया जाए तो 'हाथी' शब्द को छोड़कर बाकी जितने भी पर्याय दिए गए हैं समाज की व्यापकता एवं उद्देश्य को स्पष्ट करने में सहायक हैं। यहाँ 'मिलाना' से तात्पर्य अपने समूह में अन्य व्यक्तियों को जोड़ने से है। जब अन्य व्यक्ति किसी के समूह से जुड़ते हैं तो यह उनके लिए जरूरी हो जाता है कि इसके पीछे उनका कोई ना कोई विशेष उद्देश्य हो। 'विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित संस्था' सबको 'समान कार्य' करने के लिए प्रेरित करेगी।

मानक हिंदी कोश में 'समाज' शब्द का अर्थ- (1) समूह, गिरोह (2) एक जगह रहने वाले अथवा एक ही परिवार का काम करने वाले लोगों का वर्ग दल या समूह, समुदाय (3) किसी विशेष उद्देश्य से स्थापित की गई सभा जैसे-आर्य सभा। (4) किसी प्रदेश भूखंड में रहने वाले लोग जिनमें सांस्कृतिक एकता होती है। (5) किसी संप्रदाय के लोगों का समूह जैसे-अग्रवाल समाज। (मानक हिंदी कोश 284)

इस परिभाषा के अनुसार एक समाज दूसरे से भिन्न होता है क्योंकि एक समाज में पाए जाने वाले संबंध की प्रकृति दूसरे समाज से भिन्न होती है।

विश्व हिंदी कोश में समाज शब्द का अर्थ समाज- (1) समूह संघ, गिरोह, दल (2) सभ्य (3) वैष्णवों का समाधि-स्थान (4) हस्ती, हाथी (5) एक ही स्थान पर रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसायादि करने वाले वे लोग जो मिलकर अपना

एक अलग समूह बनाते हैं, समुदाय (6) ब्राह्मणादि वर्ण की सभा। (विश्व हिंदी कोश 599-600)

सभी वर्ण के प्रधान व्यक्ति मिलकर समाज स्थापन करते हैं। सभी समाज के आदेशानुसार चलने के बाध्य हैं। सभी वर्णो का समाज बंधन है जैसे ब्राह्मण-समाज, कायस्थ समाज इत्यादि। ब्राह्मण ब्राह्मण-समाज के नियमानुसार आदान-प्रदान और कायस्थ कायस्थ-समाज के नियमानुसार आदान-प्रदान करते हैं। समाज में एक प्रधान पुरुष रहता है जिसे सभापति या गोष्ठी पति कहते हैं। किसी सामाजिक क्रिया में ये समाजपति भी मान्यस्वरूप माला चन्दन पाते हैं।

भाषा-शब्द-कोश में बताया गया है 'समाज'- संज्ञा (पु.) (सं.) समूह, सभा, समिति, दल, वृन्द, समुदाय, संस्था, एक स्थान निवासी तथा समाज आचार-विचार वाले लोगों का समूह, किसी विशेष उद्देश्य या कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की बनायी या स्थापित की हुई सभा। (भाषा-शब्द-कोश 1912)

इस कोश में अन्य कोश की तरह समाज की मूल प्रवृत्ति को उद्घाटित करने का पूरा प्रयास किया गया है। समाज में रहने वाले लोगों की अपनी विशेष जातियाँ और वर्ग होते हैं। उनके आचरण का मूल्यांकन उनके अपने परिवेश में व्याप्त उन्हीं विशेष जातियों तथा वर्गों द्वारा अपनाए जाने वाले रीतियों तथा व्यवहारों अंतर्गत किया जाता है।

1.1.2 समाज की परिभाषा : पाश्चात्य दृष्टिकोण :

'समाज' शब्द शाब्दिक दृष्टि से जितना छोटा है व्यवहार में उतना ही व्यापक और विस्तृत है। भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने इस शब्द को लेकर कई दृष्टिकोण से विचार किया है।

मैकाइवर अपनी कृति *सोसायटी एन इंट्रोडक्टरी एनालिसिस* में समाज की परिभाषा इस प्रकार देते हैं-

> समाज रीतियों, कार्य विधियों, अधिकारों व पारस्परिक सहायता अनेक समूहों तथा उनके उपविभागों, मानव व्यवहार के नियंत्रणों और स्वतंत्रताओं की व्यवस्था है। (मैकाइवर 5)

निश्चित ही यदि मैकाइवर की मानी जाए तो समाज में विविध प्रकार के रीतियाँ पायी जाती हैं। ये रीतियाँ व्यक्ति को एक-दूसरे से जुड़ने के लिए और उसी आधार पर अपने व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए प्रेरित करती हैं। रीतियों के प्रचलन से समूहों का विकास होता है। विभिन्न समूहों द्वारा आपसी सामंजस्य की जमीन तैयार की जाती है और इसी के आधार पर दूसरे के अधिकार और अपने कर्त्तव्य को महत्त्व देने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

गिडिंग्स अपनी कृति *प्रिंसिपलस ऑफ सोशियोलॉजी* में समाज की परिभाषा इस प्रकार देते हैं–

> समाज एक संगठन तथा औपचारिक संबंधों का योग है, जिसमें आपस में सबंध रखने वाले लोग एक साथ संगठित होते हैं। (गिडिंग्स 3)

अर्थात् समाज केवल व्यक्तियों का एकमात्र इकट्ठ या समूह ही नहीं है बल्कि उन में पाए जाने वाले सामाजिक संबंधों की एक संपूर्ण व्यवस्था है। समाज,

सामाजिक संबंधों और इन संबंधों को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की एक परिवर्तनशील व्यवस्था है।

रयूटर अपनी कृति *हैंडबुक ऑफ सोशियोलॉजी* में समाज की परिभाषा इस प्रकार देते हैं-

> समाज एक अमूर्त शब्द है जो कि एक समूह के दो या दो से अधिक सदस्यों के बीच स्थित पारस्परिक जटिलता का बोध कराता है। (रयूटर 157)

इस परिभाषा में वैयक्तिक स्वतंत्रता को महत्त्व दिया गया है। समाज कोई साकार मूर्ति नहीं होता जिसे कि दिखा और उस पर विश्वास किया जाए बावजूद इसके विश्वास सभी को उसमें होता है। समूह और संगठन में रहते कई बार संबंध जटिल होते जाते हैं।

इंटरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज में कमेंट तथा स्पेंसर समाज की परिभाषा इस प्रकार देते हैं-

> समाज कुछ व्यक्तियों का संगठित नाम नहीं है परंतु एक विशिष्ट सत्ता है जो उससे संबंधित व्यक्तियों की व्यवस्था करती है। (कमेंट व स्पेंसर 577)

कमेंट तथा स्पेंसर की यह परिभाषा इसलिए आवश्यक है क्योंकि समाज से जुड़कर सभी रहना चाहते हैं। व्यक्ति वहीं रहना चाहेगा जहाँ उसके अधिकार सुरक्षित दिखाई देंगे। इस तरह से ऐसे व्यक्तियों की व्यवस्था समाज द्वारा की जाती है। समाज द्वारा उन्हें सामाजिक संस्कारों एवं व्यवस्थाओं के संबंध में जानने और उससे जुड़ने के लिए प्रेरित किया जाता है।

कूले ने अपनी कृति *द सोशल प्रोसेस* में समाज क इस प्रकार व्याख्यायित किया है-

> समाज रीतियों या प्रक्रियाओं का एक जटिल ढाँचा है जो जीवित है और एक-दूसरे के प्रभाव के कारण आगे बढ़ता रहता है एवं पूर्ण अस्तित्व में इस प्रकार की एकता पायी जाती है जो कुछ एक भाग में होता है वह शेष पर प्रभाव डालता है। (कूले 28)

अर्थात् समाज के अपने आदर्श, परंपराएँ, रीति-रिवाज, नियम व प्रथाएँ होती हैं जो विभिन्न लोगों को एकता के सूत्र में बाँधती हैं या उन्हें नियंत्रित करती हैं। समाज वह है जिसमें एक समान विचारधारा के लोग जीवन यापन करते हैं एक दूसरे के व्यावहारिक जीवन में भागीदारी करते हैं, संगठन समूह अथवा कार्य क्षेत्र के माध्यम से अपनी एकता का परिचय देते हैं, समाज के विभिन्न सांस्कृतिक उपक्रमों के माध्यम से दूसरों को भी एक आकर्षण के तहत जोड़ते हैं और उनके सांस्कृतिक उपक्रमों में स्वयं को भी शामिल करते हैं।

1.1.3 समाज की परिभाषा : भारतीय दृष्टिकोण :

डॉ नगेंद्र अपनी कृति *साहित्य का समाजशास्त्र* में समाज की परिभाषा इस प्रकार देते हैं-

> समाज का अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने-अनजाने कर लेते हैं। (नगेंद्र 10)

डॉ नगेन्द्र की इस परिभाषा में मनुष्य द्वारा समाज निर्माण की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट किया गया है। अतः समाज मानव द्वारा मानवीय हित और सुरक्षा के लिए सृजित किया गया एक ऐसा माध्यम है जो उसके अंदर मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आचरणिक प्रवृतियों का विकास कर एक दूसरे के साथ जीवन-यापन करने तथा सह-अस्तित्व एवं भ्रातृत्वपूर्ण परंपरा को समृद्ध करने पर बल देता है। डॉ नगेन्द्र की माने तो मनुष्य न चाहते हुए भी किसी न किसी समाज का अंग होता है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि व्यावहारिक रूप में जीने के लिए किसी वर्तमानता की आवश्यकता होती है। अपने अस्तित्व का ध्यान मनुष्य को तभी होगा जब दूसरा उसके सम्मुख उपस्थित होगा। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा अपनी कृति *राजनीति और दर्शन* में कहते हैं-

> जब अनेक मानव एक साथ रहते हैं तब उनके पारस्परिक संबंधों से समाज बनता है। मानव समाज की ईकाई है और समाज के बिना वह पूरा विकसित मनुष्य नहीं हो सकता। (वर्मा 107)

अपनी इस परिभाषा में डॉ विश्वनाथ प्रसाद ने मानवीय संबंधों की व्यावहारिक स्थिति को समाज निर्माण का प्रमुख कारण बताया है और साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि उसका विकास व्यक्तिगत और एकांत रूप में न होकर सामूहिक सहभागिता में ही सम्भव है। समूह में रहने से वह जहाँ अपने गुणों को दूसरों तक पहुँचाने में कामयाब होगा वहीं दूसरों के गुणों को आत्मसात भी करेगा।

डॉ. देवेश ठाकुर अपनी कृति *साहित्य की सामाजिक भूमिका* में समाज की परिभाषा इस प्रकार देते हैं –

> समाज, व्यक्ति समूह से निर्मित, विशिष्ट उद्देश्य से बनाई गई संस्था है। (ठाकुर 6)

यह परिभाषा समाज की व्यापकता एवं उद्देश्य को स्पष्ट करने में सहायक है। समाज में रहते हुए जब व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के समूह से जुड़ते हैं तो यह उनके लिए जरूरी हो जाता है कि इसके पीछे उनका कोई ना कोई विशेष उद्देश्य हो। 'विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित संस्था' सबको समान कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

1.1.4 समाज का स्वरूप :

मानव केवल सामाजिक प्राणी ही नहीं, वरन् एक विवेकशील प्राणी भी है। कहने का अभिप्रायः यही है कि प्राणी के रूप में मानव की कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं जो अन्य प्राणियों में नहीं पाई जातीं। यह उच्चतम केवल जैविक या शारीरिक क्षमताओं के कारण ही नहीं है बल्कि अन्य सभी प्रजातियों से इसे अलगाने वाला महत्त्वपूर्ण आधार है 'बुद्धि' है जिसके फलस्वरूप मानव बोल, लिख व पढ़ सकता है, आश्चर्यजनक वस्तुओं व मशीनों का निर्माण कर सकता है, रहने-सहने व जीवनयापन के उन्नत तौर-तरीकों को विकसित कर सकता है, भविष्य का अनुमान लगा सकता है और आने वाली विपत्तियों-आपत्तियों का मुकाबला करने की सफल योजनाएँ बना सकता है। मानव ने जिस समाज तथा संस्कृति को विकसित किया है वह स्वयं में अद्‌भुत है और मानव निस्सन्देह इस संसार का सबसे अद्‌भुत प्राणी है। इसीलिए मनुष्य को जैविक स्तर पर पशु जगत में रखते हुए भी उसे ज्ञान-युक्त प्राणी कहा जाता है। अन्य प्रजातियों में यह सब विकास देखने को नहीं मिलता। इस विकास प्रक्रिया में मनुष्य एक-से-दूसरे के सम्पर्क में आया तो समाज की नींव पड़ी। समाज यों तो अन्य प्रजातियों का भी है, जिसका प्रमाण तो उसका अपने-अपने झुण्डों में

विचरण करने में मिलता है, परन्तु मनुष्य समाज उन सबसे इसीलिए भिन्न है क्योंकि वह जैविक से आगे बौद्धिक सभ्यात्मक एवं सांस्कृतिक समाज के रूप में विकसित हुआ है, इसे ही हम मनुष्य की जैविक स्थिति पर बौद्धिक या सामाजिक विजय की संज्ञा देते हैं। इतना ही नहीं, वह वस्तु जगत का एकछत्र स्वामी होने का दावा कर सकता है। किंग्सले डेविस ने अपनी कृति *ह्यूमन सोसाइटी* में मनुष्य की इस विशिष्टता को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

> मनुष्य की इस विशिष्टता का परिचायक यदि कोई एकांकी तत्त्व है तो वह यही है, समस्त प्राणी जगत में केवल उसी के पास संस्कृति है। (डेविस 3)

स्पष्ट है कि समाज मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है और कदाचित इसीलिए मनुष्य को सामाजिक पशु कहा गया है। पशु से तात्पर्य उसके जैविक रूप से है और सामाजिक शब्द से तात्पर्य उसकी परस्पर उस अन्योन्याश्रितता से है जिसके द्वारा उसने अपना आज तक समग्र विकास किया है। अतः मनुष्य के परिप्रेक्ष्य में समाज की अवधारणा मात्र जैविक आवश्यकता भर नहीं है। उसके पीछे परस्पर सहयोग, विकास और सर्वजन हिताय, सुख-समृद्धि से जुड़ी वह चेतना संचरित रहती है जिसके द्वारा वह निरंतर सभ्यता और संस्कृति के नए-नए सोपानों पर आगे बढ़ता चलता है। इस समाज में समता भाव ही प्रमुख भाव है। यदि ऐसा न हो तो समाज का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाए।

1.2 साहित्य और समाज का अंतः संबंध :

साहित्य संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है। साहित्य की उत्पत्ति को संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने हितेन सह सहित तस्य भवः की संज्ञा दी है जिसका अर्थ है कल्याणकारी भाव। समाज और साहित्य का गहरा संबंध है। साहित्य समाज का लेखा-जोखा है। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से प्राप्त होती है। साहित्य लोकजीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन-सहन, खान-पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य का समाज से वही संबंध है, जो संबंध आत्मा का शरीर से होता हैं। साहित्य समाज रूपी शरीर की आत्मा है। साहित्य अजर-अमर है। समाज नष्ट हो सकता है, राष्ट्र भी नष्ट हो सकता है, किन्तु साहित्य का नाश कभी नहीं हो सकता। 'साहित्य समाज का दर्पण है' नगेंद्र इसके बारे में अपनी कृति *साहित्य का समाजशास्त्र* में लिखते हैं-

> दर्पण शब्द बिंब प्रतिबिंब का वाचक है। जिस प्रकार दर्पण में जैसा मूल पदार्थ होता है उसी प्रकार उसका प्रतिबिंब रहता है स्पष्ट शब्दों में अपने परिवेश का यथार्थ चित्रण ही साहित्य का धर्म माना गया है। (नगेंद्र 12)

उनकी मान्यता के अनुसार साहित्य समाज का निष्क्रिय प्रतिबिम्ब नहीं है, समाज का मार्गदर्शक है। कोई भी साहित्य सामाजिक चेतना के अभाव में नहीं रचा जा सकता। समाज और साहित्य दोनों ही मानव जीवन की आधारभूत अवधारणाएँ

हैं। यह साहित्य मानव जीवन के विविध अनुभवों, समस्याओं, सीमाओं और असंभावनाओं में से ही अपने लिए सामग्री का चयन करता है। वह समाज की बाह्य रूपरेखा या प्रतिमान का बोध कराने के साथ-साथ उसकी आंतरिक प्रक्रियाओं का भी बोध कराता है। इसलिए समाज में साहित्य का योगदान विशेष रूप से रहता है।

आचार्य रामचंद्र चंद्र शुक्ल का चिंतन साहित्य के विकासशील स्वरूप को सामाजिक विकास की परिणिति के रूप में सामने लाता है। आचार्य शुक्ल अपनी कृति *हिंदी साहित्य का इतिहास* में लिखते हैं-

> प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। (शुक्ल 15)

आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि साहित्य की यह सामाजिक दृष्टि समाज से साहित्य के अधिक जटिल संबंध को सामने लाती है। इस धारणा में समाज और साहित्य के बीच जनता की चित्तवृत्ति है। यह ‘चित्तवृत्ति‘ साहित्य प्रतिबिंबित होती है, सीधे समाज नहीं। प्रतिबिंब भी ‘संचित‘ है- छना हुआ, चुना हुआ और सोचा हुआ है। सामाजिक यथार्थ और साहित्य के बीच चेतना की मध्यस्थता है। जनता की चित्तवृत्ति सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होती है और वह साहित्य को प्रभावित करती है। इस तरह साहित्य और समाज के बीच सीधे कार्य-कारण संबंध नहीं है। बीच में ‘चित्तवृत्ति‘ है जो बहुत सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार होती है लेकिन उसका थोड़ा कुछ ऐसा भी होता है जो तत्कालिक परिस्थितियों की नहीं, ‘परंपरा‘ की देन है। तात्पर्य यह है कि चित्तवृत्ति का

अधिकांश बदलता है लेकिन कुछ अपेक्षाकृत अपरिवर्तनशील भी होता है। इस तरह साहित्य का विकास समाज और चेतना दोनों के विकास से जुड़ा हुआ है।

मैनेजर पांडेय साहित्य और समाज के संबंध का वर्णन अपनी कृति *साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि* में इस प्रकार करते हैं-

> ऊपरी तौर पर समाज से साहित्य का संबंध जितना सहज और सरल दिखाई देता है उतना वह होता नहीं है। गहरे स्तर पर छानबीन करने के दौरान उसकी जटिलता सामने आती है। (पांडेय 71)

उनके विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक परिस्थितियों से साहित्य की अंतर्वस्तु ही प्रभावित नहीं होती, उसका रूप भी प्रभावित होता है। इसके पीछे मान्यता यह है कि साहित्य में किसी समाज के काल विशेष की ऐतिहासिक स्थितियों, समस्याओं, जीवन के अनुभवों और विचारों की व्यंजना होती है। उसमें सामाजिक यथार्थ और सामाजिक चेतना का संबंध मिलता है। इन सबसे साहित्य का स्वरूप बनता है।

मार्क्सवादी साहित्य-चिंतक तो साहित्य का उपयोग सामाजिक जीवन की समृद्धि के लिए ही मानते हैं। उनका साहित्य एवं कलाओं के बारे में कहना है, ये विशुद्ध रूप से मानवीय सर्जना तो है ही, इनका प्रयोजन, इनका लक्ष्य, सब कुछ मानवीय और सामाजिक जीवन से संबंधित है। मनुष्य इसका निर्माता है और ये मनुष्य के लिए ही हैं। अपने जीवन की रिक्तता को भरने के लिए, अपने जीवन को अधिकाधिक संपूर्ण बनाने के प्रयास में, उसे अधिकाधिक संपन्न और समृद्ध करने के हेतु इसने इसका निर्माण किया है।

1.2.1 साहित्यकार का समाज के प्रति कर्तव्य :

साहित्यकार समाज की एक इकाई है जिसका जन्म समाज में ही होता है और समाज ही उसका भरण-पोषण एवं संरक्षण करता है। साहित्यकार अपने सामाजिक अभावों, प्रभावों, त्रुटियों और अक्षमताओं को ही नहीं, समाज में होने वाली विविध तरह के आंदोलन एवं क्रांतियों से भी अछूता नहीं रह पाता। जहां एक ओर वह समाज की मानसिक क्षुधा की तृप्ति के लिए अपने साहित्य के रूप में उसे पोषक मानसिक आहार प्रदान करता है, वहाँ दूसरी ओर उसकी सभी कमियों का निराकरण करने का प्रयास भी करता है। उनके निवारण की प्रेरणा देते हुए वह दुष्ट वृत्तियों पर निर्ममता एवं कठोरता से व्यंग्य करता है, दुख, दैन्य, वैषम्य, अत्याचार, अनाचार और भ्रष्टाचार के निराकरण के लिए संसार का आह्वान करता है।

कविता साहित्य की सबसे उत्कृष्ट विधा है। कविता, शब्दों का ऐसा तानाबाना है, जो किसी एक के मर्म से निकलकर, किसी अन्य के मर्म को बड़ी सहजता से भेद जाती है। सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने या सामाजिक विसंगतियों पर कुठाराघात करने का जितना सामर्थ्य कविता में है, उतना शायद ही किसी अन्य विधा में है। कविता अपने युग के समाज की स्थिति, दशा, घटनाओं, परिवर्तनों, प्रवृत्तियों, प्रथाओं, कुरीतियों और विसंगतियों के प्रति सजग रही है। कविताएँ कवि की सामाजिक सजगता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। एक चैतन्य कवि समाज से निरपेक्ष होकर नहीं रह सकता। कवि अपनी क्षीण कलम के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को उकेरने का प्रयास करता है और उससे संबंधित वास्तविकता को पाठक के समक्ष लाने का प्रयत्न करता है। वह वर्तमान समय में समाज, देशकाल और स्थितियों में आए परिवर्तन को मात्र यथातथ्य प्रस्तुत न करके एक समाधान के रूप में

अपने सरोकारों को स्पष्ट करता है। इस प्रकार कवि सामाजिक चेतना को स्वर प्रदान कर समाज को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे का रास्ता दिखाता है।

1.3 यथार्थ : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप :

1.3.1 यथार्थ : अर्थ

यथार्थ का सामान्य अर्थ- सत्य, वास्तविक वस्तु स्थिति है, किन्तु यथार्थ का विग्रह करने पर यथा + अर्थ, यथा का अर्थ है- जिसका जो अर्थ हो, जिसकी जो स्थिति है, जो रूप है, जो दशा है, जो सत्य है, वही यथार्थ है। 'यथार्थ' शब्द दो पदों के योग से बना है ' 'यथा' और 'अर्थ'। 'यथा' अव्यय है जिसका हिंदी समानार्थी पद है 'जैसा' और 'अर्थ' वस्तु का द्योतक है। इस प्रकार यथार्थ का शाब्दिक अर्थ हुआ 'यथावस्तु'। अंग्रेजी में यथार्थ के लिए 'Real' शब्द समानार्थी है। यथार्थ के पर्याय रूप में सत्य, वास्तविकता, यथातथ्य आदि पदों का भी प्रयोग किया जाता है।

नालन्दा विशाल शब्द सागर में यथार्थ का अर्थ 'ठीक, उचित, जैसा है वैसा और सत्य' से लिया गया है। (नालन्दा विशाल शब्द सागर 1135)

आदर्श हिंदी शब्दकोश के अनुसार यथार्थ का अर्थ है- सत्य, ठीक, जैसा होना चाहिए वैसा, जैसा का तैसा। (आदर्श हिंदी शब्दकोश 647)

प्रामाणिक हिंदी शब्दकोश के अनुसार यथार्थ का अर्थ है- जो अपने अर्थ आदि के ठीक अनुरूप हो, ठीक, वाजिब, उचित, जैसा होना चाहिए वैसा, सत्यपूर्वक।

Webster New Dictionary of English language के अनुसार यथार्थ का अर्थ है**-**

> The state or fact of being real, having actual existence or having actually occurred; a real thing or fact. (Webster New Dictionary of Engish language 1246)

कामिल बुल्के अंग्रेजी कोश में यथार्थ का अर्थ हैं- वास्तविकता, असलियत, यथार्थता, सच्चाई, यथार्थवादिता, यथार्थसत्ता, यथार्थतत्त्व। (कामिल बुल्के अंग्रेजी कोश 543)

1.3.2 यथार्थ : परिभाषा एवं स्वरूप :

यथार्थ अंग्रेजी शब्द **real** का हिंदी रूपांतरण है, जिसकी व्युत्पति लैटिन के **res** धातु से हुई है। यथार्थ मूलतः दर्शनशास्त्र से संबंधित शब्द है। यथार्थ शब्द का सामान्य अर्थ है**-** जो जैसा है- ठीक वैसा, सत्य, प्रकृत, वस्तुतः आदि अर्थात् जो जैसा है, उसे ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करना यथार्थ है। यथार्थ का संबंध वास्तविकता से है जो वास्तव में समाज में विद्यमान है।

डॉ. अजब सिंह अपनी रचना *यथार्थवाद: पुनर्मूल्यांकन* में कहते हैं-

> यथार्थ वस्तु-स्थिति के अनुरूप होता है- जैसी वस्तु है वैसी स्थिति का वर्णन करना, यही यथार्थ है। (सिंह 80)

यथार्थ केवल प्राणी मात्र का चित्रण न होकर सम्पूर्ण समाज का चित्रण होता है। मनुष्य के जीवन में वह सब कुछ जिसे हम अपनी बोधेन्द्रियों, मन और बुद्धि द्वारा जानते हैं यथार्थ की सीमा में आ जाता है। यथार्थ इतिहास-जन्य परिस्थितियों की देन

है उसमें आकस्मिकता या घटनात्मकता का आंशिक योगदान हो सकता है पर वह अनिवार्य रूप से अप्रत्याशित की देन नहीं है। परिस्थितियों के द्वन्द्व से जो सच्चाई पैदा होती है, वही यथार्थ है।

डॉ. शिव कुमार मिश्र *यथार्थवाद* में लिखते हैं-

> यथार्थ के अन्तर्गत वे सारी अनेक रूपा अन्तः क्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनका आदमी अनुभव करने एवं परिज्ञान करने के सिलसिले में भागीदार है। (मिश्र 18)

मार्क्सवादी रचनाकार के लिए जीवन समाज अथवा मनुष्य का यथार्थ कोई टुकड़ों में बटी हुई वस्तु न होकर, अपने में एक ऐसी समग्र इयत्ता है जिसमें जीवन, समाज तथा मनुष्य अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त होते हैं। सत्य की, उसकी समग्रता तथा सम्पूर्ण वस्तुपरकता के साथ, उसकी क्रान्तिकारी विकास स्थितियों में प्रस्तुतीकरण ही मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन के यथार्थपरक चरित्र की केन्द्रीय विशेषता है। इसके लिए साहित्यकार या लेखक को अपनी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों की सजगता तथा सक्रियता के साथ, जीवन तथा समाज के बीच से गुजरना पड़ता है। शिवकुमार मिश्र अपनी कृति *यथार्थवाद* के अंतर्गत लिखते है-

> मार्क्सवादी लेखक जानता है कि यथार्थ किसी गोदाम में रखा हुआ कोई तैयार माल नहीं है जो बस इस बात की राह देख रहा हो कि खरीददार लेखक आयें, इसे खरीदें और अपने लेखन में उसका व्यापार करें। यथार्थ कोई पेटेंट वस्तु या बना-बनाया नुस्खा भी नहीं कि जो चाहे उसे कागज़ पर उतारकर आजमाने लगे। (मिश्र 148)

यदि आज के संदर्भ में साहित्य पर दृष्टि डाली जाए तो यह देखने को मिलता है कि साहित्यिक कृतित्व में कहीं-कहीं ही वास्तविकता पर आग्रह करने वाली दृष्टि दिखाई देती है। वास्तविकता या सच्चाई का अभिप्राय बहुधा अनुभूतियों को सजीव और साकार करना होता है। वास्तविकता का सबसे प्रकट रूप वेदना है। परंतु एक तो वेदना उस समय तक संपूर्ण सत्य नहीं है जब तक कि वह शक्ति देने वाला और आँखें खोलने वाला एक अनुभव न हो। दूसरे, वह अनुभव के किसी स्वायत्त क्षण में प्राप्त हो सकने वाले आनंद के और आस्था के बिना पतन ही कहलाएगी। विजय सुषमा द्वारा अनुदित *साहित्य और यथार्थ* में दिए गए हावर्ड फास्ट के मतानुसार-

> यथार्थ तो व्याकुलता पैदा करता है शक्तियों की सच्ची पड़ताल में जाने को बाध्य करता है तथा एक ऐसे क्षोभ को पैदा करता है जो कभी भी लपटों में बदल सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि यथार्थ एक किस्म की पक्षधरता की माँग करता है क्योंकि सच्चाई पक्षधर की होती है। (फास्ट 6)

यथार्थ अपने में एकांगी नहीं होता, अनेक प्रासंगिक स्थितियाँ उसे रूपायित करती हैं। यथार्थ के उत्स में वह पीड़ा समाई है जो व्यक्ति की अपनी है पर वह व्यक्तिगत न होकर समाज की चेतना का स्वरूप धारण कर लेती है। जिसे समष्टिकरण की परिभाषा दी जा सकती है। यही सामाजिक चेतना मूल्यों को निर्धारित करती है। जब रचनाकार रचना करता है तो इन मूल्यों का आश्रय लेता है।

सत्यकाम अपनी कृति *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद* में यथार्थ के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं-

> जीवन का यथार्थ मनुष्य के समस्त भौतिक और आवेगात्मक संघर्ष और सामंजस्य, मानवीय सम्बन्धों की व्यापकता, जटिलता और

> सुकुमारता तथा सामाजिक परिवेश और उसके अस्तित्व के कुल द्वन्द्वात्मक संबंध का पर्याय है। (सत्यकाम 48)

यथार्थ का संबंध जीवन की गतिशीलता से है। निरंतर गतिशील जीवन में ही यथार्थ के तत्त्व विद्यमान हैं। बिना समाज के यथार्थ का कोई अस्तित्व नहीं।

साहित्यकार समाज की विभिन्न गतिविधियों, समाज में आ रहे परिवर्तन के यथार्थ को हम सब के समक्ष प्रस्तुत करता है और प्रयत्न करता है कि उसे इस प्रकार से स्पष्ट किया जाए कि व्यक्ति अपने आसपास के यथार्थ से पूरी तरह अवगत हो जाए और जो कमियाँ उसे नज़र आएँ उसे दूर करने का प्रयत्न करे। यथार्थ का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है वह प्राणी मात्र का चित्रण न होकर सम्पूर्ण समाज का चित्रण होता है। डॉ.रामदरश मिश्र अपनी कृति *हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा* में लिखते हैं-

> यथार्थ एक व्यापक और संश्लिष्ट वस्तु है जिसमें मानव समाज के सामूहिक और व्यक्तिगत, बाहरी और भीतरी परिस्थितिगत और मानसिक अन्धकार में और प्रकाश में सभी प्रकार के सत्य एक दूसरे से मिले जुले होते हैं। (मिश्र 34)

यथार्थ हमारे जीवन, हमारे समाज के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। उसे देखने के लिए जीवन का गहरा अध्ययन और अनुभव अपेक्षित होता है क्योंकि यथार्थ के भीतर मनुष्य और उसका सम्पूर्ण समाज पूरी तरह से समाये हुए हैं फिर चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र हो, आर्थिक हो, वैयक्तिक हो या धार्मिक क्षेत्र हो। हर पहलु जो मनुष्य और उसके समाज से जुड़ा हुआ है यथार्थ के अंतर्गत आता है। डॉ.कमलेश्वर में नई कहानी की भूमिका कहते हैं-

> यथार्थ कोई स्थिर तत्त्व नहीं है, वह निरन्तर गतिमान है और उसके हज़ार पहलू हैं। जो आदमी को बदलते जाते हैं। विचार, परिवेश, भौतिक आधार और सम्बन्धों का निरंतर संक्रमण होते रहने की तरल स्थिति ही यथार्थ स्थिति है। (कमलेश्वर 98)

यथार्थ व्यक्ति के जीवन और समाज के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। जिसे व्यक्ति रोज़मर्रा की ज़िंदगी में अपने साये की तरह महसूस करता है। सारांश रूप में मुक्तिबोध की *नयी कविता का आत्मसंघर्ष* में दी इस विचारधारा से सहमत हुआ जा सकता है-

> आज का यथार्थ कोई रहस्यवादी धारणा नहीं है जिसको समझने के लिए इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना नाड़ियों को तीव्र करना जरूरी हो, आज का यथार्थ जनता के जीवन का यथार्थ है, जो हम स्वयं रोज़मर्रा जीते हैं। (मुक्तिबोध 89)

1.4 यथार्थवाद : स्वरूप एवं अवधारणा :

शिवकुमार मिश्र यथार्थवाद का उद्भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से मानते हुए 'यथार्थवाद' नामक पुस्तक के आमुख में लिखते हैं कि अपने समय के क्रांतिकारी वैज्ञानिक आविष्कारों, औद्योगिक प्रगति एवं दर्शन की प्रखर निष्पत्तियों से प्रेरित और अनुप्राणित एक सर्वांगपूर्ण जीवनदृष्टि तथा कलादृष्टि के रूप में 'यथार्थवाद' का उद्भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। साहित्य में यथार्थ प्रायः यथार्थवाद के रूप में प्रयुक्त होता है । यथार्थ, जीवन की वास्तविकता है और इस वास्तविकता को यथार्थवाद के द्वारा अनावृत किया जाता है। वास्तव में यथार्थ एक दृष्टि है और

यथार्थवाद उस दृष्टि को अभिव्यक्त करनेवाली एक विशेष शैली। इस तरह यथार्थवाद यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिम्ब हुआ। इसीलिए साहित्य में इन दोनों के मध्य कोई खास भेद नहीं किया जाता । सामान्यतः यथार्थ और यथार्थवाद में कोई सैद्धांतिक अथवा व्यावहारिक निश्चित भेदक रेखा का खींचना अत्यंत कठिन है। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है, पर इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। मदन केवालिया द्वारा संपादित *पाश्चात्य साहित्य शास्त्र की भूमिका* से उद्धृत शिपले के अनुसार-

> साहित्यिक समालोचन में यथार्थवाद शब्द का प्रयोग उन साहित्यिक कृतियों के लिए किया जाता है जो आदर्शवाद और स्वच्छंदतावाद के विरोध में वास्तविक जीवन की अनुकृति में निर्मित होती हैं और जो अपनी विषय वस्तु वास्तविक जीवन से ग्रहण करती हैं। यथार्थवादी लेखक वह होता है जो वस्तु उन्मुख दृष्टिकोण धारण करता है और अपनी रचना में व्यक्तिगत भावनाओं एवं विचारों को सन्निविष्ट न करके अपनी विषय वस्तु का निर्वाह फोटोग्राफिक, विवरणात्मक अथवा हीन शैली में करता है। (केवालिया 211)

मार्क्सवाद की अवधारणा के अनुसार सही यथार्थवाद वह है जो यथार्थ के सार तत्व को प्रत्यक्ष और कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है। जॉर्ज लुकाच ने *स्टडीज इन यूरोपियन रियालिज्म* में यथार्थवादी साहित्यकार की परिभाषा इस प्रकार दी है-

> मानव प्रगति के महान विषयों के प्रति कोई भी महान कलाकार उदासीन नहीं रह सकता। आवेगपूर्ण प्रतिबद्धता के बिना वह न तो प्रतिनिधि चरित्रों का सृजन कर सकता है और न ही गहरे यथार्थवाद

> की उपलब्धि कर सकता है। समाज में घटित समस्त घटनाएँ व परिस्थितियाँ साहित्यकार को प्रभावित करती हैं। साहित्यकार उन घटनाओं को बिना किसी पूर्वाग्रह या बिना लाग लपेट के अपनी रचनाओं में स्थान देता है। यही साहित्यकार सच्चे यथार्थवादी माने जाते हैं। सच्चे यथार्थवादी साहित्यकार की विशेषता यह है कि वह बिना किसी भय या पक्षपात के ईमानदारी के साथ जो कुछ भी देखता है, उसे चित्रण करें। (लुकाच 137)

यथार्थवाद, यथार्थ के आवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यथार्थ वह है जो साहित्य में समाज को वास्तविक चित्रण के रूप में प्रस्तुत करता है। इसलिए यथार्थवादी साहित्यकार अपनी रचनाओं में मानव समाज और जीवन का जो चित्रण करता है वह भौतिकवादी जगत होता है। जिसकी यथार्थ सत्ता है। वह साहित्य को जीवन तथा समाज के लिए एक सशक्त माध्यम मानता है। यथार्थ साहित्य में वास्तविकता के रूप में होता है और यथार्थवाद उस यथार्थ साहित्य को एक विशिष्ट वैचारिक अर्थ प्रदान करता है। भारतीय विचारक डॉ. नगेन्द्र के *भारतीय साहित्य कोश* दिए गए मत के अनुसार-

> यथार्थवाद अंग्रेजी शब्द 'रियलिज्म' का हिंदी पर्याय है। इसके अनुसार साहित्य में जीवन और जगत का यथातथ्य अंकन होना चाहिए।... यह वाद लेखक से निर्वैयक्तिक एवं निस्संग दृष्टि तथा तटस्थ निरुपण की माँग करता है। (नगेन्द्र 1026)

यथार्थवादी रचना पद्धति द्वारा ही यह कार्य संभव हो सकता है। यथार्थवादी-पद्धति जीवन के तथ्यपरक ब्यौरों और घटनाओं पर ही आधारित नहीं होती है। क्योंकि तथ्यों द्वारा जीवन की विशिष्ट घटनाओं का ही ज्ञान हो सकता है

जिनका संबंध इतिहास और समाज-विज्ञानों से है। यथार्थवादी कला में रचनाकार अपने अनुभव-ज्ञान से घटनाओं और तथ्यों पर आधारित सत्य का पुनर्सृजन करता है जो विशेष की अपेक्षा सामान्य होता है।

इंग्लैण्ड की मिस मार्गरेट हाकसेन को लिखे अपने एक पत्र में एंगेल्स ने 'यथार्थवाद' के स्वरूप को बडे संक्षिप्त, किंतु बडे तात्विक रूप से स्पष्ट कर दिया है। डॉ. त्रिभुवन सिंह की कृति *हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद* से उद्‌धृत एंगेल्स का मत है-

> मेरे विचार से यथार्थवाद का आशय लेखक विवरणों और ब्यौरों के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करें। (एंगेल्स 81)

एंगेल्स के उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यथार्थवादी लेखक की वस्तुस्थिति के एक-एक रग-रेशे को अपनी कृति में चित्रित करना चाहिए वहीं, दूसरी ओर अधिक महत्त्वपूर्ण बात उन्हें सच्चाई के साथ चित्रित करने की है। सत्य के प्रति यथार्थवाद का आग्रह उसके चरित्र के केन्द्रीय विशेषता है। लेखक को वस्तुगत यथार्थ का निरीक्षण वस्तुपरक दृष्टि से करना चाहिए, अपने निजी विचारों एवं निजी दृष्टि को सक्रिय कर वस्तुगत यथार्थ को इसमं गड्डमड्ड नहीं करना चाहिए।

'यथार्थवाद' को लेकर एक बहुत बड़ी भ्रांति यह है कि वह जीवन, समाज तथा मनुष्य के कुत्सित, घिनौने तथा वीभत्स पक्षों के चित्रण में ही रूचि लेता है। परंतु कोई भी सच्ची यथार्थवादी कृति पाठक को कुरूप तथा घिनौनी वास्तविकता से प्रेम करना नहीं सिखाती। अपनी कलात्मक सामर्थ्य के बल पर वह पाठक को कुरूप तथा घिनौनी वास्तविकता से घृणा करना ही सिखाती है। पाठक कुरूप तथा घिनौनी वास्तविकता से प्रेम ना करके ऐसे कला के प्रति ही अपना प्रेम निवेदित करता है।

यथार्थवाद के प्रत्येक समर्थ लेखक ने सामाजिक जीवन की विकृतियों, अनैतिक रुझानों तथा अस्वस्थ भूमिकाओं के चित्रण में यही स्वस्थ तथा रचनात्मक रुख अपनाया है। ये लेखक जीवन, समाज तथा मनुष्य के ऐसे पक्षों तथा ऐसे अंशों का चित्रण इसलिए करते हैं, ताकि पाठक भी उनसे घृणा करना सीखें। विजय सुषमा द्वारा अनुदित *साहित्य और यथार्थ* में दिए गए पाश्चात्य विचारक हावर्ड फास्ट के मत के अनुसार-

> यथार्थ रूचि की जगह रूढ़ि, कविता की जगह कुकविता, रचनात्मकता के पूर्ण विकास की जगह कोई लीक नहीं है। यथार्थवाद प्यार, गर्मजोशी, संवेदनशीलता का दुश्मन नहीं इन गुणों का अनुचर है। (फास्ट 31)

यथार्थवाद जीवन की सफल अभिव्यक्ति है। यथार्थवादी लेखक जो कुछ भी लिखता है, उसमें कल्पना के स्थान पर यथार्थ की प्रधानता होती है। उसमें सामाजिक चेतना निहित होती है और वह व्यक्ति को जकड़न से मुक्ति दिलाता है। साहित्य में यथार्थवाद के कई प्रयोग हो सकते हैं एक तो यह कि वर्तमान के प्रति असंतोष, दूसरा वर्तमान पर केन्द्रित प्रहार, तीसरा समता का प्रचार, चौथा प्रश्नों का उत्तर देना, पाँचवा व्यंग से जनता की चेतना को जागृत करना, मानवीय व्यवहार के मूल में निहित भावनाओं को उभारकर प्रत्येक कार्य की वास्तविकता को दिखाना, सातवां मानव की महत्ता को स्वीकार करके अन्य किसी सत्ता का बहिष्कार करना। आठवां समस्त मानव जाति सूत्र में बंधकर एक राज्य व्यवस्था की निर्माता बन जाए। नवां मानव अतीत का नहीं वर्तमान का प्राणी है।

इस प्रकार यथार्थवादी साहित्यकार, समाज और व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों, उसके प्रत्येक आचार विचारों, उसकी आर्थिक एवं नैतिक परिस्थितियों का मूल्यांकन तत्कालीन परिवेश के आधार पर वास्तविक रूप में ही नहीं करता अपितु उसको इस रूप में भी अभिव्यक्ति देता है कि पाठक युग के सत्य एवं समाज में होने वाले कार्य व्यापारों के औचित्य, अनौचित्य को सरलता से परख सकें और उन मर्यादाओं का अनुसरण कर सकें जिन पर चलकर एक आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है।

1.4.1 आदर्शवाद : स्वरूप एवं अवधारणा :

आदर्शवाद कोई आंदोलन नहीं है बल्कि एक विचारधारा है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में सुकरात का शिष्य प्लेटो आदर्शवाद का प्रारम्भिक उन्नायक माना जाता है। आदर्शवाद अंग्रेजी शब्द 'आइडियलिज्म' का भाषान्तर है। आइडियलिज्म शब्द की व्युत्पत्ति 'आइडिया' से हुई है। इस प्रकार आदर्शवाद का दूसरा नाम विचारवाद भी हो सकता है। आदर्शवाद एक प्रकार का दार्शनिक अथवा साहित्यिक दृष्टिकोण है, प्रवृत्ति है। डॉ.भगीरथ मिश्र अपनी कृति हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास में कहते है-

> वह धारणा, जिससे प्रेरित होकर साहित्यकार ऐसे चरित्र अथवा ऐसी परिस्थितियों का चित्रण करता है जो मानव समाज के लिए अनुकरणीय है (यह आवश्यक नहीं कि वैसे चरित्र और परिस्थितियाँ सम्पूर्ण रूप में लोक में देखी और सुनी जायें) साहित्य में आदर्शवाद कहलाती हैं। (मिश्र 420)

हिंदी साहित्य के पूर्वमध्यकाल तथा छायावाद युग में आदर्श की प्रमुखता रहीं है। आदर्शवाद किसी भी तथ्य या परिस्थिति का मूल्यांकन करने का तरीका है।

दृश्यमान जगत में एक अदृश्य चेतना कार्य करती है, उसके अनुरूप हरेक परिस्थिति के बारे में सोचना निर्णय लेना सहज है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक वीरनायकों एवं वीरनायिकाओं की कहानी आदर्शों की श्रेष्ठता दिखाने के लिए रचित थी। मध्ययुग और आधुनिक युगों की अधिकांश रचनाओं में यथार्थवाद की प्रवृत्ति दर्शनीय है। हिंदी के सुविख्यात कवि कबीरदास की रचनाएँ यथार्थवाद पर आधारित थीं। वे तत्कालीन समाज की कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, अनाचारओं आदि का यथार्थ चित्रण करते थे। वे अपनी रचनाओं द्वारा समाजिक कुरीतियों के विरुद्ध क्रान्ति की प्रेरणा दिलाते रहे। आधुनिक काल तक आते-आते पाश्चात्य संस्कृति एवं चिंतन से प्रेरणा पाकर साहित्य क्षेत्र में यथार्थवाद की प्रवृत्ति व्यापक होने लगी।

आदर्शवाद के दो रूप है- नैतिक आदर्शवाद और दार्शनिक आदर्शवाद। व्यक्ति और समाज को किसी आदर्श के पथ पर ले जाने की प्रवृत्ति का परिणाम नैतिक आदर्शवाद में दर्शनीय हैं। वाल्मीकि रामायण, तुलसीदास कृत रामचरित मानस, जयशंकर प्रसाद कामायनी आदि रचनाएँ नैतिक आदर्शवाद की रचनाओं के अंतर्गत आती हैं।

दार्शनिक आदर्शवाद दर्शन का विषय है। ईश्वर की सत्ता और चराचरों में अभिव्यक्त उनकी चेतना की व्याख्या दार्शनिक आदर्शवाद में निहित है। छायावादी कविता में पाठक कल्पना से उद्भूत आदर्शीकरण पा सकते हैं। सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा ने आदर्शवाद को कल्पनानुप्रणीत रूप में अपनाया। इनकी कविताओं में जीवन का एक दृष्टिकोण हो, जो आदर्शवादी ही है। समाज एवं व्यक्ति को भलाई और प्रगति के लिए नैतिक आदर्शवाद ही उपयोगी रहता है।

1.4.2 यथार्थवाद और आदर्शवाद में अंतर :

यथार्थवाद का आदर्शवाद से विरोध उसकी दार्शनिक चिंतन को लेकर है। यथार्थवादी लेखक अपनी वैज्ञानिक और ऐतिहासिक समझ लेकर जब यथार्थ चित्रण करता है, तो उसकी दृष्टि मनुष्य, सामान्य जीवन को उनके स्थिर रूप में न देख कर, उनके क्रांतिकारी विकास में देखती है। यथार्थवादी लेखक अपनी दार्शनिक चिंता के आधार पर जगत और उसके सारे क्रिया-कलापों को निरंतर गतिशील स्वीकार करता है और ऐसी स्थिति में स्वभावतः उसकी दृष्टि वस्तु के वर्तमान रूप पर ही केंद्रित न रहकर उस रूप को भी देखती है जो संभावित है। विरूपताओं और विकृतियों से उसका युद्ध मनुष्यता के उस आदर्श की प्राप्ति के लिए ही है जो यथार्थ के गर्भ में कसमसा रहा है। इस आदर्श को साकार करने के लिए यथार्थवादी रचनाकार अपनी समूची क्षमता से सक्रिय होता है। 'जो कुछ है' वह उसी का चित्रण करता है, किंतु उसका यह चित्रण जो कुछ यथार्थ के गर्भ से सामने आने वाला है उससे दृष्टिपथ में रखते हुए ही होता है। किंतु आदर्श का यह रूप असंभाव्य नहीं बन पाता। उसे देर-सबेर सामने आना ही है। आदर्शवादी लेखक के 'आदर्श' और यथार्थवादी रचनाकार द्वारा पोषित 'आदर्श' का आधारभूत अंतर यही है। आदर्शवाद जीवन की श्रेष्ठ सम्भावित स्थितियों पर बल देता है और यथार्थवाद उसकी वर्तमान वास्तविक दशा को अभिव्यक्त करता है। एक दूसरे के अतिवाद और तज्जन्य विकृति की रोकथाम की दृष्टि से आदर्शवाद और यथार्थवाद अपनी दृष्टि-भिन्नता रखते हुए भी परस्पर पूरक सिद्ध हुये हैं। डॉ. सर्वजीत राय अपनी कृति *हिंदी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद* में लिखते है-

> यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनों का उद्भव यद्यपि भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों को लेकर हुआ है, पर दोनों को एक दूसरे से सम्बद्ध करके

ही समझा जा सकता है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है और दोनों मिलकर ही एक-दूसरे को पुष्ट और आधारयुक्त बनाते हैं। (राय 67)

1.4.3 यथार्थवाद के विभिन्न रूप :

यथार्थवाद का उद्भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। इससे पूर्व साहित्य में उसकी स्थिति एक वाद अथवा आंदोलन के रूप में न होकर चित्रण को अधिक पूर्ण, वातावरण को अधिक सजीव तथा रचनाशीलता को अधिक सार्थक और स्वाभाविक बनाने वाली एक सहज नैसर्गिक रुझान के रूप में थी। सभ्यता के आरंभ में जब आदिमानव ने गुफाओं में चित्र उकेरे तथा उसने यथार्थ के प्रति अपनी एक सहज स्वाभाविक रुझान का परिचय दिया है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया, रचनाकारों की यथार्थ के प्रति यह स्वाभाविक अभिरूचि अधिक कलात्मक तथा परिष्कृत रूप में सामने आती रही। यथार्थवाद उत्कर्ष में 18वीं शताब्दी में फ्रांस की प्रसिद्ध राज्यक्रांति (1789 ई.) का महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल सामंतवादी व्यवस्था का ढांचा चरमरा कर टूटा, वरन् लेखकों तथा दार्शनिकों की एक नई पंक्ति का उदय हुआ जिसने नागरिक स्वाधीनता का नारा देते हुए मानव समाज के समक्ष विकास की नई दिशा उद्घाटित की और सामंतवादी व्यवस्था के आर्थिक और अनैतिक आदर्शों को चकनाचूर कर दिया। परिणामस्वरूप मानवीय विकास की अक्षय संभावना दिखाई पड़ी।

हिंदी साहित्य में यथार्थवादी चेतना के विकास से अवगत होने के लिए यथार्थवाद के विभिन्न रूपों पर विचार करना आवश्यक है। यथार्थवाद के रूपों को लेकर विद्वानों में भी एकरूपता नहीं है। वर्तमान समय में यथार्थ के नये-नये रूप सामने आ रहे हैं इस तरह यथार्थवाद के कई रूप दिखाई पड़ते हैं। कुछ प्रमुख रूप इस प्रकार है-

1.4.3 .1 प्रकृतिवाद यथार्थवाद :

प्राकृतिक यथार्थवाद शब्द दर्शन से सम्बन्धित है। इसके लिए अंग्रेजी में 'नेचुरलिज्म' शब्द व्यवहृत होता है। अपने वर्तमान अर्थ में प्रकृतिवाद की चर्चा मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी में शुरू हुई। प्रकृतिवाद के अनुसार प्रकृति ही परम सत्य है, संपूर्ण वास्तविकता है। मानवीय व्यवहार को प्राकृतिक नियमों के आधार पर ही समझा जा सकता है। मनुष्य के प्रति एक जीवन शास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाने के कारण प्रकृतिवादी लेखक के लिए मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा जैसी किसी बात का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। प्रकृतिवाद के अनुसार प्रकृति ही परम सत्य है, संपूर्ण वास्तविकता है। प्रकृतिवादी के लिए ज़िंदगी एक हारी हुई लड़ाई के समान है। उसके अनुसार प्रकृति तथा समाज की बाहरी शक्तियाँ न केवल मनुष्य के स्वातंत्र्य के समक्ष अवरोध बनकर प्रस्तुत होती है। वे उसकी शक्ति को भी सीमित करती हैं। मनुष्य में इन शक्तियों के अतिक्रमण करके अपना रास्ता बनाने की सामर्थ्य नहीं है। अपने चिंतन की दुर्लभ भूमिकाओं के बावजूद प्रकृतिवादी रचनाकारों ने अपने समय की सामंतवादी व्यवस्था के नंगेपन को उभरा है, उसकी तहे दिल से भर्त्सना की है, उसे मुलजिमों के कटघरे में खड़ा किया है। यह सही है कि व्यवस्था की आक्रांतकारी भूमिका के विरोध में एक

जीवंत दृष्टिकोण को लेकर प्रकृतिवादी लेखक नहीं उठ सके फिर भी सामंतवादी व्यवस्था की विरूपता का जो उद्घाटन उन्होंने किया वहीं प्रकृतिवाद की स्थाई देन है। शिवकुमार मिश्र कृत *यथार्थवाद* से उद्‌धृत- अपने प्रसिद्ध निबंध दि एक्सपेरिमेंटल नावेल में प्रकृतिवादी उपन्यासों की रचनापद्धति का विवरण देते हुए इस विचारधारा के प्रवर्तक एमिल जोला का कहना है-

> पूर्व निर्धारित अथवा पूर्व निश्चित सिद्धांतों तथा नैतिक आग्रहों से सर्वथा मुक्त होकर उपन्यासकार को एक वैज्ञानिक की भाँति अपनी रचना में इस प्रकार प्रवृत्त होना चाहिए, जैसे की वह कोई प्रयोग कर रहा है। अपने उपन्यास में घटनाओं के सावधानीपूर्वक प्रलेखन (डाक्यूमेटेशन) करते हुए उसे वस्तुओं एवं प्रक्रियाओं की बडे तटस्थ भाव से परीक्षा करनी चाहिए ताकि विवादरहित निष्कर्ष सामने आ सक। उसे अपने उपन्यास में अपने पात्रों को महज एक खास परिवेश और अनुवांशिकता देनी है, उसके पश्चात केवल उनकी स्वतः स्फूर्त प्रतिक्रियाओं को एक-एक क्रम से परखना है। (जोला 90)

परन्त आलोचक प्राकृतिक यथार्थवाद की प्रवृति को यथार्थवाद की मूल प्रवृति से भिन्न मानते हैं। सुवास कुमार इस विषय पर अपनी कृति गल्प का यथार्थ कथालोचन के आयाम में लिखते हैं-

> प्रकृतवाद यथातथ्य और वास्तविक का मात्र फोटोग्राफी चित्रण करता में अभिव्यक्त करने का पक्षधर है। (कुमार 19)

सत्यकाम अपनी कृति *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद* में प्राकृतिक यथार्थवाद के संबंध में लिखते हैं-

> वह 'यथार्थ' को दस्तावेज का रूप दे देता है जहाँ प्राकृतिक और जीवन विषयक तथ्यों का, जिन्हें हम नंगी आँखों और उंगलियों से देख और छू सकते हैं, समस्त ब्योरों के साथ वर्णन होता है। (सत्यकाम 45)

शिवकुमार मिश्र प्राकृतिक यथार्थवाद को यथार्थवाद के अंतर्गत नहीं देखते। शिवकुमार मिश्र अपनी कृति यथार्थवाद में लिखते हैं-

> वस्तुतः मनुष्य के प्रति एक जीवनशास्त्रीय (बाइलाजिकल) दृष्टिकोण अपनाने के कारण ही प्रकृतिवादी लेखक के लिए मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा-जैसी किसी बात का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। (मिश्र 87)

स्पष्ट है कि प्रकृतिवादी की यह पद्धति यथार्थवादी पद्धति से अपना भिन्न महत्त्व रखती है। प्रकृतिवाद यथातथ्य और वास्तविक अंकन को ही लक्ष्य बना लेता है, इस पद्धति को अपनाने वाला प्रकृतिवादी रचनाकार अपने समय के संघर्षमय जीवन का महज दर्शक ही बन पाता है या अधिक से अधिक वह अपने समय की ज़िंदगी पर आलोचनात्मक टिप्पणी करने का गौरव पा सकता है। इसमें लेखक की निजी संवेदना एवं दृष्टि का कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन जब तक लेखक की संवेदना रचना-कर्म के साथ नहीं जुड़ेगी, तब तक साहित्य की सामाजिक सत्ता निर्मित नहीं हो पायेगी। वस्तुतः प्रकृतिवाद की प्रवृत्ति सामाजिक यथार्थवाद से सर्वथा भिन्न है।

1.4.3 .2 मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद:

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पाश्चात्य विचारक फ्रायड, एलडर और युंग के सिद्धांतों पर आधारित है। इसमें मानव मन के आंतरिक सत्य को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी रचनाकार साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक ढंग से मानव के मन में छिपे हुए गूढ़ रहस्यों को अनावृत्त करता है। परंतु उसकी वस्तुपरकता का संबंध वस्तुजगत के सामाजिक यथार्थ से न होकर व्यक्ति-मन के यथार्थ से है और मनोविश्लेषणवादी लेखक की दृष्टि व्यक्तिपरक दृष्टि होती है वस्तुपरक नहीं। साथ ही मनोविश्लेषणवादी लेखक की दृष्टि भी व्यक्ति के सम्पूर्ण निजता को भेद पाने और उसे प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं है। वह तो व्यक्ति मन के कतिपय महत्त्वपूर्ण बिंदुओं और खास प्रवृत्तियों को ही जो उसकी अपनी विचारधारा के चौखटे में फिट बैठती है उसी को अपने अध्ययन का विषय बनाता है और उसी के स्थिति के अनुसार यथार्थ स्थिति का वर्णन करता है। व्यक्ति की निजता उसकी सामाजिक संदर्भता में ही परखी जा सकती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र अध्ययन उसे उसकी सामाजिक संदर्भता से काटकर नहीं किया जा सकता है। मनोविश्लेषणवादी इस तथ्य को नज़र अंदाज कर जाता है। यही कारण है कि अंग्रेज़ी विद्धान 'लुकाच' प्रकृतिवादियों की वस्तुपरकता तथा मनोविश्लेषणवादियों की व्यक्तिपरकता दोनों को मिथ्या घोषित करते हैं और यथार्थवाद को दोनों से अलग करके उसे अलग से समझने पर विशेष बल देते हैं। जार्ज लुकाच स्टडीज *इन यूरोपियन रियालिज्म* में कहते हैं-

> यथार्थवाद मिथ्या वस्तुपरकता तथा मिथ्या व्यक्तिपरकता के बीच का कोई माध्यमार्ग नहीं है, वर इसके विपरीत वह हमारे समय की भूलभूलैया में बिना किसी नक्शे के भटकाने वाले लोगों के द्वारा गलत

> रूप से प्रस्तुत किए गये प्रयत्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचाने वाला एक तीसरा रास्ता है। (लुकाच 6)

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद वैयक्तिकता को महत्त्व देता है। यहाँ सामाजिक सन्दर्भ गौण हो जाता है। सामाजिक सन्दर्भ की अवहेलना कर व्यक्ति के संकुचित यथार्थ को चित्रित करना एकांगी दृष्टि का परिचायक है। यथार्थ के इस रूप को कई हिंदी रचनाकारों ने अपनाया। अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी आदि के साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थ का अंकन मिलता है।

1.4.3 .3 आलोचनात्मक यथार्थवाद :

यथार्थवाद के उद्भव के साथ 19वीं और 20वीं शताब्दी में, प्रकृतिवादी दृष्टिकोण से भिन्न, वास्तविक ज़िंदगी को उसकी वस्तुपरकता में और सच्चाई के साथ देखने-परखने और चित्रित करने वाले जिस साहित्य का जन्म और विकास हुआ, मार्क्सवादी आलोचकों ने उसे 'आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य' तथा उसमें निहित यथार्थदृष्टि को 'आलोचनात्मक यथार्थ दृष्टि' के नाम से संबोधित किया है। मार्क्सवादी साहित्य चिंतक इस 'आलोचनात्मक यथार्थ' को 'बुर्जुआ यथार्थवाद' के नाम से भी पुकारते हैं। 'समाजवादी यथार्थवाद' से भिन्न इस 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' नाम के लिए एक आधार तो यह बनाया गया कि इसके अंतर्गत समाजवादी दृष्टि की सक्रियता नहीं है और दूसरे कि यह युग, जीवन तथा समाज की

विकृतियों तथा विरूपताओं के प्रति एक सहज आलोचनात्मक दृष्टिकोण ही रखता है, किंतु रचनात्मक संभावनाओं को उजागर नहीं करता। सत्यकाम अपनी कृति *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद* में आलोचनात्मक यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं-

> आलोचनात्मक यथार्थवाद यथार्थवाद का वह रूप है जो इंद्रियाग्राह्य बोध को आधार मानकर व्यक्ति और समाज की वास्तविकताओं का उद्घाटन और विश्लेषण सौंदर्यशास्त्रीय अनुभवों के रूप में करता हैं। वह जीवन की सच्चाइयों का तटस्थ अवलोकन भी करता है, पर प्राकृतिकवादियों की तरह अपने को इतने ही तक सीमित नहीं कर लेता। वह केवल समाज और व्यक्ति के जीवन के निम्न, ऋणात्मक, निन्दनीय और गर्हित पक्षों को ही अपना चित्रणीय विषय नहीं बनता, वरन् जीवन के उज्ज्वल और उदात्त पक्षों पर भी बल देता है। उसकी दृष्टि और पद्धति आलोचनात्मक होती है तथा वह केवल सतह पर तैरते यथार्थ का चित्रण न कर उसकी गहराइयों में प्रवेश करता है और यथार्थ की भीतरी पर्तों को भेदकर सामाजिक सत्य का उद्घाटन करता है। (सत्यकाम 7)

आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों के बारे में सुवास कुमार अपनी कृति *गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम* में लिखते हैं -

> पूँजीवादी समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करने की दृष्टि से आलोचनात्मक यथार्थवाद बड़ा ही कारगर साबित हुआ है। आलोचनात्मक यथार्थवाद ने प्रकृतिवाद की सीमाओं को अच्छी तरह

> प्रकट कर दिया, अभिजात साहित्य-दृष्टि को बेनकाब करते हुए उसके रूपवादी खोखलेपन की जगह जनपक्षधरता और सामाजिक प्रतिबद्धता को स्थापित किया। (कुमार 30)

बीसवीं शताब्दी के आलोचनात्मक यथार्थवाद का सामाजिक सार वही नहीं है, जो कि सामाजिक यथार्थवाद का है। आलोचनात्मक यथार्थवाद समाजवादी यथार्थ के विरोध में खड़ा नहीं हो सकता क्यकि आलोचनात्मक यथार्थवाद अपनी समस्त विशेषताओं के अतिरिक्त अपने सृजन में भविष्य का कोई मानचित्र नहीं बना सका, जिसे समाजवादी यथार्थवादी लेखकों ने अपनी रचना में समाजवादी दृष्टि से निरूपित किया है। इस प्रकार आलोचनात्मक यथार्थवाद में यथार्थ अंशतः रचनाकार के व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण से निर्धारित होता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद में प्रारंभ से ही स्वच्छंदतावादी भावबोध की प्रतिक्रियाएँ मिलती है। अन्सर्ट फिशर *द नेसेसिटी ऑफ आर्ट* में कहते है-

> स्वच्छंदतावाद को वस्तुतः आलोचनात्मक यथार्थवाद का आरंभिक दौर मानना चाहिए। आलोचनात्मक यथार्थवाद में दृष्टिकोण स्तर पर उससे कोई आधारभूत भिन्नता नहीं दिखाई पड़ती, केवल पद्धति तथा समय में अंतर अवश्य आ गया है। (फिशर 103)

मार्क्सवादी अवधारणा के अनुसार बिना प्रतिबद्धता के कोई कलाकार असार से सार को कभी पृथक नहीं कर सकता। सामाजिक विकास की समग्रता के परिप्रेक्ष्य में जो रचनाकार प्रगति के प्रति उत्साह और प्रतिक्रिया के प्रति घृणा भाव नहीं रखता, जो अच्छे व्यक्ति से प्रेम करता है और बुरे से घृणा नहीं करता, ऐसा लेखक

महान साहित्य के लिए आवश्यक रचना विवेक भी नहीं रखता। शिवकुमार मिश्र अपनी कृति *यथार्थवाद* में लिखते हैं-

> पूँजीवाद की असंगतियों तथा अमानवीय हरकतों से विक्षुब्ध लेखक चूँकि भावुक तथा संवेदशील लेखक थे, अतः वे पूँजीवाद के इस रचनात्मक चरित्र को नहीं देख सके। इतिहास की वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव ही इसका मूलवर्ती कारण है, जिसके तहत न केवल उन्हें जीवन भर संत्रास तथा तनाव में जीना पड़ा, अपनी कला सर्जना की बलि भी चढ़ा देनी पड़ी। (मिश्र 60)

वस्तुतः आलोचनात्मक यथार्थवाद के संबंध में यही कहा जा सकता है कि भले ही आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव दिखता है, किंतु युगीन यथार्थ को संवेदनशीलता, निष्ठा, ईमानदारी और सच्चाई के साथ चित्रित करने में यह पूरी तरह समर्थ है। इसकी जनोन्मुखी भावना इसके यथार्थ-चेतना को सार्थक बनाती है।

1.4.3.4 अतियथार्थवाद :

अतियथार्थवाद के लिए अंग्रेजी में 'सुररियलिज्म' शब्द का प्रयोग किया गया है। अतियथार्थवाद की शुरुआत सबसे पहले फ्रांस में हुई। इसके प्रवर्तक आंद्रे ब्रेतां है। इस आंदोलन के विकास में प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात उत्पन्न हुई सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा।

त्रिभुवन सिंह अपनी कृति *हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद* में अति यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं-

> साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति जब समाज की मर्यादा एवं परंपरा की सीमाओं का अतिक्रमण करके अत्यंत ही नग्न रूप धारण कर लेती है तो उसे अतियथार्थवाद कहते हैं। (सिंह 20)

अतियथार्थवाद में समाज के कुत्सित सत्य को बिना किसी आवरण के समाज के समक्ष प्रकट कर दिया जाता है और यहां पर नैतिकता अपना कोई महत्व नहीं रखती। अति यथार्थवाद में रचनाकार को बिना किसी झिझक के निषिद्ध सत्य प्रकट प्रकट करता है। जिससे कि यह सत्य है कहीं-कहीं यह सत्य वीभत्स और जुगप्सापरक हो जाता है। अति यथार्थवाद समाज के प्रति आस्था और विश्वास प्रकट करता है। इसमें रचनाकार संसार के जिस सत्य को प्रकट करता है वह उसकी स्वप्न और अवचेतन मन की देन होता है इसलिए अति यथार्थवाद में चित्रित यथार्थ कल्पना-प्रसूत रहता है। यहाँ पर सामाजिक विद्रोह भी भौतिक धरातल पर ना होकर मानसिक धरातल तक ही सीमित रहता है। जिस यथार्थ वर्णन में जीवन की वास्तविकता और तथ्यात्मकता अंतर्निहित नहीं होती ऐसा यथार्थ सिर्फ केवल भ्रम ही पैदा कर सकता है। यथार्थ कोरे सत्य का केवल दर्शक नहीं है, वह मनुष्य और समाज के संबंधों की विवेचना है, उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति है। इसीलिए अतियथार्थवाद की हिंदी साहित्य में कोई सार्थक उपलब्धि दिखाई नहीं देती। हिंदी की नकेनवादी काव्यधारा पर अतियथार्थवाद का प्रभाव दिखाई देता है।

1.4.3 .5 समाजवादी यथार्थवाद :

समाजवादी यथार्थवाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मक्सिम गोर्की न सन् 1934 में हुई पहली कांग्रेस बैठक में इसके स्वरूप का आलोकपात करते हुए किया। समाजवादी यथार्थवाद के मूल में समाजवाद का का चिंतन है, जो पूँजीवादी समाज

व्यवस्था की अराजकता को खत्म करने के लिए प्रतिबद्ध है। समाजवादी यथार्थवाद पूँजीवादी संस्कृति या बुर्जुआ संस्कृति का विरोध करता है और उसके स्थान पर आम आदमी को प्रतिष्ठित करता है। समाजवाद का मुख्य ध्येय पूँजीवादी समाज व्यवस्था के विरूद्ध समाजवादी समाज व्यवस्था की स्थापना कर वर्ग संघर्ष को समाप्त करना है। शिवकुमार मिश्र अपनी कृति *यथार्थवाद* में समाजवादी यथार्थवाद को यथार्थ की नई मंजिल मानते हुए लिखते हैं-

> समाजवादी यथार्थवाद यथार्थवादी कला आन्दोलन के विकास की नव्यतम मंजिल है। पूँजीवादी समाज व्यवस्था की विरूपता से आक्रांत, उसका निर्मम उद्घाटन करने तथा उसे अंतर्मन से धिक्कारने के बावजूद भविष्य की उन रचनात्मक शक्तियों को देख पाने की आलोचनात्मक यथार्थवादियों की दृष्टि असमर्थता के कारण ही, जो पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए एक नये और मंगलमय भविष्य को उजागर कर सकें, समाजवादी समाज की स्थापना के साथ ही, एक नये प्रकार की यथार्थदृष्टि के उपस्थापन की आवश्यकता महसूस की गयी। इस नयी यथार्थदृष्टि को प्रस्तुत करते हुए उसके पुरस्कर्ताओं ने दावा किया वह न केवल आलोचनात्मक यथार्थवादियों की एकांगी तथा अपूर्ण यथार्थदृष्टि की तुलना में मनुष्य, समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को उनकी सम्पूर्णता में देखने और प्रस्तुत करनेवाली है, वरन् वह एक रचनात्मक दृष्टि भी है जिसमें भविष्य के नये और यथार्थवादी कलासृजन की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ भी संलग्न हैं। (मिश्र 25)

अजब सिंह अपनी रचना यथार्थवाद: पुनर्मूल्यांकन में समाजवादी यथार्थवाद के बारे में लिखते हैं-

> समाजवादी यथार्थवाद को लेखक संसार के परिवर्तन की सम्पूर्णता में देखते हैं। समाजवादी यथार्थवाद संघर्ष का परिणाम है। सच्चाई के लिए हर समाज में हमेशा संघर्ष करना होता है। केवल संघर्ष के रूप बदल जाते हैं । यथार्थ संघर्ष के माध्यम से ही समाजवादी यथार्थवादी लेखक अपना रास्ता बनाता है। इसलिए समाजवादी यथार्थवादी साहित्यकार के पास कहने, सुनने एवं संवाद करने की एक शैली होती है। (सिंह 82)

निष्कर्षतः समाजवादी यथार्थवाद अन्य यथार्थवाद की तुलना में जनता के सबसे सन्निकट है। इसका मूल अभिप्रेत पूँजीवादी शक्ति से आक्रांत जनता को उनकी पीड़ा से मुक्ति दिलवाना है। समाजवादी यथार्थवाद ने वर्तमान शोषण आधारित समाज-व्यवस्था में बदलाव की माँग कर समाज में परिवर्तन लाने में कारगर भूमिका निभाई है। समाजवादी यथार्थवाद में एक नये समतामूलक समाज की आकांक्षा निहित है। एक बेहतर भविष्य की आशा संजोए समाजवादी यथार्थवाद जनता के हित के लिए पूरी तरह से समर्पित दिखाई देता है। हिंदी की प्रगतिशील काव्यधारा समाजवादी यथार्थ की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

1.4.3 .6 जादुई यथार्थवाद :

जादुई यथार्थवाद जादुई संदर्भ का पर्याय नहीं है, जादुई यथार्थवाद के अंतर्गत रचनाकार फेंटेसी या कल्पना के माध्यम से जीवन की सच्चाइयों मिथक और परिकथा का प्रयोग करते हुए अभिव्यक्त करता है। जादुई यथार्थवाद को अंग्रेजी में 'मैजिक

रियलिज्म‘ कहा जाता है। इस शब्द का प्रथम प्रयोगकर्ता फ्रेंज रोह हैं। 1950 से 70 के मध्य दक्षिण अमेरिका के कई उपन्यासकारों में ऐसे उपन्यासों का सृजन किया जो अपने परंपरागत रूप से भिन्न थे इन उपन्यासों में अतीत-वर्तमान, इतिहास-मिथक, वास्तविकता-फेंटेसी, यथार्थ-भ्रम, अभिजात संस्कृति-जन संस्कृति का मिला-जुला कलात्मक रूप पाया गया। यह नई तरह की शैली यथार्थ की प्रचलित शैली से बिल्कुल अलग थी। इस तरह के यथार्थ के लिए जादुई यथार्थवाद शब्द का प्रयोग किया गया। जादुई यथार्थवाद के अंतर्गत साहित्यकार अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से ऐसे यथार्थ को भी व्यक्त करता है जो अपने आप में विलक्षण होता है। मुक्तिबोध की रचनाओं को जादुई यथार्थ के अंतर्गत रखा जा सकता है जिसमें उन्होंने फेंटेसी के सहारे साम्प्रतिक यथार्थ की बखूबी अभिव्यक्ति की है।

1.4.3 .7 ऐतिहासिक यथार्थवाद :

इतिहास की घटनाओं से संबंध होने के कारण इसे ऐतिहासिक यथार्थवाद का नाम दिया गया। ऐतिहासिक यथार्थवाद में रचनाकार इतिहास की किसी घटना या व्यक्ति को आधार बनाकर रचना की करता है। इसमें रचनाकार को ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए सृजन कार्य करना होता है। इसमें रचनाकार अपनी रचनात्मक शक्ति का प्रयोग करते हुए पाठक वर्ग को युगीन अनुभूति करवाने में सफल हो जाता है। त्रिभुवन सिंह अपनी कृति *हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद* में ऐतिहासिक यथार्थवाद के विषय में लिखते हैं-

> ऐतिहासिक यथार्थवाद के अंदर बीते हुए कल की सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण उपस्थित किया जाता है परंतु इतिहास और ऐतिहासिक एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किए गए

> शब्द नहीं है बल्कि दोनों में अंतर है। इतिहास में तिथियों, घटनाओं तथा परिणाम का ठीक-ठीक वर्णन उपस्थित रहता है। ऐतिहासिक यथार्थवाद के अंतर्गत स्थितियों तथा घटनाओं की यथार्थता पर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया जाता उससे अधिक उस समय की सामाजिक एवं राष्ट्रीय तथा धार्मिक परिस्थितियों को उभार कर रखने के प्रति आग्रह दिखलाया जाता है। (सिंह 68)

हिंदी साहित्य में जयशंकर प्रसाद की रचनाएं विशेषकर नाटकों में ऐतिहासिक यथार्थवाद का चित्रण मिलता है।

1.4.3.8 सामाजिक यथार्थ :

सामाजिक यथार्थ आधुनिक काल की विशेष देन है। साहित्य में सामाजिक यथार्थ को आदर्शवादी प्रवृत्तियों और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के विरोध के रूप में प्रचलित चिन्तन स्वीकार किया गया है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि सामाजिक यथार्थ का प्रमुख उद्देश्य समाजवादी समाज के उद्देश्य, गुण एवं उसकी वर्तमान तथा भावी गतिविधियों का मूल्यांकन करना है। इस प्रकार सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत सामाजिक मनुष्य की मानवीय परिस्थितियों तथा तथ्यों का विश्लेषण करना आता है। सामाजिक यथार्थ का प्रयोग जिस अर्थ में हो रहा है उसके अनुसार सामाजिक यथार्थ के मूल में जीवन को गतिशील रूप में चित्रित करने की अभिलाषा निहित है। यह जीवन के क्रमिक विकास तथा व्यक्ति, समाज के भाग्य सूत्रों का सम्मिलित एक ऐसा चित्र उतारना चाहता है जो विस्तृत ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि के विपरीत दिशा की ओर उन्मुख हो। जो इतिहास से संबंध होते हुए भी ऐतिहासिक न

हो। ऐतिहासिक घटनाओं को आधार मात्र बनाकर वर्तमानकालीन समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया जाए।

1.5 सामाजिक यथार्थ : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप :

सामाजिक यथार्थ का तात्पर्य है समाज का सत्य। *हिंदी विश्वकोश* में यथार्थ का शाब्दिक अर्थ है- ठीक, यथारूप, जैसा होना चाहिए ठीक वैसा, जैसा का तैसा। इस प्रकार सामाजिक यथार्थ का अर्थ हुआ समाज का यथारूप, जैसा का तैसा समाज अर्थात् समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण। परंतु साहित्य के अंदर किसी भी वस्तु का यथारूप चित्र उतार कर रख देना कठिन होता है क्योंकि साहित्यिक चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता है, बल्कि वह साहित्यकार की लेखनी द्वारा चित्रित किया गया ऐसा चित्र होता है, जिसमें साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुंदर रंग ढले होते हैं। सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रांत, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ का प्रधान लक्ष्य है। सामाजिक यथार्थवादी साहित्यकार समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों, उसके प्रत्येक आचार-विचारों तथा उसकी राष्ट्रीय, आर्थिक एवं नैतिक अवस्थाओं का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर करता है। सामाजिक यथार्थवादी साहित्यकार समाज का चित्रण ठीक वैसा ही नहीं करता, जैसा वह समाज है बल्कि उसको इस रूप में प्रस्तुत करता है कि जिससे पाठक युग के सत्य एवं समाज में होने वाले कार्य-व्यापारों के औचित्य तथा अनौचित्य को सरलता से परख सकें और उन मर्यादाओं का

अनुसरण कर सकें जिन पर चलकर एक आदर्श समाज की स्थापना हो सके। शिवकुमार मिश्र अपनी कृति *यथार्थवाद* के अंतर्गत लिखते हैं-

> यथार्थवादी लेखक सत्य को ब्यौरेवार प्रस्तुत करता है परन्तु उसे मात्र फोटोग्राफिक नहीं बना देता। यथार्थवादी रचनाकार इस अनंत रूपात्मक जगत तथा उसके समूचे विस्तार को पैनी नज़रों से देखता है, व्यापक सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार की स्थितियों तथा चरित्रों से साक्षात्कार करता है, अनुभवों की एक मूल्यांकन समष्टि का स्वामी बनता है, किन्तु सारी बातों को फोटोग्राफिक शैली में ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं कर देता। सारी घटनाओं तथा पात्रों को सामाजिक जीवन से प्राप्त अपने यथार्थ अनुभवों की खराद पर चढ़ाता है,उन्हें तराशता है, नुकीला बनाता है और अपनी कृति के अन्तर्गत उनकी कलात्मक नियोजन करता है। (मिश्र 31)

सामाजिक यथार्थवादी साहित्य के अंदर युग-सत्य की ही नहीं अपितु उसके विशेष स्तर की अभिव्यक्ति होती है। परिस्थितियों के अनुसार युग का सत्य भी बदलता रहता है यथार्थवादी साहित्य भी बदलता है। किसी भी देश की गौरवगाथा का परिचय प्राप्त करना हो तो उस देश का साहित्य पढ़ना चाहिए। साहित्य ही एक ऐसी वस्तु है जिसके अंतर्गत हम उस देश की महानता उसके विकास के स्वरूप को जान सकते हैं। किसी भी साहित्य का मूल्यांकन हम उसकी लोकप्रियता के आधार पर करते हैं तथा उसकी ख्याति के द्वारा परिचय प्राप्त करते हैं।

डॉ. त्रिभुवन सिंह अपनी कृति *हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद* में कहते हैं-

> जो प्रस्तुत सत्य के प्रति उदासीन है, भयभीत है और वास्तविकता में गोते नहीं लगाना चाहते वे अपने साहित्यिक प्रकाश (फोकस) को जगत से परे उन्मुख कर देते हैं तथा वे एक स्वप्न कार्यालय का रूप धारण कर लेते हैं। न कभी कला स्वप्निल तत्त्वों के द्वारा आहत रही है और न है। संसार का महान तथा स्थायी साहित्य सदैव सत्य की झलक रहा है। और उस पर कलाकार की प्रतिभा अवश्य ही अपना चमत्कार दिखलाती रही है। वस्तुतः कला मानव समाज और सत्य में संबंध सूत्र की कड़ी रही है। कला के निर्माण के लिए यथार्थवादी ही साहित्य में सर्वोत्तम शैली है और जिसके द्वारा सामाजिक वास्तविक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया जाता है। (सिंह 69)

सामाजिक यथार्थवादी लेखक समाज के सत्य को उजागर करता है। यथार्थ, समाज के सत्य को उजागर करने की कला है। शिवकुमार मिश्र अपनी कृति *यथार्थवाद* में लिखते हैं-

> सच्चा यथार्थवादी रचनाकार युग जीवन का मात्र दर्शक नहीं होता और न ही वह उससे तटस्थ रहता है। एक दृष्टि सम्पन्न, सजग तथा सप्राण व्यक्ति होने के नाते, यथार्थ जीवन के साथ उसका सक्रिय इनवाल्वमेंट होता है और जीवन से जुड़ी रहने वाली यह स्थिति ही उसे यथार्थ जीवन का अंकन करने के लिए कुरेदती है। वह अपने विश्वासों, अपनी मान्यताओं और अपने विचारों को लेकर कृति में उतारता है। (मिश्र 31)

वस्तुतः सामाजिक यथार्थ समाजवादी यथार्थवाद का परिष्कृत और परिमार्जित रूप है। समाजवादी यथार्थवाद के मूल में आर्थिक यथार्थ चित्रित हुआ है, वही सामाजिक यथार्थ के मूल में समाज का बहुआयामी यथार्थ निहित है । इसमें रचनाकार आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थ का मूल्यांकन करता है। सामाजिक यथार्थ वस्तुतः समष्टि का यथार्थ है, जिसमें समाज में घटित सभी वास्तविक कार्य व्यापार का सूक्ष्म और व्यापक अंकन होता है। सामाजिक यथार्थ प्रत्येक जन समर्पित सर्जक की मुख्य जीवन-दृष्टि है। हम इतना ही कहना चाहेंगे कि सामाजिक यथार्थ में अपनी भीतरी शक्तिमत्ता के आधार पर जिसका स्रोत वस्तुजगत है- बाधाओं तथा विरोधों को रौंदकर अपना पथ प्रशस्त करने की क्षमता है।

अंतः कहा जा सकता है कि सामाजिक यथार्थवाद शुद्ध मानवतावाद ही है। समाजवादी यथार्थवाद का आधार मार्क्सवादी चिंतन बिंदु है। यह यथार्थवाद पूँजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण करता है। समाजवादी यथार्थवादी रचनाकार क्रांति की ओर संचरण करता है तथा परिवर्तन की माँग करता है। यही समाजवादी चिंतन मानवतावादी चेतना की संपूर्णता का उद्घोषक है।

1.6 यथार्थबोध : मानव जीवन के विभिन्न संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में :

मनुष्य का संपूर्ण जीवन समाज में व्यतीत होता है। वह समाज के महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में अपना जीवन यापन करता है इसीलिए यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में मानव जीवन के विभिन्न संदर्भों में समाज एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ है। यथार्थबोध के परिप्रेक्ष्य में यदि समाज के विभिन्न संदर्भों का अध्ययन किया जाए तो समाज के साथ-साथ इन संदर्भों में वैयक्तिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विभिन्न संदर्भ

हमारे सम्मुख आते हैं इसीलिए यहाँ विषय के अनुरूप इन संदर्भों पर विचार विमर्श करना आवश्यक है।

संदर्भ के रूप में समाज के जिन तत्त्वों की गणना की जाती है उनमें मानव प्रकृति, मानव साधुता, मानव दुष्टता, मानव परिवार,मानव विवाह, वात्सल्य, मानव विरोध मानव अन्योन्याश्रित एवं रीति रिवाज प्रमुख हैं। मनुष्य प्रकृतिगत समाज का अभिन्न अंग बना रहना चाहता है यह उसकी आवश्यकता भी है और उसकी विवशता भी। मनुष्य समाज की इकाई होने के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन में भी अनेक भावात्मक संबंध स्थापित करता है वह किसी का पुत्र, किसी का पिता, किसी का पति और किसी का भाई आदि अनेक संबंधों से आबद्ध होकर संतुष्टि अनुभव करता है। परिवार में रहने की यह प्रकृति उसे विवाह संबंध स्थापित करने के लिए प्रेरित करती है और संतान प्राप्ति के उपरांत उसमें वात्सल्य की भावना उत्पन्न हो जाती है। समाज में रहते हुए मनुष्य विभिन्न रीति-रिवाजों को संपन्न करता है।

प्रकृतिगत मनुष्य में साधुता का गुण होता है किंतु विभिन्न घटनाएँ-दुर्घटनाएँ, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उसमें विरोध अथवा दुष्टता की प्रकृति उत्पन्न करती हैं। मनुष्य जीवन जीवनयापन करते हुए अपने समस्त कार्य करने में सक्षम नहीं है वह क्षण प्रतिक्षण किसी अन्य पर आश्रित रहता है और कोई ना कोई उस पर आश्रित रहता है। मनुष्य की यह अन्योन्याश्रित रहने की प्रकृति समाज का जीवंत एवं बलवंत तत्त्व बन जाती है। इस प्रकार मानव जीवन और उसके अस्तित्व के लिए समाज अति आवश्यक है और समाज के अभाव में मानव के स्वस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

देश की राजनीति के अनुरूप ही समाज का स्वरूप निर्धारित होता है। राजनीति के व्यापक प्रभाव से बच निकलना व्यक्ति के लिए नितांत कठिन है। प्रत्येक

व्यक्ति राजनीति में समान रूप से अपनी सहभागिता सिद्ध करता है। प्रत्येक व्यक्ति राज्य का अभिन्न हिस्सा है अतः वह राजनीति से दूर नहीं हो सकता। व्यक्ति परिवार, समाज ग्राम, प्रदेश और राज्य से भावात्मक रूप से जुड़ा हुआ होता है। परिवार समाज और देश की व्यवस्था को बनाए रखने हेतु विभिन्न प्रकार के नियमों की आवश्यकता है जिन्हें व्यक्ति नैतिक आधार पर स्वीकृत करता है और यहीं से आरंभ होती है उसकी राजनीति यात्रा जो स्वतः ही व्यक्ति से जुड़ जाती है, राजनीति शासन व्यवस्था और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। राजनीतिक चिंतन, राजनीतिक सिद्धांत, राजनीतिक दर्शन, विचारधारा, लोक प्रशासन, कानून और संगठन इत्यादि की गणना राजनीतिक संदर्भों के अंतर्गत की जाती है। सामाजिक उत्थान, पतन और सृजनात्मक विभिन्न क्रियाकलापों में राजनीति का विशिष्ट योगदान है। सामाजिक जीवन को व्याख्यायित करते समय राजनीतिक प्रभाव को जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता। राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव समाज पर पड़ता है। इन प्रभावों के कारण समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता, भय, असुरक्षा, भ्रष्टाचार, वर्गगत विषमता, अराजकता इत्यादि सभी राजनीतिक संदर्भ के अंतर्गत आते हैं।

अर्थ मानव जीवन का केंद्र बिंदु है। मानवीय जीवन में आर्थिक महत्ता को सार्वभौम स्वीकृति प्राप्त है। मनुष्य की समस्त आवश्यकताएँ अर्थ पर ही आधारित है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान से लेकर अंतिम संस्कार तक समस्त क्रियाएँ अर्थ के आधार पर ही गति प्राप्त करती हैं। आर्थिक दृष्टि से समाज में विद्यमान विभिन्न वर्ग अर्थात् उच्च, मध्यम अथवा निम्न का उल्लेख किया जाता है।

समाज के इन वर्गों की स्थिति, इनके प्रत्येक सदस्य के जीवन यापन के ढंग, अर्थ-अर्जन, अर्थ-व्यय, अर्थ की महत्ता, अर्थ का क्षणिक और सदैव किसी के पास ना रहना, अर्थ का सदुपयोग-दुरुपयोग, अर्थ के आधार पर आमोद-प्रमोद, अर्थ के अभाव में निर्धनता और उसका प्रकोप इत्यादि आर्थिक संदर्भों के अंतर्गत आते हैं।

समाज में मूल्यों एवं मान्यताओं के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए जिन नियमों एवं सिद्धांतों की उत्पत्ति हुई वहीं नियम एवं सिद्धांत जब अध्यात्मिक भूमि से उठकर मानव सुरक्षा के कवच बने तो उन्हें धर्म स्वरूप में स्वीकार किया गया। मानव जीवन के धार्मिक संदर्भ के अंतर्गत ईश-स्वरूप, ईश-अस्तित्व, ईश-भक्ति, ईश-स्तुति एवं ईश के प्रति विश्वास आदि की गणना की जा सकती है। जिस व्यक्ति की जिस धर्म विशेष में आस्था होती है उसी के अनुरूप स्थूल उपकरणों का निर्माण करता है और इनके प्रति अपना विश्वास व्यक्त करता है। भारत में मुख्यतः हिंदू-मुस्लिम धर्मावलंबी शताब्दियों एक-दूसरे के साथ जीवनयापन कर रहे हैं। इनके अपने-अपने विश्वास और अपनी-अपनी आस्थाएँ हैं। इन्हीं के अनुरूप वे नमाज-पूजा, रोजा-व्रत, मस्जिद-मंदिर, जियारत-तीर्थ आदि में विश्वास एवं आस्था रखकर समाज में अपनी-अपनी धार्मिक पहचान बनाते हैं। इन्हीं धार्मिक विश्वासों एवं धर्मगत स्थूल उपकरणों की गणना धार्मिक संदर्भों के अंतर्गत की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इसके अंतर्गत नैतिक संदर्भों का उल्लेख भी अनिवार्य है। नैतिक धरातल पर मानव के व्यवहार में यदि कटुता एवं दुष्टता व्याप्त हो तो धार्मिक दृष्टि से यह अनैतिकता कहलाएगी। इसके विपरीत मानवीय व्यवहार में सदाचारिता, परोपकारिता, न्यायप्रियता, प्रेम, दया एवं संतोष जैसे गुण नैतिकता का प्रदर्शन करते हैं जो धर्म के विभिन्न अंगों के रूप में स्वीकार किए जाते हैं।

समाज में रहते हुए मनुष्य को विभिन्न मान्यताओं, परंपराओं, सिद्धांतों, नीतियों एवं नियमों का आश्रय लेना पड़ता है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक की अपनी संपूर्ण यात्रा में इन्हीं संस्कारों में आबद्ध रहता है। सांस्कृतिक दृष्टि से मानव जीवन के विभिन्न संदर्भों के अंतर्गत इन्हीं संस्कारों की गणना की जाती है। मानव जीवन से संबंधित कदाचित ही कोई ऐसा अवसर हो जो संस्कार से वंचित हो। भारत में हिंदू-मुस्लिम गंगा-जमुनी समन्वयात्मक संस्कृति देखने को मिलती है। नामकरण-संस्कार, विवाह-संस्कार, अंत्येष्टि, आमोद-प्रमोद, पर्व-उत्सव, पूजा-अर्चना, मेले-ठेले इत्यादि विभिन्न भारतीय संस्कार ही हमारे सांस्कृतिक संदर्भ है।

निष्कर्ष :

यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति है और यथार्थवाद इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण है। सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत समाज में फैली कुरूपताओं के साथ-साथ उपलब्धियों का चित्रण भी देखने को मिलता है जिसे साहित्यकार अपने साहित्य में बिना किसी भेदभाव के प्रस्तुत करता है। तत्कालीन परिवेश के आधार पर साहित्यकार समाज के यथार्थ को वास्तविक रूप में ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु उसको इस रूप में भी अभिव्यक्ति देता है कि पाठक युग के सत्य एवं समाज में होने वाले कार्य व्यापारों के औचित्य, अनौचित्य को सरलता से परख सकें और उन मर्यादाओं का अनुसरण कर सकें जिन पर चलकर एक आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है।

1.7 पंजाब के हिंदी कवि एवं कविता : एक परिचय

पंजाब को काव्य लेखन का गौरव वैदिक काल से ही प्राप्त है। डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी के 'प्राधिकृत', अंक 15 में संकलित शोध पत्र 'पंजाब का हिंदी साहित्य-दर्पण और प्रतिबिम्ब' के अनुसार वैदिक मंत्रों का उच्चारण सर्वप्रथम पञ्चनद क्षेत्र में हुआ तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद यहीं रचे गए थे। इसी धरती पर अनेक महापुरुषों ऋषियों, पीरों और फकीरों ने जन्म लिया और विश्व में ख्याति प्राप्त की। गोरखनाथ का जन्मस्थान यही धरती मानी जाती है। हिंदी साहित्य का प्रारम्भकर्त्ता होने के कारण इनका विशेष महत्त्व है। इन्हें ही पंजाब के प्रथम कवि एवं गद्य लेखक के रूप में स्वीकार किया जाता है। ईसा की 8वीं से 12वीं शताब्दी तक पंजाब में सिद्धों और नाथों द्वारा अपभ्रंश भाषा में धार्मिक साहित्य की रचना हुई। वैदिक काल से प्रारम्भ होकर पंजाब की काव्य लेखन परम्परा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं से होती हुई हिंदी तक पहुँची।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में 'पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी' को डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी पंजाब के आधुनिक हिंदी साहित्य के भारतेन्दु स्वीकार करते हैं। उनके द्वारा रचित आरती 'ॐ जय जगदीश हरे' आज भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। इनके उपरान्त चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, यमुनादत्त जोशी 'ललित', खुशीराम वाशिष्ठ और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे प्रतिभाशाली कवि छायावाद के समानान्तर उत्कृष्ट हिंदी काव्य की रचना करते रहे हैं। छायावाद के उपरान्त पंजाब की काव्य लेखन परम्परा आधुनिक हिंदी काव्य की विभिन्न धाराओं- प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि

से गुजरते हुए समकालीन कविता तक पहुँची जिस में पंजाब के कवियों का योगदान सशक्त एवं महत्त्वपूर्ण रहा।

प्रत्येक अंचल (प्रदेश) की कुछ परिस्थितियाँ अन्य अंचलों की तरह समान होती है, पर कुछ में अंतर होना स्वाभाविक है। जब कभी इस अंचल में कुछ विशेष घटित हुआ, स्वभावतः उसका प्रभाव यहाँ के वासियों पर भी हुआ। साहित्यकार विशेषकर संवेदनशील कवियों पर तो इसका सीधा प्रभाव होना ही था। साथ ही यह प्रभाव कब उनकी रचनात्मकता का आधार बन गया, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। देश के स्वतंत्र होने, भारत-पाक विभाजन की त्रासदी को सारे देश ने अनुभव तो किया, पर जितना संयुक्त पंजाब को झेलना पड़ा, इससे सभी भली-भांति परिचित हैं। पंजाब अंचल के रचनाकारों ने उस विभाजन की त्रासदी-विभीषिका को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान की। स्वतंत्र भारत में जो कुछ व्यापक रूप में घटित होता रहा, इसका प्रभाव तो इस अंचल पर पड़ना ही था। फिर पाक और चीन से युद्ध हुआ। पूरे देश में राष्ट्रभक्ति और एकता, अखण्डता के लिए रचनाकार-कवि सामने आए। पंजाब के कवियों ने राष्ट्रीय चेतना की कविताएँ लिखी। राजनीति और व्यव्स्था में बदलाव आए-संयुक्त दलों की केंद्र और प्रदेशों में सरकारें बनीं, व्यवस्था ने अनेक बार करवट ली। आपात स्थिति के कारण काफी कुछ पूरे देश तथा इसमें हुआ। रचनाकारों पर भी व्यवस्था का अति प्रभाव हुआ और कुछ रचनाएँ इस प्रभाव से प्रस्तुत हुईं। इस अंचल की कविता की कुछ प्रवृत्तियाँ-राजनीतिक सत्ता के प्रति आक्रोश, व्यवस्था से विद्रोह, बदलाव की प्रबल इच्छा आदि समकालीन हिंदी कविता के सर्वथा अनुरूप हैं।

डॉ. हुकुम चंद राजपाल पंजाब की काव्य लेखन परम्परा के विषय में अपनी कृति *पंजाब की समकालीन हिंदी कविता* में लिखते हैं-

> इस कविता में नौवेंदशक के उत्तरार्ध से प्रवृत्तियों में एकाएक कुछ बदलाव आने लगे, कविता की दिशा यथार्थ की समस्याओं, काल-सापेक्ष व्यवस्था से विद्रोह की ओर मुड़ी। आक्रोश, खीझ के साथ कवि शहर से गाँव लौटने की बात भी करने लगे। कुछ कवियों ने लोकांचल की शब्दावली और पक्षधरता को आधार बनाया। महानगरीय चकाचौंध में आदमी की तलाश, उसके जीवित होने पर प्रश्न-चिह्न लगने लगे। स्त्री-विमर्श तथा दलित-विमर्श के केन्द्र में आने पर कविता में एक प्रकार का बदलाव आने लगा। (राजपाल 158)

कुमार विकल, देवराज दिनेश, सुरेश वात्स्यायन, सौमित्र मोहन, नरेन्द्र मोहन, सुभाष मल्होत्रा, केदारनाथ कोमल, बलदेव वंशी, रजनीश, कस्तूरी कश्पय, जीवन कृष्ण शर्मा, ओम अवस्थी, परमानन्द शर्मा, राजेन्द्र व्यथित, मोहन सपरा, हरमहेन्द्र सिंह बेदी, जगतावली सूद, शकुंतला श्रीवास्तव, शीला गुजराल, राजी सेठ, शकुन्तला यादव, गीता डोगरा, कान्ता डोगरा, सुभद्रा खुराना, पुष्पा राही, पुष्पा मानकोटिया, कीर्ति केसर, तेजी ग्रोवर, कमलेश आहूजा, गगन गिल, राज शर्मा, संतोष साहनी, चम्पा वैद, रूपिका भनोट आदि कवियों एवं कवयित्रियों ने अपनी सशक्तकाव्य रचना से जीवन व समाज के यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है।

पंजाब की कविता की विशिष्टता इस बात में है कि इसमें एक विशेष काल खंड में व्याप्त आंतक, दहशत, संत्रास, निराशा-हताशा की स्थिति के प्रति आक्रोश व्यक्त

हुआ है तो दूसरी ओर संबंधों की टूटन, सामाजिक विसंगतियों, मुखौटाधर्मी राजनीतिज्ञों की वास्तविक स्थिति, अमीर-गरीब का फर्क, व्यक्ति का बौनापन, रोटी की समस्या, समाज में स्वार्थांधता, व्यक्ति के भीतर की निराशा, पीड़ा, व्याकुलता, छटपटाहट, भीड़, अस्तित्व और अपने परिवेश की न जाने कितनी ही ऐसी समस्याओं को भी अभिव्यक्ति मिली है । पंजाब के कवियों ने अपने परिवेश में व्याप्त विद्रूपताओं का चित्रण अनुभूति के आधार पर किया है यही कारण है कि परवर्ती कविताओं में पंजाब के दर्द का तीखा अहसास है। कमजोर और समाज के अत्याचारों से सताए हुए लोगों के लिए कवि की सहानुभूति उसकी कविताओं में स्पष्ट लक्षित होती है।

वर्तमान में अधिकांश कवि यथार्थ जीवन और समाज को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, जबकि कुछ कवि व्यवस्था (सामाजिक एवं राजनीतिक) के प्रति खीझ तथा आक्रोश को व्यक्त करते हैं। तभी यह कविता व्यंग्य की विशिष्टता आत्मसात् किए है। वर्तमान में यह कविता जीवन, समाज, परिवेश के सभी सरोकारों को व्यक्त करती है। अंतरविरोधों, विसंगतियों, विषमताओं के बीच पनपी इस कविताधारा ने आज हिंदी साहित्य जगत में अपनी पृथक पहचान बना ली है। इस प्रकार पंजाब की कविता अपने परिवेश व युगबोध के प्रति सचेत होने का परिचय देती हुई सामाजिक यथार्थ को आत्मसात किए है। परन्तु विडम्बना का विषय है कि पंजाब में इतने विपुल हिंदी साहित्य के सृजनोपरान्त भी 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ विषय शोधार्थियों की दृष्टि से बचा रहा है। प्रस्तुत शोध प्रबंध द्वारा 21वीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों में पंजाब की हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ खोजने का प्रयास किया जा रहा है।

1.8 शोध में सम्मलित कवियों का परिचय

मोहन सपरा :

मोहन सपरा का जन्म 2 नवम्बर, 1942 को अमृतसर में हुआ। इनकी प्राइमरी से स्नातक तक की शिक्षा सिरसा (हरियाणा) में तथा स्नातकोत्तर हिंदी की डिग्री 1966 में लायलपुर खालसा कॉलेज,जालंधर से की। सन् 1970 में डी.ए.वी. कॉलेज, नकोदर में हिंदी विभागध्यक्ष नियुक्त हुए। अध्यापन कार्य के अतिरिक्त प्रकाशन एवं सम्पादन के क्षेत्र में भी सफल प्रयास किए हैं। 'फिर' तथा 'जन श्री' पत्रिका के मुख्य सम्पादक रहे । इनको पंजाब हिंदी साहित्य अकादमी की ओर से भूतपूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह से पुरस्कार मिल चुका है। पंजाब हिंदी साहित्य परिषद, लुधियाना एवं रोटरी क्लब नकोदर द्वारा, हरियाणा साहित्य अकादमी (पंचकूला) हरियाणा सरकार द्वारा, अखिल भारतीय साहित्य कला मंच (मुरादाबाद) द्वारा, गुरूनानक वि.वि.अमृतसर तथा चौ०देवीलाल विद्यापीठ सिरसा (हरियाणा) द्वारा इनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया है। इन्होंने अनेक पंजाबी कविताओं-कहानियों का हिंदी अनुवाद किया है। वर्तमान में लघु एवं साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर लेखन, आस्था प्रकाशन, जालन्धर का संरक्षण-निदेशन एवं यू.के से प्रकाशित 'समाज वीकली' (पंजाबी व अंग्रेजी) के सलाहकार सम्पादक हैं।

काव्य संग्रह :

- कीड़े
- आदमी जिंदा है
- बरगद को काटते हुए देखना

- काले पृष्ठों पर उकरे शब्द
- कितना अंधेरा है
- रक्तबीज आदमी है
- समय की पाठशाला में

साहित्य विशिष्टता : मोहन सपरा की कविता वर्तमान सामाजिक विसंगतियों में घिरे साधारण मनुष्य की आवाज की बनती है। उनकी संवादधर्मी कविताएँ अकर्मण्यता को चुनौती देती हुई मानवीय संघर्ष-शीलता को बनाए रखने का संकल्प लेती हैं। जीवन की उद्दामता में उनकी आस्था है। वह कर्म में श्रद्धा और शब्द पर विश्वास रखते हैं। यह विश्वास इनकी कविता को अतुलनीय एवं अद्वितीय बनता है।

शशि प्रभा :

डॉ शशि प्रभा का जन्म 7 जुलाई, 1949 को रोहतक, हरियाणा में हुआ। इन्होनें अमर शहीद बाबा अजीत सिंह जुझार सिंह मैमोरियल कॉलेज से हिंदी प्राध्यापिका के तौर पर कार्य करते हुए 2009 में अवकाश प्राप्ति की। हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग से 'प्रज्ञा भारती' सम्मान, 'तेरा क़िस्सा मेरा क़िस्सा' पर साहित्यिक सांस्कृतिक कला संगम परियावां प्रतापगढ़ से सम्मान, साहित्य सेवाओं के लिए चंडीगढ़ साहित्य अकादमी द्वारा 2012 में अवार्ड ऑफ रेकूगेनशन की प्राप्ति। वर्तमान में चण्डीगढ़ स्तन कैंसर ट्रस्ट के साथ काम, गरीब बच्चों के लिए शिक्षा का प्रबंध, एकल नारियों के लिए संस्था संचालन जैसे समाज सेवा के कार्यों व स्वतंत्र अध्ययन-लेखन में लगी हुई हैं।

काव्य-संग्रह :

- आइनों से झांकते अक्स
- घने अंधेरों में भी
- तेरा क़िस्सा मेरा क़िस्सा
- बहुत कुछ अनुत्तरित
- संधि रेखा पर खड़ी मैं

साहित्य विशिष्टता : पंजाब की वर्तमान पीढ़ी इनकी रचनाधर्मिता से संस्कार व मानवीय मूल्य ग्रहण करती है। हमारे समय के जरूरी मुद्दे भूख, बेकारी, बेबसी, लूटमार, पारस्परिक वैनमस्यता, सांप्रदायिकता पर यह खुला विमर्श करती हैं। समकालीन हिंदी कविताओं में समाज के जिस अंतिम आदमी की यथा स्थिति को सामने लाने का प्रयास किया जाता है वहीं इनकी कविताओं में प्रमुखता से विद्यमान है। यह अपनी रचनाधर्मिता द्वारा वर्तमान के यथार्थ की कड़वी सच्चाई को सामने लाती दिखाई देती हैं तो कहीं मनुष्य में आस्था, विश्वास और इंसानियत की ज्योत जगाती नज़र आती हैं।

शुभदर्शन :

16 फरवरी, 1952 गाँव मजीठा, जिला अमृतसर पंजाब में जन्मे कवि शुभ दर्शन समाज की सच्चाई बयान करने में संकोच नहीं करते। हिंदीतर प्रांत से होने के कारण इन्होंने इन क्षेत्रों में नए लेखकों के समक्ष आने वाली चुनौतियों के दंश को

झेला और महसूस किया। अपने स्तर पर किए गए अथक प्रयासों से इन्होंने 1979 में 'बरोह' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस 'पत्रिका' ने इन्हें एक कवि, साहित्यकार एवं पत्रकार के रूप नई पहचान दिलाई। डॉ. शुभदर्शन एक ऐसे साहित्यकार रहे, जिन्होंने स्वयं को साहित्य की राजनीति से सदैव दूर ही रखा। उनका एकमात्र लक्ष्य हिंदी साहित्य को और अधिक सम्पन्न एवं समृद्ध करना रहा।

काव्य-संग्रह :

- शब्दों के दायरे
- लड़ाई खत्म नहीं हुई
- संघर्ष जारी है
- संघर्ष बस संघर्ष
- संघर्ष ममता का
- संघर्ष का छोर नहीं
- संघर्ष के ज़ख़्म

साहित्य विशिष्टता : कवि शुभ दर्शन के मन को संघर्ष शब्द अति प्रिय है। इन्होंने इसे नए रूपों एवं प्रतिमानों में उद्घाटित करने का प्रयास किया है। यह शब्द उनकी संपूर्ण सृजनात्मक यात्रा में ध्वनित होता दिखाई देता है। वेदना और संवदेना के उलट, यह शब्द किसी भी व्यक्ति की सोच को स्फूर्ति प्रदान करता है। संघर्ष से उनका अभिप्राय सामान्य व्यक्ति द्वारा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए किए गए संघर्ष से है। इनकी अधिकांश कविताएँ माँ के प्रति समर्पित है। ये कविताएँ माँ पर केंद्रित, माँ के बारे में, माँ के माध्यम से ज़िंदगी की सच्चाई से सामना करती दिखाई देती है। एक

कवि, साहित्यकार एवं पत्रकार के रूप में उनकी बेवाक राय, सच बोलने का साहस, राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रख तद्नुसार कार्य करने की जिद्द और हर क्षेत्र में सामंती सोच पर चोट करती इनकी लेखनी विराम को नहीं पहचानती। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के कल्याण में रत उनका लेखन सकारात्मक सोच वालों को लिए सदैव प्रेरणास्पद है।

सुरेश नायक :

पंजाब के जाने माने कवि डॉ. सुरेश नायक का 20 अक्टूबर 1963 पंजाब के पटियाला जिले में हुआ। इन्होंने एम.ए (हिंदी) तथा पीएच-डी. की हुई है। हिंदी साहित्य से संबंधित शैक्षिक पृष्ठभूमि होने के कारण इनकी हिंदी भाषा पर अच्छी पकड़ है, जिसके कारण शब्दों की बाजीगरी में इन्हें महारत हासिल है। इन्होंने हिंदी साहित्य की प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलायी, परंतु एक कवि के रूप में इनकी विशिष्ट पहचान है। इन्होंने आकाशवाणी और दूरदर्शन पर कविता पाठ तथा परिचर्चाओं में भी भाग लिया है।

काव्य-संग्रह :

- राहों के अन्वेषी
- शिकायत किए बिना
- रंग आ जाते हैं

साहित्य विशिष्टता : इन्होंने अपने काव्य में आम व्यक्ति की जिजीविषा, उसके आक्रोश, उसकी भविष्य के प्रति चिंता, उसके जीवन की भागदौड़, उसके संघर्ष और बेबसी से संबंधित यथार्थ परिदृश्य का चित्रांकन किया है। एक अमूर्त संवेदना इनकी कविताओं में रूपायित होती प्रतीत होती है। इनकी कविताओं में जीवन दृष्टि के नूतन नैतिक मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। इसी कारण इनके काव्य संग्रह सामाजिक चेतना को स्वर प्रदान करते हुए से प्रतीत होते हैं। ये स्वर जीवन के शाश्वत प्रवाह के साथ सामाजिक सरोकार की लय से सजे हैं। सृजन गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए डॉ. सुरेश नायक के साहित्यिक प्रयास हिंदी साहित्य जगत में उनके रचनात्मक योगदान को लेकर उम्मीद जगाते हैं।

अमरजीत कौंके :

पंजाबी और हिंदी में एक साथ लेखन करने वाले कवि अमरजीत कौंके का जन्म पंजाब के लुधियाना जिले में स्थित कौंके गाँव में 27 अगस्त 1964 को हुआ। इन्होंने पीएच. डी तक शिक्षा ग्रहण की है। वर्तमान में वह लैक्चरर के रूप में कार्यरत हैं। इन्होंने स्वयं को अपनी लेखनी के माध्यम से पंजाबी एवं हिंदी के विख्यात कवि के रूप में स्थापित किया है। हिंदी के दिग्गज लेखकों, डॉ. केदारनाथ सिंह की ‘अकाल में सारस’, नरेश मेहता की ‘अरण्या’, कुँवर नारायण की ‘कोई दूसरा नहीं’, विपन चन्द्रा की ‘सांप्रदायिकता’, अरुण कमल की ‘नये इलाके में’, मिथिलेश्वर की ‘उस रात की बात’, मधुरेश की ‘देवकीनंदन खत्री’, हिमांशु जोशी की ‘छाया मत छूना मन’, बलभद्र ठाकुर की ‘राधा और राजन’, उषा यादव की ‘मेंरी संकलित कहानियां’ जसवीर चावला की धूप निकलेगी’ और पवन करण की ‘औरत मेंरे भीतर’ सहित

अनेक पस्तकों का हिंदी से पंजाबी में अनुवाद किया है। पंजाबी कवि रविंदर रवी, परमिंदर सोढी, डॉ. रविंदर, सुखविंदर कम्बोज, दर्शन बुलंदवी, बी.एस.रतन, सुरिंदर सोहल तथा बीबा बलवंत की पुस्तकों का पंजाबी से हिंदी में अनुवाद किया है।

काव्य-संग्रह :

- मुट्ठी भर रोशनी
- अंधेरे में आवाज
- अंतहीन दौड
- बन रही है नई दुनिया

साहित्य विशिष्टता : इनके काव्य में पंजाब की मिट्टी की खुशबू आती है। इन्होंने अपने काव्य में पंजाब के बदलते सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश, प्रवास की समस्या, वैचारिक मतभेद, सामान्य व्यक्ति की आकांक्षाओं, तनाव व संत्रास को बड़ी गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। पीछे छूट चुका घर, बिक रहा गाँव, टूटते रिश्ता का दर्द इनकी कविता संग्रहों में बार-बार प्रकट होता है । अमरजीत कौंके की कविता जीवन की आलोचना है। इन्होंने अपने काव्य के महीन तंतुओं के माध्यम से जीवन के सूक्ष्म पहलुओं का ताना-बाना बुनने का प्रयास किया है। इनकी कविताएँ आधुनिक जीवन को यथार्थक भाषा में ही रूपायत करती हैं। इन्होंने कविताओं के माध्यम से सामाजिक यथार्थ का वास्तविक खाका खींचने का प्रयास किया है। इनकी कविताओं में अंधी और अंतहीन दौड़ में फंसे मानव के खंडित अस्तित्व का विलाव सुना जा सकता है।

सीमा जैन :

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की धनी इस कवयित्री का हिंदी साहित्य के प्रति विशेष लगाव है। इनका जन्म 29 मार्च, 1960 क हिमाचल में हुआ। इन्होंने एम.ए व एम. फिल उच्च प्रथम श्रेणी में महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक से उत्तीर्ण की है। यह एम.फिल परीक्षा में विश्वविद्यालय में गोल्ड मेडलिस्ट रही हैं। यह सन् 1983 से उत्तरी भारत की प्राचीनतम तथा प्रतिष्ठित संस्था कन्या महाविद्यालय जालंधर के स्नातकोत्तर में अध्यापनरत हैं। यह अब सन् 2000 से हिंदी लेखन कार्य कर रही हैं। हाल ही में इनकी हिंदी कविताएँ दूरदर्शन, जालंधर व आकाशवाणी, जालंधर से प्रसारित हुई हैं।

काव्य-संग्रह :

- मोम के पंख
- धूप-छाँव

साहित्य विशिष्टता : इनके कविता संग्रह में नारी की जर्जर दशा, उसकी आकांक्षाओं तथा बदलते परिवेश में उसका आंतरिक द्वंद्व का चित्रण बखूबी किया गया है तथा ये काव्य संग्रह समाज की तत्कालीन विसंगतियों- भ्रष्टाचार, मनुष्य की स्वार्थपरता, पारिवारिक विघटन, मानवीय रिश्तों में कड़वाहट, जीवन के अनेकों उतार-चढ़ाव और उनमें उलझ कर जूझते मानव पर केंद्रित है।

1.9 शोध के लिए चयनित काव्य संग्रह

- धरती यह (शशि प्रभा,2018)
- रक्तबीज आदमी है (मोहन सपरा,2017)
- संघर्ष के ज़ख़्म (शुभदर्शन,2017)
- बन रही है नई दुनिया (अमरजीत कौंके,2014)
- संधि रेखा पर खड़ी मैं (शशि प्रभा,2013)
- धूप-छांव (सीमा जैन,2013)
- समय की पाठशाला में (मोहन सपरा,2012)
- रंग आ जाते हैं! (सुरेश नायक,2012)
- संघर्ष बस संघर्ष (शुभ दर्शन,2011)
- बहुत कुछ अनुत्तरित (शशि प्रभा,2011)
- शिकायत किए बिना (सुरेश नायक,2007)
- अंतहीन दौड़ (अमरजीत कौंके,2006)
- मोम के पंख (सीमा जैन,2006)

प्रस्तुत शोध प्रबंध द्वारा अगले अध्यायों में शोध में सम्मलित कवि– मोहन सपरा, शशि प्रभा, अमरजीत कौंके, सुरेश नायक, शुभ दर्शन, सीमा जैन के चयनित काव्य संग्रहों (2020 तक प्रकाशित) को आधार बना कर 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ खोजने का प्रयास किया जा रहा है।

द्वितीय अध्याय- वैयक्तिक संघर्ष

2.1 अस्तित्वबोध की अभिव्यक्ति

2.2 कुंठा और संत्रास की अभिव्यक्ति

2.3 स्वार्थी प्रवृत्तियों की अभियक्ति

2.4 एकाकी जीवन की अभिव्यक्ति

2.5 सम्बन्धों में अंतर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति

'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' ये बात जितने हद तक सही है उतना ही यह भी सही है कि मनुष्य के व्यक्तिगत भाव समाज को समृद्ध और मजबूत बनाते हैं। मनुष्य का आचरण, स्वभाव, सिद्धांत, व्यवहार ये सभी सामाजिक सहभागिकता की नींव को मजबूती देते हैं। एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी होना, आपत्ति-विपत्ति में सहयोग करना, रहन-सहन, बोलचाल व भाषा में समन्वय की संभावना को जीवित रखना प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य होता है।

सामाजिकता के केंद्र में मनुष्य कई बार अनचाही घटनाओं का सामना करता है। घटनाएँ कोई भी हों, प्राकृतिक अथवा मनुष्य-जनित, उसके मन-मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालती हैं। मनुष्य घटनाओं से लड़ते हुए और उससे उपजी तमाम समस्याओं को झेलते हुए भी संघर्ष मार्ग पर बने रहना चाहता है। जीवन जीने के लिए यही एक विकल्प है जिसे वह विशेष रूप से अपनाकर चलता है। इस पर चलना आसान नहीं होता, पग-पग पर परेशानियों को झेलना होता है। कई घटनाएँ घटित होती हैं जिनसे दो-चार होना होता है। वह इन्हीं घटनाओं और परेशानियों से ही सीखता है ।

मनुष्य जैसे-जैसे आगे बढ़ता है उसकी जिम्मेदारियाँ बढ़ने लगती हैं। पहले व्यक्तिगत, फिर पारिवारिक और फिर वह सामाजिक दुनिया में प्रवेश करता है। अब तक एक विशेष प्रकार की जिम्मेदारी का भाव उसमें प्रवेश करने लगता है। जिम्मेदारियाँ घटनाओं से लड़ने और बने रहने के लिए उसे प्रेरित करती हैं। वैयक्तिक स्तर पर उसका खुद के लिए किया गया संघर्ष दूसरों के लिए प्रेरणा के मार्ग प्रशस्त करता है।

मनुष्य के लिए समाज वह माध्यम है जो उसे सह-अस्तित्व और सहभागिकता का पाठ पढ़ाता है। जब पारिवारिक, सामूहिक, सांगठनिक एवं सामाजिक यथार्थ की बात की जाती हैं तो बगैर वैयक्तिक संघर्ष को समझे इसे ठीक ढंग से नहीं समझा जा सकता। वैयक्तिक संघर्ष ही वह स्थिति है जो व्यक्ति को सामाजिकता का उच्च आदर्श प्रदान करती है। पंजाब की हिंदी कविताओं में वैयक्तिक संघर्ष किस तरह अभिव्यक्त हुआ है, उसकी यथास्थिति से अवगत होना ही इस अध्याय का उद्देश्य है।

2.1 अस्तित्वबोध की अभिव्यक्ति

मनुष्य का जीवन कभी भी स्थिर नहीं रहता है। बदलते परिवेश और सामाजिक परिवर्तन के अनुसार उसकी यथास्थिति में परिवर्तन होता रहता है। भविष्य के संभावनाशील होने के कारण मनुष्य वर्तमान से जूझते हुए अपने अस्तित्व की तलाश करता रहता है। जीवन में घटित होने वाली छोटी-छोटी घटनाएँ उसके अस्तित्व को एक बड़ी चुनौती देती दिखाई देती हैं। वह इन चुनौतियों से जूझता ही नहीं है अपितु उनका समाधान भी खोजता है। डॉ. श्याम सुंदर मिश्र *अस्तित्ववाद और साहित्य* में कहते हैं-

> अपनी सम्पूर्णता में संकट या संक्रमण की स्थिति में से गुजरती हुई मानवीय चेतना उन प्रश्नों का समाधान ढूँढने की कोशिश करती है जो मनुष्य के अस्तित्व की संभावना और उसके वर्तमान रूपों से सम्बन्धित है। (मिश्र 7)

अस्तित्व की संभावना जीवन-व्यापार के हर हिस्से का अंग है और व्यक्ति के वर्तमान जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जिनसे वह दो-चार होता रहता है। यह भी कहा जा सकता है कि वैयक्तिक संघर्ष के भाव में ही अस्तित्वबोध जाग्रत होता है।

जीवन को जीते हुए व्यक्ति जो अनुभव प्राप्त करता है वहीं से उसका सत्य निर्मित होता है। इस निर्मिति में मनुष्य जीवन के वे सभी पहलू शामिल होते हैं जो किसी न किसी रूप में उसके जीवन को प्रभावित करते हैं या वह जिनसे प्रभावित होता है। इस संबंध में *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवनदर्शन* में डॉ. लक्ष्मीकांत सिन्हा अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं -

> अस्तित्ववादी सत्य अनुभूतियों से उठने वाली जिज्ञासाओं से निर्मित होता है। अकेलापन, विश्रृंखल एकांत, अनाश्वासन, आसन्न अंत की चेतना, पृथक किये जाने की चेतना, त्रास, मृत्यु के निकट जीवन (बल्कि क्षण क्षण मृत्यु का भय) जिज्ञासा करने की विवशता, व्यवस्थित सत्य का अभाव, द्वंद्व, मानसिक पीड़ा, रोग, दुर्गन्ध, मत्सर, पर-पीडन, दुःख, नास्तिक दर्शन, ईश्वर, धर्म, अमरत्व आदि के प्रति अनास्था, सभी अजनबी, सब कुछ क्षणिक, क्षण ही यथार्थ, सत्य आदि अवसादमय उपकरण अस्तित्ववादी व्यक्तित्व की चेतना के प्रवाह में रहते हैं। (सिन्हा 213)

यहाँ वह अपने सच को देखते हुए सामाजिक यथार्थ में सहभागी भावों पर विचार करता है। उसका चिंतन मन वैयक्तिक अनुभूति से उपजे सत्य से जीवन-सत्य की तलाश करता है।

पंजाब की इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में अस्तित्वबोध के भाव विशेष रूप से दिखाई देते हैं। पंजाब के समाज की निर्मिति में जितना तत्व आस्थावादी विचारों का है उतना ही प्रगतिशील विचारों का भी। यहाँ परंपरा एवं संस्कृति के प्रति उतना ही लगाव है जितना कि उद्योग और धंधों के प्रति समर्पण। मूल्यों में

जितनी आधुनिकता है पारम्परिकता भी उससे कम नहीं है। इन सभी में रहते हुए सामंजस्य बिठाना और एक दूसरे को प्रभावित करते हुए सामाजिक जरूरतों को पूर्ण करना सहज नहीं होता है। कवि का मन बड़ी सहजता से यथार्थ की परख करता है और पाता है कि दिल के हर कोने में कोई न कोई दुःख यथावत उसे कचोटता रहता है। जीवन के इस यथार्थ को *बहुत कुछ अनुत्तरित* में डॉ. शशि प्रभा इन शब्दों में अभिव्यक्त करती हैं-

जीवन की हर त्रासदी ने
खाली कर दिया है
दिल का हर कोना। (प्रभा 173)

कवि का दुःख व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक होता है। वह अपने दुःख से समाज में जीवन यापन करने वाले हर व्यक्ति के दुःख का अंदाजा लगाता है। वह जो भोगता है उसमें औरों के दुःख को शामिल होने का आभास करता है। कवि सुरेश नायक *शिकायत किये बिना* संग्रह में इस भाव को अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं-

अपने दुःख को
औरों के दुखों में
घुला-मिला पाने के बाद
दुःख के इस समाजीकरण से
परिचित हुआ हूँ। (नायक 14)

दुःख की अपनी सामाजिकता है। समाज का हर व्यक्ति कहीं न कहीं इससे ग्रसित है। चिंतित और परेशान है। कवि यहाँ जितना परेशान अपने दुःख से है उससे कहीं अधिक दूसरों के दुखों से व्यथित है। पंजाब की धरती वैसे भी औद्योगिक जगत के रूप में विख्यात है। अमरजीत कौंके इस जगत को सुंदर बनाने में लगे आम आदमी के दुःख को देख रहे हैं वह *अंतहीन दौड़* में लिखते हैं-

फैक्ट्रियों में

तिल-तिल मरते

सीलन भरे अँधेरों में गर्क होते

मालिक की

गन्दी गालियों से डरते

थोड़े से पैसों से

अपना बसर करते

पल पल मरते हैं लोग। (कौंके 36)

इन आम लोगों के अस्तित्व की चिंता किसी को हो न हो लेकिन कवि को है क्योंकि इनकी यथास्थिति को देखने-परखने के लिए किसी के पास कोई समय नहीं है। कवि देखता है क्योंकि उसे मनुष्यता को जिन्दा रखने की चिंता है। वह मानव अस्तित्व को चुनौती देने वाली समस्याओं को पहचानता है। ऐसी कविताओं से गुजरने के बाद हम पाते हैं कि ज़िन्दगी वही नहीं है जो हम देखते हैं या देख रहे हैं। ऐसी बहुत-सी स्थितियाँ होती हैं जो पर्दे के पीछे होती हैं लेकिन हमें संघर्ष की दुनिया में धकेलती रहती हैं। *संघर्ष बस संघर्ष* में संकलित 'संघर्ष की विरासत' कविता में शुभदर्शन कहते हैं-

जिन्दगी वही नहीं मेरे बच्चे

जो हमें दिखाई देती है

पर्दे के पीछे

जन्म से मृत्यु तक

की वह तस्वीरें होती हैं

जो पल-पल

संघर्ष को प्रेरित करती हैं। (शुभदर्शन 128)

'वह तस्वीरें' जो 'संघर्ष को प्रेरित करती हैं' जीवन यापन की छोटी-छोटी समस्याओं से होकर गुजरती हैं। बचपन की दहलीज से निकलकर मनुष्य के अन्दर जब समझ विकसित होती है तो सबसे पहले पारिवारिक जीवन से उसका साक्षात्कार होता है। रिश्ते बनते हैं, संबंध विकसित होते हैं, सामाजिक नामकरण भी उन सम्बन्धों का होता है, लेकिन सच्चाई यही है कि वह सब कहने भर के होते हैं । व्यक्ति अपने जीवन के संघर्षों को झेलते हुए अकेले खड़ा रहता है, संबंध बनते-बिगड़ते समीकरण की तरह आते और जाते रहते हैं। *संघर्ष के ज़ख़्म* संग्रह में शुभदर्शन इस स्थिति को इस तरह अभिव्यक्त करते हैं-

जीवन है
संसार के
सुंदर-असुन्दर
को निहारते हुए
बिना नाता बनाए
सभी संबंध
दादा-दादी, नाना-नानी, यार-दोस्त
प्रेमी-प्रेमिका, कसमों की ज़ंजीर से
देते रहे तरह-तरह के भ्रम
रूप बदल-बदल कर
जिन्दगी को हमेशा लूटते हैं रिश्ते
और
खड़ा रहता है आदमी
रुके हुए पल की तरह। (शुभदर्शन 63)

यहाँ संबंधों से ऊबे हृदय-व्यथा की शिनाख्त करते हुए कवि व्यक्ति-मानसिकता का यथार्थ प्रस्तुत करता है, जहाँ सब कुछ खत्म होने के बावजूद भी "खड़ा रहता है आदमी/ रुके हुए पल की तरह।" यह वह आदमी है जो नित-प्रति सामाजिक परिदृश्य को बदलते और विकृत होते देख रहा है। संबंध हों या रिश्ते, यह चयन समय और समझ का है। इसमें बदलाव भी देखा गया है। इस बदलाव की ज़मीन से सच देखने का प्रयास करें तो इधर वैयक्तिक मूल्यों में बदलाव अधिक हुआ है। जो जैसा है वैसा दिखना नहीं चाहता है। सीमा जैन की दृष्टि "खूबसूरत चेहरे की/ बनावटी पर्तों पर" नहीं रुकती है और न ही तो "विज्ञापनों की खूबसूरत नुमाइश से" प्रभावित होती है, वह यथार्थ तक पहुँचती है। चेहरे में छिपे झूठ को पकड़ती है। *मोम के पंख* रचना में कवयित्री सीमा जैन कहती हैं-

ये दृष्टि
नहीं रुकती
किसी खूबसूरत चेहरे की
बनावटी पर्तों पर
उतर जाती है
पीछे छिपी अनगिणत झुर्रियों तक
ये दृष्टि
नहीं बहल पाती
विज्ञापनों की
खूबसूरत नुमाइश से
नहीं झुठला पाती
उनके पीछे छिपे

तिजारती झूठ को। (जैन 23)

पंजाब के कवियों की दृष्टि इन सभी कृत्रिम उपकरणों से दूर यथार्थ पर जाती है। जो जैसा है उसे उसी रूप में देखने और अभिव्यक्त करने के साहस के साथ। यहाँ का कवि विज्ञापनों से ढंकी यथार्थता को तह तक जाकर देखने का प्रयास करता है । कवि को पता है कि बाज़ार हर तरह से मानव जीवन के अस्तित्व के लिए घातक है। बाज़ार के इस चकाचौंध में कवि अपने लिए अँधेरा ही चुनता है और उसी को अपना मानता है। अमरजीत कौंके अपनी रचना *बन रही नई दुनिया* में अँधेरे की पहचान करते हुए कहते हैं-

जगमग करता
आँखें चौंधियाता
यह जो रौशन चुफेरा है
भीतर झाँक कर देखूं
तो कोसों तक अँधेरा है
कभी जब सोचता हूँ बैठकर
तो महसूस यह होता
कि असल में
भीतर दूर तक फैला हुआ
अँधेरा ही मेरा है। (कौंके 15)

निश्चित तौर पर कवि जिस अँधेरे को चुनता है वह मानव समाज का अँधेरा है जिससे वह लड़ता और अपने अस्तित्व के लिए टकराता रहता है। जो गहन अँधेरे में फँस चुके हैं उनके जीवन में उजाला लाने के लिए यहाँ के कवि गंभीरता से सक्रिय हैं।

2.2. कुंठा व संत्रास की अभिव्यक्ति

कुंठा का अर्थ होता है- 'खीझ, निराशा, मन की गाँठ' जहाँ मनुष्य कुछ कहना चाहता है लेकिन संकोच या लज्जा बस कुछ कह नहीं पाता है। कुंठा वह होती है जिसमें 'मनुष्य की अतृप्त तथा सुप्त भावना उसे लज्जा या संकोचवश आगे बढ़ने से रोकती है' वह ऐसा जानता भी है लेकिन किसी से कह नहीं पाता और अन्दर ही अन्दर समस्याओं को लेकर चिंतित रहने लगता है। समय के साथ यह चिंता बढ़ती जाती है और कोई निदान न होने पर वह दुखी रहने लगता है। इस दुख, भय आदि के भाव को संत्रास कहते हैं। कुंठा एवं संत्रास की स्थिति में मनुष्य जो होता है वही नहीं रह जाता है। उसका आत्मबल गिरता जाता है और स्वयं को एक अजनबी की तरह देखना शुरू कर देता है। *बन रही नई दुनिया* में अमरजीत कौंके लिखते हैं-

मैं जिस रोशनी में बैठा हूँ
मुझे वह रोशनी मेरी नहीं लगती
इस मस्नूई सी रौशनी की
कोई भी किरण
ना जाने क्यों
मेरी रूह में
नहीं जगती। (कौंके 15)

वर्तमान परिवेश में इधर के दिनों पंजाब के युवाओं के अंदर यह समस्या गंभीर रूप से जन्म ले रही है। वह जो है उसे पहचान नहीं पा रहा है और न ही उसे अपने होने पर कोई गर्व है। वह हताश और निराश है। यह हताशा और निराशा का भाव वर्तमान पंजाब में बहुत अधिक बढ़ रहा है। लोग जीवन जी तो रहे हैं लेकिन उन्हें उसका उद्देश्य पता नहीं है । व्यक्तिगत स्तर पर हताश और निराश युवा पीढ़ी यह निर्धारित नहीं कर पा रही है कि वह जीवन क्यों जी रहे हैं? उन्हें ऐसा लग रहा

है जैसे वे बस जिए जा रहे हैं बस। इस यथार्थ को *बहुत कुछ अनुत्तरित* में डॉ. शशि प्रभा इन शब्दों में अभिव्यक्त करती हैं-

लगता है
ज़िन्दगी के मायने
खो गये हैं कहीं
दूर-दराज़ तक
मिलते ही नहीं
हम
फिर भी
शौक रखते हैं
जीने का
ज़िन्दगी का मकसद
कुछ भी पता नहीं
बस यूँ ही
जिए जाते हैं (प्रभा 104)

प्रवास की समस्या बुज़ुर्गों को भी कुंठा और संत्रास की दुनिया में ले जा रही हैं। पंजाब एक ऐसा इकलौता प्रदेश है जहाँ युवाओं का पलायन बड़ी तेज़ी से हो रहा है। युवाओं की उपस्थिति से पंजाब का परिवेश पूरी तरह से खाली होता जा रहा है। यह है तो एक तरह की आर्थिक दौड़ लेकिन बुज़ुर्गों के लिए किसी मानसिक यंत्रणा से कम नहीं है। *संघर्ष बस संघर्ष* में शुभदर्शन ने स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया है-

उदास न हो मेरे बच्चे
अपने दर्द की दास्तां सुना
तुम पर कोई बोझ नहीं डालूँगा

नहीं बताऊंगा...
पेट की भूख मिटाने को
कितने हंटर खाए
यह भी नहीं कि जिद का मतलब
माँ समेत
कई दिन तक महरूम रहता
रोशनी की किरण से। (शुभदर्शन 37)

पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में मानव जीवन के उन सभी पहलुओं की अभिव्यक्ति हो रही है, जो कुंठा और संत्रास के कारण हैं। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में व्यक्ति अपनी आशाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए स्वयं तो श्रम कर ही रहा है, दूसरों पर भी उसकी निर्भरता बढ़ी है। जब व्यक्ति की अपेक्षित आशाओं की पूर्ति नहीं होती है तो वह कहीं न कहीं निराशा की दुनिया में डूबने लगता है। उसमें कई बार व्यवस्था के प्रति खीझ बढ़ती है तो कई बार स्वयं की निष्क्रियता पर। इस समस्या से हर व्यक्ति ग्रसित है जिसके अनेक कारण हैं। बढ़ती आकांक्षाएँ, औद्योगिकीकरण से उपजी समस्याएँ, बेगारी और बेरोजगारी की बढ़ती समस्याएँ आदि इसमें विशेष भूमिका निभाती हैं। कवि इन समस्याओं से बड़ी गहराई से प्रभावित होता है। यह भी सच है कि कविता हृदय से उठी वेदना की साक्षात अभिव्यक्ति है इसलिए पंजाब के हिंदी कवियों में यह अभिव्यक्ति गंभीरता लिए हुए है।

विस्तार संसाधनों में तो दिखाई दे रहा है लेकिन उनकी प्राप्ति आज भी आम आदमी के लिए कठिन है। गाँव से आदमी इसलिए भागता है कि वह परिवार का भरण-पोषण सही तरीके से कर सके। उसके तमाम स्वप्न होते हैं और उतनी ही

संभावनाएँ होती हैं लेकिन जैसे ही शहर में पदार्पण करता है तो स्वप्न अतीत होते जाते हैं और संभावनाएँ क्षीण। रोजगार के अभाव में निकले युवा-मन के यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हुए शुभदर्शन *संघर्ष बस संघर्ष* में कहते हैं-

> याद है मुझे
> मैं निकला था
> बच्चों का दूध, माँ-बाप का निवाला
> और पत्नी का सिन्दूर लाने
> यहाँ आ हो गया
> बहेलिये का शिकार
> जिसे एक रक्षक समझ खुद ही जा गिरा था। (शुभदर्शन 47)

औद्योगिक जगत की सच्चाई से लेकर मल्टीनेशनल कंपनियों तक की सच्चाई यहाँ जग-जाहिर हो जाती है। यहाँ कवि जिस 'बहेलिये का शिकार' होता है वह कोई और नहीं अपितु महानगरों के धनिक, पूँजीपति वर्ग के लोग होते हैं। आम आदमी महज छला जाता है और जब उसकी जरूरतें पूरी नहीं होतीं तो वह कुंठा के दायरे में खीझ से भरने लगता है। यहीं से युवा शक्ति का दमन शुरू होता है जिसमें देश की लगभग सारी युवा पीढ़ी शामिल है।

शहरों ने जिस सम्भावना के साथ हमारे सभ्यता में पदार्पण किया था इधर के दिन वही संभावनाएँ धूमिल होती दिखाई दे रही हैं। शहर में होने का मतलब किसी समय शिक्षा और संस्कृति के समृद्ध क्षेत्र में होना माना जाता था लेकिन आज उसी शहर में आदमी एक संकोच के साथ पदार्पण करता है। यहाँ होना रिश्तों से क्षीण होना है। अपने आस-पास के परिवेश से अनभिज्ञ होना है। मोहन सपरा जैसे कवि अपने सामने शहर को रेगिस्तान में बदलते देखते हैं और स्वयं की सीमाओं का

आंकलन करते हुए स्वयं को परिवर्तन करने में असहज पाते हैं। *समय की पाठशाला* में मोहन सपरा कहते हैं-

अब इतना जान लो
मित्र!
मेरे शहर में सारे रिश्ते
तेजी से रेगिस्तान में तबदील हो रहे हैं।
बहुत बार सोचता हूँ-
क्या मेंरी बाहें
पुल की तरह फैल सकेंगी?
क्या मेरी आँखें
इन्द्रधनुषी सपनों के लिए
सागर बन सकेंगी? (सपरा 60)

ये ऐसे प्रश्न हैं जो बंजर होते परिवेश के लिए हर किसी के मन-मस्तिष्क में उमड़ रहे हैं। बुज़ुर्ग पीढ़ी जहाँ पंख को और अधिक विस्तार देने के लिए परेशान दिखाई दे रहे हैं तो युवा पीढ़ी अपने बढ़े हुए पंखों की सुरक्षा और संरक्षा को लेकर चिंतित है। चिंता दोनों तरफ है। दो पीढियाँ महज योजनाओं में व्यस्त हैं और परिवेश पूरी तरह से संत्रास से भरा हुआ दिखाई दे रहा है। उपर्युक्त काव्य-उदाहरणों से अच्छी तरह समझा जा सकता है कि कुंठा एवं संत्रास की अभिव्यक्ति पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता जगत में प्रमुखता से देखने से मिलती है।

2.3 स्वार्थी प्रवृत्तियों की अभियक्ति

पंजाब की समकालीन हिंदी कविता अपने समय के प्रति ज़िम्मेदार और सजग है क्योंकि पंजाब का हिंदी कवि जीवनगत अनुभवों के दायरे में व्यक्तिगत यथार्थ से दो-चार ही नहीं होता अपितु जूझता भी है। इस जूझने में सामाजिक चरित्रों की पहचान गंभीरता से होती है। बाज़ार के प्रभाव से और वैश्वीकरण की सक्रियता के कारण मनुष्य की मानसिकता दूर तक सोचने में असमर्थ हो रही है। इसी कारण व्यक्ति जो कुछ भी कर रहा है उससे वह अपनी केन्द्रिकता सुरक्षित रखना चाहता है। केन्द्रिकता को सुरक्षित रखने के लिए वैयक्तिक स्तर पर स्वार्थ को साधना होता है। दूसरों के सुख-दुःख पर ध्यान देने से अधिक स्वयं के हानि-लाभ पर विचार करना होता है। *बन रही नई दुनिया* में अमरजीत कौंके इसी यथार्थ को प्रकट करते हुए लिखते हैं-

लोग
मुखौटे पहनते थे
यह युगों पुरानी बात है
अब लोगों ने चेहरे तब्दील करने की
आधुनिक तकनीक सीख ली है। (कौंके 58)

मुखौटे वही बदलेगा जो स्वार्थ से प्रेरित होकर सम्बन्धों में शामिल होगा। जहाँ स्पष्टता है, समर्पण है, कोई छिपाव और अलगाव नहीं है, वहाँ मुखौटे नहीं होते है। सब कुछ सीधा, सहज और सामने होता है। इधर के दिन सब कुछ इसलिए भी उलझता जा रहा है क्योंकि स्वार्थी प्रवृत्तियाँ हावी होने लगी हैं और मनुष्य उन प्रवृत्तियों का अनुपालनकर्ता मात्र है। आज के समय में एक छद्म रूप हर जगह देखने को मिल रहा हैं । जिसके दायरे में रहते हुए *धूप-छाँव* में सीमा जैन लिखती हैं-

बस दौड़ रहे हैं सभी

और इस अंधी दौड़ में
जीवन के सुंदर पल
छूट जाते हैं पीछे
भूल जाता है इंसान
कि मंजिल तो रास्ते में थी। (जैन 23)

सच यह भी है कि समय के साथ मनुष्य जितना बढ़ता गया, स्वयं में उतना ही अधिक सिमटता गया। समर्पण और सहभाव के मूल्य सीमित होते गए। जो रिश्ते और संबंध एक दूसरे की सुरक्षा के लिए हुआ करते थे वह वर्तमान समय में महज अपना कार्य निकालने भर के लिए बनने-बिगड़ने लगे।

मनुष्य का बड़ा होना जहाँ उसके चरित्र पर निर्भर होता था इधर के दिनों उसका निर्धारण 'पद' करने लगा है। 'पद' जितना बड़ा हो रहा है 'कद' उतना ही छोटा होता जा रहा है। *मोम के पंख* संग्रह में सीमा जैन का यह कहना कितना सटीक और सच है-

इस नगरी में अक्सर
जितना बड़ा हो जाता है पद
उतना ही छोटा हो जाता है
इंसानी कद। (जैन 31)

इधर के दिनों समाज का छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति के लिए ज़मीन-आसमान एक कर देना शगल बनता जा रहा है । जब तक सभी को शामिल करने या सभी को साथ लेकर चलने का भाव नहीं विकसित होगा तब तक मनुष्य का कद कैसे बड़ा हो सकता हैं? ये प्रश्न पंजाब के हिंदी कवियों के मन-मस्तिष्क में यथावत बने हुए हैं। स्वार्थता के वशीभूत व्यक्ति के सामने हादसे पर हादसे होते रहते हैं और वह मूक दर्शक बनकर देखता रहता है। व्यक्ति को कभी भी मूक दर्शक स्वयं के लिए नहीं होना

चाहिए। यदि वैयक्तिक जीवन स्वार्थ से दूषित न हो तो ही परहित और समर्पण की दुनिया में आसानी से बढ़ा जा सकता है।

2.4 एकाकी जीवन की अभिव्यक्ति

यह भी एक निर्विवाद सच है कि समाज ने जितनी उन्नति की है, मनुष्य उतना ही अकेला होता गया है। बढ़ती आकांक्षाओं और अभिलाषाओं के साथ कहीं न कहीं रिश्तों, सम्बन्धों से दूर होने और स्वयं में व्यस्त रहने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी है। पंजाब औद्योगिक नगरी होने के साथ-साथ ग्रामीण जीवन और संस्कारों का प्रदेश है। यहाँ ग्रामीण, नगरीय और महानगरीय जीवन शैली विभिन्नता लिए एक बड़े अनुपात में दिखाई देती हैं। यहाँ के अधिकांश कवियों के काव्य में महानगरीय बोध उभर कर सामने आया है। महानगर का स्वभाव है कि वह सामूहिकता से डरता है। एक तरह से कहें कि महानगरीय परिवेश में सामूहिकता की भावना का निषेध होता है तो यह असंगत न होगा। सभी के होते हुए भी यहाँ अकेले जीने और सब कुछ सहने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है। डॉ. शशि प्रभा ने *बहुत कुछ अनुत्तरित* में संकलित 'मिली न ताल' कविता में इस यथार्थ को कुछ इस तरह अभिव्यक्त किया है-

> रिश्ते-नाते
> दोस्ती-यारी
> सम्बन्धों का
> विस्तृत दायरा
> फिर भी खड़ा अकेला
> देता थपकी स्वयं को। (प्रभा 89)

इधर के दिनों यहाँ 'मैं' केन्द्रीय होता जाता है और 'स्वयं' उस केन्द्रिकता को सुरक्षित रखने का साधन। पंजाब का हिंदी कवि उन परिस्थितियों की खोज में है जो व्यक्ति को अकेला बना रही हैं। कहाँ तो कभी किसी समस्या का सामना सब मिलकर करते थे कहाँ अब व्यक्ति स्वयं ही सब कुछ करने के लिए अभिशप्त है। समय में आ रहे ऐसे बदलाव से मोहन सपरा सरीखे कवि आश्चर्य में हैं। अपने काव्य संग्रह *रक्तबीज आदमी है* में लिखते हैं-

यह वक्त कैसा है!
आदमी को
अकेला-अकेला बना रहा है
खुद से लड़ना सिखा रहा है। (सपरा 42)

भीड़ में भी स्वयं को अकेला पाने या होने का यह जो एहसास है यही इस समय की त्रासद स्थिति है। इस त्रासद स्थिति को बाज़ार ने और अधिक मजबूती दी है। यहाँ हर आदमी महज या तो एक उपभोक्ता है या फिर निर्माता। वर्तमान समय में संबंध और सहभाव की बात करना ठीक नहीं कहा जा सकता। कवि इसलिए भी आश्चर्य में है कि समाज विशेष में रहते हुए परिवार, घर, समाज, रिश्ते-नाते जो किसी व्यक्ति के लिए सब कुछ होते हैं वही एक समय के बाद महज 'स्वप्न व भ्रम' में बदलते जाते हैं। *संघर्ष के ज़ख़्म* में शुभदर्शन कहते हैं-

टूटने के लिए ही होते हैं
सपने व भ्रम
बचपन से ही होती है शुरुआत
सपनों की
और
साथ ही पलते हैं-भ्रम। (शुभदर्शन 62)

सपने बड़े होते हैं और भ्रम उलझाव भरे। मनुष्य जीवन में आगे बढ़ता तो रहता है लेकिन उलझनें उसे पीछे हटने के लिए विवश करती रहती हैं। पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में इन दोनों स्थितियों का गंभीरता से चित्रण हुआ है। आज का मनुष्य सपनों की पूर्ति न होना और भ्रम में जीने की वेबसी लिए दिखाई देना, इन दोनों समस्याओं से ग्रसित है जिसे इधर की कविताओं ने शिद्दत से अभिव्यक्ति दी है। कवि स्वभाव से सामूहिकता को पसंद करता है। कलरव और संवाद की सघनता उसे रागात्मकता प्रदान करती है। घर, परिवार की स्मृतियाँ उसके लिए अकेलेपन के दिनों में सबसे बड़े साथी होते हैं। वह घर को याद करता है तो अतीत के समृद्ध इलाके में पहुँचने लगता है। सभी के बीच का प्रेम और फिर बाद में उन सभी से दूर होने की वेबसी उसे सालती है। वह समृद्धि से अभावों तक की विसंगतियों को याद करते हुए घर लौटना चाहता है लेकिन जिस अंचल विशेष में वह आ चुका है वहाँ से मुक्ति इतनी आसानी से कहाँ सम्भव है। *अंतहीन दौड़* कविता संग्रह में अमरजीत कौंके सरीखे कवि कहते हैं-

सांझ को
घर लौटते
परिंदों को देखकर
अपना घर याद आता है
खुली चोंचें याद आती हैं
जिनके लिए
मैं चुग्गा चुगने का
वादा कर
एक दिन चला आया था। (कौंके 32)

आने के बाद से अब तक वह एक-एक करके लोगों को खोता गया। पहले यार-दोस्त का संग-साथ, फिर घर-परिवार का साया और फिर उसके बाद स्वयं के अस्तित्व के लिए जूझती स्वयं की स्मृतियाँ। इन अतीत की स्मृतियों में खोये हुए अमरजीत कौंके के अपने काव्य संग्रह *अंतहीन दौड़* में संकलित कविता 'अजनबी मनुष्य' में किये गये ये प्रश्न पाठकों को सोचने के लिए विवश करते हैं-

क्यों मेरे लिए
वे लोग ही अजनबी बन गये
मैं जिनकी साँसों में जीता था
जो मेरी
साँसों में बसते थे। (कौंके 80)

आगे बढ़ने और समृद्ध होने का यह कौन-सा गणित या सलीका है, आज का कवि इस मुद्दे पर बार-बार चिंतन करता है, सोचता है। आज व्यक्ति के लिए सबसे बड़ी खुशी की बात किसी एक को भी उसकी याद आना है। कवि अमरजीत कौंके इस बात के लिए स्वयं को बधाई देता है कि 'इस भरी दुनिया में' अभी भी किसी को उसकी याद आती है। कोई है जो उसको याद करता है, महसूसता है। जब परिवेश के इर्द-गिर्द कवि स्वयं को अकेला पाता है तब दरअसल यह भाव कवि में प्रकट होता है। अमरजीत कौंके अपने काव्य संग्रह *अंतहीन दौड़* में संवादहीन समाज की इस 'अंतहीन दौड़' में स्वयं को शामिल करने की बात को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

बधाई!
हे कवि!
बधाई!
इस भरी दुनिया में

अभी भी

किसी एक को

याद है तुम्हारी। (कौंके 68)

दरअसल यह एक कवि मात्र का यथार्थ नहीं है अपितु पूरे समाज की सच्चाई है। आज के समय में कोई यदि किसी को याद कर रहा है और किसी को कोई याद आ रहा है तो यह बहुत बड़ी बात है क्योंकि इस बदलते दौर में अपनी-अपनी समस्याओं से हर कोई व्यस्त और त्रस्त है। हर कोई अपने तरीके से समस्याओं का सामना कर रहा है। व्यक्ति को जिनसे सहायता या सहयोग की उम्मीद है या तो उनसे जुड़ नहीं पा रहा और यदि जुड़ भी जाए तो उन्हें समझ नहीं पा रहा। *शिकायत किये बिना* काव्य संग्रह की 'प्रस्थान' कविता में कवि सुरेश नायक ने कहा है-

रात को सुबह में बदलने के लिए

दिन रात एक करते लोग

जीना चाहते हैं

सुख में भी

और दुःख में भी

जीवन का दामन थामें रहना चाहते हैं। (नायक 15)

जीवन का दामन छोड़ कर आदमी करेगा भी क्या? पहले जीवन-यापन से लेकर स्टेटस-सिम्बल मनुष्य के लिए मायने रखता था परंतु अब वर्तमान समय में कई प्रकार की समस्याएँ आदमी को सताने लगी हैं। एकाकीपन उनमें से एक है जिससे पंजाब का परवेश बुरी तरह आक्रान्त है। अकेला छूटा हुआ आदमी न खुद का हो पाता है, न परिवार का और न ही समाज का। पंजाब के समकालीन कवियों ने इस विसंगति का गंभीरता से अपनी कविताओं में चित्रण किया है।

2.5. सम्बन्धों में अंतर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति

एकाकी जीवन की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक संबंध में अंतर्द्वंद्व देखने को मिल रहा है। युवा पीढ़ी अपनी जरूरतों और इच्छाओं की पूर्ति में व्यस्त है तो बुज़ुर्ग अपनी आशाओं को साकार करने के लिए उन पर आश्रित हैं। पहले संयुक्त परिवार में सम्बन्धों में एकत्व देखने को मिलता था। सब एक दूसरे से जुड़े और समृद्ध रहते थे। वर्तमान समय में एकल परिवार की अवधारणा ने परिवार नामक संस्था पर अविश्वास दिखाना शुरू कर दिया है। इन सबके पीछे कुछ विशेष कारण हैं जो अपना कार्य कर रहे हैं लेकिन 'विशेष कारणों' ने ही मिलकर रिश्तों में अंतर्द्वंद्व के बीज बोये हैं जिनसे बिखराव अधिक उभर कर सामने आ रहे हैं। *बहुत कुछ अनुत्तरित* काव्य संग्रह में संकलित 'घर की दीवारें' कविता में डॉ. शशि प्रभा ने बिखराव के इस यथार्थ को सामने रखा है-

सबकी
अपनी कथा है
व्यथा है
रिश्तों की मजबूत दीवारों में
इतनी दरारें!
दीवारों को
खोखला करने में
निरंतर
प्रयासरत हैं। (प्रभा 87)

दीवारों के खोखले होने से रिश्ते ढह ही नहीं रहे हैं, अपनी विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न भी लगा रहे हैं। जो निरन्तर ऐसा करने में प्रयासरत हैं वे सब नवीनता की चाह में भटकने वाले प्राणी हैं, जो खुद तो भटक ही रहे हैं रिश्तों को अस्थाई और

अनाम भी बना रहे हैं। आज पंजाब के परिवेश में पति-पत्नी के रिश्ते से लेकर पिता-पुत्र तक के रिश्ते एकदम से उलझे हुए हैं। दूसरे से पूर्णता की तलाश उन्हें भी है जो स्वयं खण्डित और विखंडित हैं। *बन रही है नई दुनिया* संग्रह में अमरजीत कौंके ने 'पूर्णता' के भ्रम से उपजे इस यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है-

मैं जानता हूँ
तुम मुझे सम्पूर्ण चाहती हो
पूरे का पूरा
जो सदा तुम्हारा
और सिर्फ तुम्हारा हो
लेकिन मेरी दोस्त
मैं बचपन की कच्ची उम्र में
हज़ारों दुखों में बटा
खुद ब्रह्माण्ड में बिखरे
अपने टुकड़े
इकट्ठे करने की कोशिश कर रहा हूँ
मैं पूरे का पूरा
सम्पूर्ण
तुम्हारा
सिर्फ तुम्हारा बन कर
तुम्हारे पास कैसे आऊँ... । (कौंके 14)

"सिर्फ तुम्हारा बनकर/ तुम्हारे पास कैसे आऊँ" जैसे प्रश्न कवि विशेष के न होकर सम्पूर्ण पीढ़ी के प्रश्न हो उठते हैं, जो वैयक्तिक संघर्षों के दायरे में आते हैं और एक स्तर तक गंभीरता से प्रभावित भी करते हैं। संयुक्त परिवार में जो दरारें उभरी हैं

उनकी शिनाख्त पंजाब के समकालीन हिंदी कवियों ने ज़िम्मेदारी से की है। यहाँ के कवियों की दृष्टि में आज का दौर अधिक उलझा और विसंगतियों से पूर्ण लग रहा है। रिश्ते सुन्दर दिखते हैं और सभी उस सुन्दरता को बनाए रखने का श्रम भी करते हैं लेकिन इतनी फुर्सत किसी के पास ही शायद हो कि संवाद को बनाए रखने के लिए सक्रियता को निरंतरता दी जा सके। अपने काव्य संग्रह *मोम के पंख* में कवयित्री सीमा जैन ने आज के युग में छीजते रिश्तों को न बचा पाने के लिए समय को दोषी बताया है। उनकी दृष्टि में-

आज के युग में
रिश्ते
घर की आलमारी के
याद दिलाते हैं
जिसे संवारने की
चाहत तो होती है
फुरसत नहीं होती। (जैन 83)

आज वैयक्तिक जीवन इतना कठिन और परिस्थितियों से घिर गया है कि हर कोई किसी ने किसी वजह से व्यस्त और पस्त है। यहाँ का कवि सहज स्वाभाविक रिश्तों तक में कठिनता महसूस कर रहा है। समय में उलझा हुआ मनुष्य फूलों से रिश्ता तोड़कर काँटों से जुड़ता चला जा रहा है। यह विवशता भी है और नियति भी। विकल्प का द्वार यहाँ आकर बंद होता जाता है। आज के समय में वैयक्तिक संघर्ष की स्थिति ऐसी परिस्थितियों को जन्म देती है कि रिश्तों में अंतर्द्वंद्व दिखाई दे रहा है और व्यक्ति उन्हें झेलने के लिए अभ्यस्त भी होता जाता है। कवि मोहन सपरा अपने काव्य संग्रह *रक्तबीज आदमी है* में स्वीकार करते हैं-

मैं काँटों पर चलने का आदी हो गया हूँ

यह वक्त कैसा है

फूलों से

रिश्ता टूट रहा है

काँटों का

गणित जुड़ रहा है। (सपरा 43)

इस टूटते-जुड़ते समीकरण में रिश्ते भ्रम-से प्रतीत होते हैं। मानवीय सम्बन्धों में जिन रिश्तों का अस्तित्व है वे सब कवि को उलझाने और भ्रमित करने वाले प्रतीत होने लगते हैं। कवि शुभदर्शन अपने काव्य संग्रह *संघर्ष के ज़ख़्म* में संकलित कविता 'सपने व भ्रम' में तमाम रिश्तों को भ्रम पैदा करने वाले माध्यम बताते हैं। वह कहते हैं-

दादा-दादी, नाना-नानी, यार-दोस्त

प्रेमी-प्रेमिका, कसमों की जंजीरों से

देते रहे तरह-तरह के भ्रम।" (शुभदर्शन 63)

मनुष्य इन भ्रमों से जितनी बार मुक्ति की आकांक्षा पालता है, उतनी ही बार वह इनमें और अधिक उलझता चला गया। इस उलझाव में पूरी पीढ़ी समाहित है। हर व्यक्ति का संघर्ष इन रिश्तों के दायरे में दिए जाने वाली कसमों से शुरू होता है और फिर उसी में सीमित होते हुए दम तोड़ने लगता है। पंजाब के कवि ऐसे परिदृश्य के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं । *संघर्ष के ज़ख़्म* काव्य संग्रह में संकलित 'सपने व भ्रम' कविता में शुभदर्शन इस यथार्थ को कुछ इस तरह अभिव्यक्त करते हैं-

रूप बदल-बदल कर

ज़िन्दगी को हमेंशा लूटते हैं रिश्ते

और

खड़ा रहता है आदमी

रुके हुए पल की तरह। (शुभदर्शन 63)

'रुके हुए पल की तरह' आदमी के खड़े रहने की वेबसी आज के समय में अधिक सघन हुई है। रिश्तों से चोट खाने के बाद व्यक्ति टूट जाता है। इसलिए भी क्योंकि रिश्तों की सारी बुनियाद महज विश्वास पर टिकी होती है। पंजाब का हिंदी कवि केवल खण्डित होते रिश्तों पर पश्चाताप भर ही नहीं करता अपितु रिश्तों को मजबूत और स्वस्थ बनाने वाले माध्यमों की भी कल्पना करता है। हालाँकि इसमें वह एक बार नहीं कई बार उलझता है। लेकिन यह उसकी जिम्मेदारी बनती है इसलिए वह रिश्तों को जोड़ने और अधिक संभावनाशील बनाए रखने के ख्वाब बुनता है। डॉ. शशि प्रभा अपने काव्य संग्रह *संधि रेखा पर खड़ी मैं* में का कहना है-

आज मैं

ख्वाब बुन रही हूँ

उलझ-उलझ जाते हैं फन्दे

फिर भी

बुन रही हूँ। (प्रभा 62)

ये बुने जा रहे 'ख्वाब' ही वैयक्तिक संघर्ष में सम्बन्धों के बीच उलझे अंतर्द्वंद्व को कम कर सकेंगे और रिश्तों के लिए एक पुख्ता विश्वास की ज़मीन को उर्वर बनाने में अपना योगदान दे सकेंगे।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पंजाब की इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में वैयक्तिक संघर्ष को गंभीरता से अभिव्यक्त किया गया है। पंजाब की हिंदी कविता में 'अस्तित्वबोध की भावना' का चित्रण हुआ है जिसमें व्यक्ति के लिए अपने अस्तित्व को बचाए रखने में किन संघर्षों का सामना करना पड़ता है, मनुष्य किन परिस्थितियों से टकराता और संघर्षरत रहता है, दिखाया गया है। इस विघटित होते समय में 'कुंठा और संत्रास की' भावना को अभिव्यक्त किया गया है जिसमें ऐसी

स्थितियों का निर्माण क्यों होता है और कवियों ने किस तरह उसे अभिव्यक्त किया है, बताने का प्रयास किया गया है। इक्कीसवीं सदी की पंजाब की समकालीन हिंदी कविता में 'स्वार्थी प्रवृत्तियों का चित्रण' गंभीरता से मिलता है। गाँव से निकलने के बाद मनुष्य शहरों में रहते हुए किस तरह एकाकी जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है उसे 'एकाकी जीवन की अभिव्यक्ति' में दर्शाया गया है। सम्बन्धों में अंतर्द्वंद्व' आज एक अलग तरह की समस्या है जिस पर पंजाब के हिंदी कवियों ने गंभीरता से कार्य किया है। यह कहा जा सकता है कि इन प्रवृत्तियों के चित्रण और अभिव्यक्ति में पंजाब के हिंदी कवि पूर्णतः सफल हुए हैं और विमर्श के नवीन मार्ग की तलाश करते हुए पाठकों को भी विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

तृतीय अध्याय- समकालीन विमर्शों का यथार्थ

3.1 दलित विमर्श का यथार्थ

3.2 स्त्री विमर्श का यथार्थ

3.3 वृद्ध विमर्श का यथार्थ

3.4 पर्यावरण-प्रकृति विमर्श का यथार्थ

भारतीय भावभूमि पर 'समाज' का अस्तित्व इसलिए है कि सभी एक-दूसरे का सम्मान करें। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का महत्त्व स्वीकार करते हुए उसके सुख-दुःख में सहभागी हों। सहभागिता एक परम्परा बनकर उभरे जिसकी अनुपालना यथार्थतः किया जाए, ऐसी कोशिश समाज में वर्तमान में होनी चाहिए। समय-दर-समय कोशिश होती रही और समाज विकसित अवस्था को प्राप्त होता रहा। विकास के साथ-साथ मनुष्य पहले संगठनों में और फिर समुदायों में इकट्ठा होता रहा। इकट्ठे संगठन और समुदाय 'समाज' का निर्माण करते हैं। समाज एक अनुबंध के रूप में काम करता है जिसमें शामिल होने वाले सभी लोग पारस्परिक नियमों और शर्तों को स्वीकार करते हैं। ये शर्त और नियम इस रूप में अधिक कार्य करते हैं कि कोई किसी के सुख में बाधा न बने और दुःख में एकत्रित होकर उसका साथ दे। समाज में शामिल लोग समय-समय पर अनेक प्रकार के परिवर्तन लाते हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया अपनी अवस्था में चलती रहती है।

समाज धीरे-धीरे और अधिक विकसित होता है। समाज के विकास के साथ-साथ शक्ति और सत्ता का आविर्भाव होता है और फिर यहीं से सामाजिक नियमों की निर्मिति अलग रूप में होने लगती है। समाज के विकास में अनेकों कारक अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं जिसमें धर्म, संस्कृति, जाति, वंश व वर्ग शामिल किये जा सकते हैं। समाज पहले वर्ण-वर्ग के रूप में विभाजित होना शुरू होता है उसके बाद में धर्म और संस्कृति के आधार पर। चतुर्वर्ण 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र' की व्यवस्था होती ही इसलिए है कि लोग कर्म के आधार पर अपना कार्य अपनाएं और समाज में खुलकर बगैर किसी हस्तक्षेप के अपना कार्य करें।

समय के साथ-साथ नियमों और शर्तों में परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के तहत जो वर्ण-व्यवस्था कभी कर्म के आधार पर निर्मित होती थी वह 'जाति' और 'वंश' के आधार पर निर्मित होने लगी। 'उच्च जाति' और 'निम्न जाति' का

प्रादुर्भाव यहीं से शुरू होता है। ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ बालक ब्राह्मण, क्षत्रिय के घर में क्षत्रिय, वैश्य के घर में वैश्य और शूद्र के घर में पैदा हुआ तो शूद्र। यह स्थिति एक परम्परा-सी बनती गयी। आज के समय में इसी को यथार्थ माना जाना लगा है और लोग इसी के अनुसार जीने के लिए अभ्यस्त होने लगे।

समाज में उसका अधिक प्रभुत्त्व स्थापित होता है जो शक्ति-संपन्न या सत्तासीन होता है। इस तरह से जब देखेंगे तो 'दलित', 'आदिवासी' और 'स्त्री' इन तीनों को हमेशा समाज से अलग करके देखा गया। दलितों और आदिवासियों पर उच्च जातियों का अप्रत्यक्ष रूप से कब्ज़ा रहा तो स्त्रियों पर पुरुषों का। अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाए रखने के लिए हर कोई संघर्ष करता है। हाशिए पर धकेले गये इन समुदायों ने अपने स्तर का संघर्ष किया। बाद में जिसे चलकर 'अस्मितामूलक विमर्श' के नाम से जाना गया। 'अस्मिता और अस्तित्व' के लिए जो भी अपनी आवाज़ को उठाएगा वह अस्मितामूलक विमर्श के दायरे में आता जाएगा। इस तरह आदिवासी, दलित, स्त्री, प्रवासी ये सभी अस्मितामूलक विमर्श के अंग बनकर उभरे हैं।

अपने आलेख *हिंदी साहित्य में अस्मितामूल्क विमर्श* में 'अस्मिता' का अर्थ इन विमर्शों से जोड़ते हुए कहा है -

> जब कोई समुदाय अपने अस्मिता तलाशने की कोशिश करता है तो उसके सामने ये सवाल सहज ही आ जाते है कि 'हम कौन है?' और दूसरे समुदायों के मुकाबले हमारी समाज में क्या हैसियत है? या हमारे बीच क्या सह संबंध है? इन सवालों से टकराकर ही व्यक्ति/ समुदाय अपनी अस्मिता निर्माण की प्रक्रिया की शुरूआत करता है। (http://streekaal.com/2016/09/reasarchpaperhindiliteratutre9/)

इस परिभाषा के केन्द्र में अस्मितावादी विमर्श का यथार्थ व्यंजित होता है। कोई भी समुदाय जब भी अपने होने का 'अर्थ' पता करेगा या अपने होने को लेकर 'प्रश्न' पूछेगा तो वह 'अस्मितामूलक विमर्श' के दायरे में आएगा।

प्रभाकर सिंह ने अपनी पुस्तक *आधुनिक साहित्य : विकास और विमर्श* में अस्मितामूलक विमर्श के महत्त्व बताते हुए लिखा है-

> अस्मितामूलक विमर्शों ने साहित्य का मेयार बदला है, उसको विकसित किया है। विमर्श का लक्ष्य संवाद है और संवाद साहित्य और समाज का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक मूल्य है। (सिंह 161)

लोकतंत्र का पहला तकाज़ा होता है सबकी सहभागिता। अस्मितामूलक विमर्श ने इस सहभागिता को सुनिश्चित करने में विशेष भूमिका का निर्वहन किया है। जिन्हें उपेक्षित और हाशिए पर धकेला गया वह अब विमर्श के केन्द्र में हैं, यही लोकतंत्र की प्रमुख संकल्पना है और यही अस्मितामूलक विमर्श की जरूरत।

डॉ. हुकुमचंद राजपाल ने अपनी पुस्तक *पंजाब की समकालीन हिंदी कविता* में विमर्शों के केंद्र में आने की स्थिति को स्वीकार किया है। उनके अनुसार-

> पिछले कुछ समय से समकालीन हिंदी लेखन में केंद्र और हाशिए का अंतर विशेष रूप से सामने आया। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श आदि विषय केंद्र में आ गये हैं। (राजपाल 160)

किसी विषय के केन्द्र में आने का अर्थ है कि उस पर खुली चर्चा का परिवेश निर्माण करना। आज यह निर्माण संभव हुआ है इसलिए कि उन मुद्दों और विषयों पर चर्चा शुरू हुई है और उन्हें प्रमुखता से लिया जा रहा है । पंजाब की हिंदी कविता में समसामयिक विषयों के यथार्थ को चिह्नित करने के लिए अस्मितामूलक विमर्शों पर चर्चा करेंगे। अस्मितामूलक विमर्श के साथ-साथ उन विषयों का अध्ययन करना जरूरी होगा जिसमें समसामयिकता का यथार्थ निकलकर सामने आ सके।

3.1 दलित विमर्श का यथार्थ

समकालीन विमर्श में सबसे जरूरी विमर्श है ‘दलित विमर्श’। दलित और आदिवासी समाज के उपेक्षित, दबाए गए और हाशिए पर धकेले गए समुदाय हैं। इन्हें वर्णव्यवस्था में सबसे निम्न कोटि का प्राणी माना गया समस्त अधिकारों से वंचित रखते हुए पशुवत जीवन यापन के लिए विवश किया गया। दलित उन्हें कहते हैं जिन्हें मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रखते हुए जल, जंगल, ज़मीन छीन लिये गये। दलित समुदाय मुख्यधारा से काटे जाने की पीड़ा से व्यथित हैं और यह जानने की प्रक्रिया में हैं कि आखिर उनका क्या दोष था जिसके चलते उन्हें समाज की मुख्य धारा से अलग रखा गया। वेब पोर्टल समय डॉट कॉम पर जयप्रकाश कर्दम के आलेख *समकालीन हिंदी कविता और दलित चिंतन* में दिए मतानुसार-

> दलित को समझे बिना दलित चेतना को नहीं समझा जा सकता। दलित को लेकर साहित्यकारों की अपनी-अपनी राय है। वामपंथी साहित्यकारों की दृष्टि में दलित का अभिप्राय सर्वहारा है तो दक्षिणपंथी साहित्यकारों की दृष्टि में भी दलित का अर्थ गरीब है। अर्थात् जो आर्थिक रूप से वंचित और शोषित है, वह दलित है। इन दोनों ही वर्गों के साहित्यकारों के दलित संबंधी चिंतन में जाति महत्त्वपूर्ण फैक्टर नहीं है जबकि जाति के कारण ही समाज का एक बड़ा वर्ग सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक सभी प्रकार से वंचित, उपेक्षित, शोषित, उत्पीड़ित और अस्पृश्य तथा दमन और दलन का शिकार रहा है।(https://www.hindisamay.com/content/7856/1\)

जयप्रकाश कर्दम की इस परिभाषा में दलित जीवन की यथार्थता को देखा जा सकता है। यह ऐसा यथार्थ है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता है।

पंजाब का वर्तमान हिंदी कवि दलित जीवन गरीबी और लाचारी से जोड़कर देखता है। मिलों, कारखानों, मण्डियों, होटलों आदि में खटने वाले वेबस और लाचार बच्चे सही अर्थों में दलितों और वेबसों के बच्चे हैं। उनका यथार्थ देखना चाहिए और यह आंकलन लगाना चाहिए कि कितना खतरनाक है पैसों के अभाव में जीवन यापन करना। डॉ. शशि प्रभा अभावग्रस्त जीवन को देखती हैं और देखकर हैरानी व्यक्त करती हैं। वह यथार्थ परिदृश्य का चित्रांकन अपने काव्य संग्रह *बहुत कुछ अनुत्तरित* में करती हुई कहती हैं-

देख सकते हैं आप/ छोटे-छोटे हाथ

पैर छोटे-छोटे/ बुझे चेहरे, बेबस लालसाएँ

धनी-मानी घरों/ ढाबों, मिलों, कारखानों में।

मुँह एक, हाथ दो/ मुँह चार, हाथ आठ

गिनती होती है ऐसे/ जन्म नहीं होता जिनका

उगते हैं वे/ घास-फूस की तरह।

संवेदना के संसार में/ कोई दखल नहीं इनका। (प्रभा 19)

संवेदना के संसार में इनका दखल हो भी तो कैसे? जीवन यापन के सभी संसाधनों पर तो कब्ज़ा किसी और का है। उच्च वर्ग और उच्च पदों पर आसीन लोग उनकी भागीदारी और सहभागिता को कैसे स्वीकार करेंगे? यह एक प्रश्न ही नहीं यथार्थ भी है। शरण कुमार लिम्बाले के *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र* में दिए गए हवाले से कहें तो कह सकते हैं-

> आज का दलित भूमिहीन है, खेत मज़दूर है। उसका स्वयं का व्यवसाय नहीं है। उत्पादन का भी उसका अपना कोई साधन नहीं है। जब तक वह खुद अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकेगा तब तक उसे अनिवार्यतः लाचारी में गन्दा कार्य स्वीकारना पड़ेगा। उसके लिए आर्थिक, सामाजिक विषमता के विरुद्ध तीव्रता से संघर्ष करना होगा। (लिम्बाले 82)

पूरे परिदृश्य को देखना हो तो उन मलिन बस्तियों में जाना चाहिए जहाँ अधिकांश के लिए कोई सुख-सुविधा नहीं है। हर शहर में बसी झुग्गी झोपड़ियों में जाना चाहिए। गरीबों के रहमों करम पर पलने वाले उन कीड़ों की तरह ज़िन्दगी जीते मनुष्यों से पूछना चाहिए उनकी यथास्थिति। तब कहीं जाकर दलित जीवन का यथार्थ समझ में आएगा। इस यथार्थ के परिदृश्य का चित्रांकन शुभदर्शन अपने काव्य संग्रह *संघर्ष बस संघर्ष* में इस प्रकार करते हैं-

> शांत रहता है गरीब/ अमीरों के टुकड़े पर पलता
>
> करता है तैयार/ एक समान झोंपड़ियाँ
>
> मैले-कुचैले बच्चों की फौज/ बरसाती पानी में
>
> मेढकों के पीछे भागती/ जी हजूरी की परंपरा में
>
> चार चांद लगाने/ अपने मालिकों की सेवा में
>
> करने पेश/ किसी गंदे नाले किनारे बने/ अखाड़े में
>
> तैयार कर रहे बांहों की मछलियाँ/ बस्ती की
>
> माँ-बहनों पर रखने को बुरी नज़र

आए अमीरजादों से पाने शाबासी। (शुभदर्शन 42)

यह विडंबना इस देश और परिवेश की है। अमीरजादे तो अमीरजादे हैं। सही मायने में यह दुनिया उन्हीं की है। उन्हीं के लिए है यह शानो-शौकत । गरीब तो महज मरने भर के लिए है। रिक्शा चालक से लेकर वह हर आम आदमी दयनीय और वेबस है जिसके पास रहने और जीने भर के माध्यम नहीं हैं। अमरजीत कौंके अपने काव्य संग्रह *बन रही है नई दुनिया* में संकलित कविता 'बन रही है नई दुनिया' में कहते हैं-

बन रही है नई दुनिया/ दौड़ी जा रही है

ऊँचे-ऊँचे पुलों पर दुनिया

वातानुकूलित बड़ी-बड़ी गाड़ियों में

शीशे बंद किये हुए/ उड़े जा रहे हैं लोग

बन रही है नई दुनिया/ नये लोग

नये नये मीलों लम्बे/ पुल तीमार हो रहे हैं

पुल हा पुल/ बन गए हैं

बड़े-बड़े ऊँचे-ऊँचे/ लोगों के लिए

ताकि/ पृथ्वी की भीड़

उनकी राह में/ बाधा ना बने

नहीं रुक सकते वो/ रेलवे फाटकों पर

टाईम बहुत कीमती है/ नहीं चल सकते वो

साइकिलों, रेडियों, गाड़ियों/ रिक्शों की भीड़ में

जहाँ गरीब लोग/ अभी भी फँसे

चीख रहे हैं/ अपनी-अपनी

बारी के इंतजार में/ ऊँचे-ऊँचे लंबे पुलों पर

उड़े जा रहे हैं अमीर लोग/ और इन्हीं पुलों के नीचे

कीड़ों की तरह/ कुलबुला रही है

गरीब जनता। (कौंके 41-42)

गरीबों की पूरी दुनिया को देखने के बाद आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या यह सब इसी लोक के हैं? इसी दुनिया में रहने वाले लोग हैं? और यदि इसी दुनिया और लोक के हैं तो इतने दीन-हीन और गए-गुजरे से क्यों हैं? अमरजीत कौंके काव्य संग्रह *बन रही है नई दुनिया* में संकलित अपनी कविता 'कौन है ये' अंतर्गत कहते हैं-

कौन हैं ये/ कहाँ से आए हैं

मौत के बन्जारे/ बाज़ारों, गाड़ियों, सड़कों पर

बम रखते/ विस्फोट करते

कौन हैं ये/ कौन हैं ये

मासूम बच्चों के परखच्चे उड़ाते

सुहागनों के सुहाग लूटते

राखियों को कत्ल करते

कौन हैं ये/ कौन हैं ये

चलते जीवन में बाधा डालते

शहरों को बंद करते कर्फ्यू लगाते

मासूमों की आँखों में दहशत भरते

कौन हैं ये?/ कहाँ से आए हैं

मौत के बन्जारे? (कौंके 88)

इन मौत के बंजारों के यहाँ सब कुछ भले है लेकिन दो पल सुख और सुकून नहीं है। इन्हें मुसीबतों में जीने और अभावों में पलने का अभ्यास हो चुका है । ये अपने हिस्से का जीवन जी नहीं रहे हैं अपितु काट रहे हैं। जीने और काटने एक व्यापक अंतर होता है। मनुष्य दलित बस्तियों और जीवन के सन्दर्भ में इस अंतर को न ही याद रखें तो बेहतर है। *रंग आ जाते हैं!* काव्य संग्रह में संकलित कविता ‘अनाम पल’ में सुरेश नायक कहते हैं-

खराब पुर्ज़े बदलते/ दिन से रात हो जाती है

रात में भी/ उसकी सूखी आँखें

कहाँ रो पाती हैं ?/ 'तीसरा बच्चा’

जिसके कंधे पर/ अक्सर

बस्ता लटका रहता था

अब स्कूल से/ हटा लिया गया है।

उसको/ सूरज उगने से लेकर

सूरज ढलने तक/ गाड़ियों में

मूंगफली बेचने का/ काम मिला है।

उसका/ अनाम पल

रात-रात भर/ खाँसना

सुनता रहता है/ सन्नाटा

और/ चौथाबच्चा.../ पाँचवाँ.../ और...(नायक 17)

बचपन ज़िंदगी के सबसे खूबसूरत पलों में से एक होता है, जहाँ कोई तनाव नहीं, ज़िंदगी का मतलब सिर्फ खेल-कूद और मज़े करना। परन्तु कुछ बच्चे ऐसे भी है जिनका बचपन काम से ही शुरू होता है, जीवन व्यापन के लिए, कमाने के लिये घर से निकल जाते है। जो बच्चे पढ़-लिख कर भारत देश का भविष्य बदल सकते है, उन छोटे और मासूम बच्चों से श्रम करवा कर उनका सुनहरा भविष्य अंधकार में बदल दिया जाता है। इस परिदृश्य को स्पष्ट करते हुए सीमा जैन अपने काव्य संग्रह *धूप-छाँव* के अंतर्गत कहती हैं-

फूलों के नन्हें काँधों पर/ जब बोझा लादा जाता है,

चाहे दोष हवा का ही हो/ फूल कहीं कुम्हला जाता है। (जैन 24)

यह संघर्ष सभी को मिलकर करना होगा तभी सामाजिक चेतना आ सकती है समाज में अन्यथा विभेदता से सम्बन्धित संघर्ष दिनों-दिन बढ़ते जा रहे हैं और आगे भी तीव्रतर होते जाएँगे। मोहन सपरा अपने कविता संग्रह रक्तबीज आदमी में नज़र, सफर और श्रम के दम पर नई जीवन-कहानी पर बल देते हैं तो यह बल जीवन यथार्थ की परिभाषा बदलने की स्थिति बन जाती है। मोहन सपरा अपने काव्य संग्रह *रक्तबीज आदमी है* में कहते हैं-

आँखों में नज़र/ पाँवों में सफ़र

हाथो में श्रम/ आओ,

जीवन की परिभाषा ढूंढें

ज़िन्दगीनाम गढ़ें। (सपरा 56)

यदि उत्पीडन और त्रासदी पर आप चुप हैं और सब कुछ घटते हुए भी आपको यह लगता है कि ऐसा कुछ है नहीं तो सच यह है कि आप सच से वाकिफ़ नहीं हैं। आपको यथार्थ परिदृश्य को दिखाती रहेगी कविता। डॉ. शशि प्रभा अपने काव्य संग्रह *बहुत कुछ अनुत्तरित* में समाज द्वारा बहिस्कृत सच को दिखाने का साहस कविता के माध्यम से करती हैं। उनके अनुसार-

तुम्हें नहीं देतीं सुनाई/ चीखें

आँसू भरी आँखों के/ नहीं देते दिखाई

लहू-सने हाथों का पाप/ पेट की भूख

जिस्म की ठिठुरन/ सब तुम्हें

दिखाती-सुनाती रहेगी कविता।(प्रभा 15)

इस तरह कहा जा सकता है कि कविता सच को दिखाती ही नहीं है, सुनाती भी है। कवि बेहतर जीवन के लिए तत्पर होता है और वह चाहता है कि समाज में समरसता और सहभागिता का भाव बढ़े। ऐसा होने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य मन में उठने वाले अलगाववादी भाव खत्म हों और समतावादी मूल्यों की स्थापना हो। समतामूलक सोच ही समन्वयशील परिवेश का सृजन करती है। यह भी सच है कि चयनित कवियों की सूची में दलित विमर्श का प्रतिबद्ध लेखन उस तरह से नहीं मिलेगा जिस तरह से इसे एक आन्दोलन के रूप में लिया जाता रहा है। यहाँ एक समतावादी जीवन का यथार्थ देखने को मिलेगा जिसमें जातिवाद से लेकर तमाम हिंसात्मक भावों का निषेध किया गया है।

3.2 स्त्री विमर्श का यथार्थ

समकालीन विमर्श में 'स्त्री विमर्श' की आवश्यकता गहरे में महसूस ही नहीं की गयी अपितु साहित्य जगत में इसे पूर्ण तवज्जोह भी दिया गया। दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श के साथ-साथ स्त्री विमर्श की जरूरत और आवश्यकता पर गंभीर विमर्श हुआ है। इस विमर्श के दायरे में स्त्री-जीवन, उससे सम्बन्धित समस्याएँ, रक्षा-सुरक्षा, स्त्रियों की मनोदशा के साथ-साथ अधिकारों और कर्तव्यों की पड़ताल बराबर होती रही है।

पंजाब की हिंदी कविता में समसामयिकता की पहचान के लिए 'स्त्री अस्मिता' को ध्यान में रखकर लिखी गयी कविताओं पर विचार करना इस अध्याय का विशेष उद्देश्य रहेगा। कवियों के संग्रह में वर्तमान कविताएँ विमर्श का परिक्षेत्र समृद्ध करती

हैं। इन कविताओं में स्त्री जीवन का यथार्थ देखने से पहले यह जरूरी हो जाता है कि यह समझा जाए कि स्त्री विमर्श क्या है? इसकी जरूरत क्यों पड़ी? जब साहित्य को समेंकित रूप से देखने की परंपरा है तो फिर स्त्री-साहित्य पर ही इतना ज़ोर क्यों?

ऐसे कई प्रश्न हैं जो व्यक्ति के मन में उठते हैं। ऐसे सवालों के दायरे में समाज कई बार स्त्रियों को अलग मान बैठता है जबकि यह सच है कि किसी भी नारी को देश या नागरिकता या प्रगति या समृद्धि के सवाल पर अलग नहीं मानना चाहिए। साहित्य में तो नारी किसी निजी मुहीम की उद्बोधक मात्र न होकर पूरी संस्कृति की वाहक भी है।

स्वाभाविकतः इन प्रश्नों के दायरे में ही मुक्ति की आवाज़ उठती है। यह आवाज़ स्त्री-मुक्ति की आवाज़ है जो स्त्रियों द्वारा उठाई गयी है। फिर भी यदि इन प्रश्नों पर विचार करें तो राजेन्द्र यादव द्वारा सम्पादित पत्रिका 'हंस' में प्रभा खेतान के आलेख *स्त्री विमर्श के अंतर्विरोध* में दी गयी स्त्री मुक्ति की अवधारणा से सहमत हुआ जा सकता हैं-

> मुक्ति की अवधारणा भारतीय इतिहास में नई नहीं है। व्यक्तिगत स्तर पर भारतीय स्त्रियों ने अपनी लड़ाइयाँ लड़ी हैं किन्तु अब तक बाकायदा आन्दोलन के रूप में अपनी अलग पहचान नहीं स्थापित कर सकी हैं। (यादव 17)

आज के समय में यह पहचान मज़बूत होती दिखाई दे रही है तो उसके पीछे उन सभी स्त्रियों का हाथ और संघर्ष है जिन्होंने पुरुषवादी समाज में संघर्ष का रास्ता चुना न कि समर्पण और दयनीयता का। उनके संघर्ष का मार्ग चुनने के बावजूद यथार्थ यह है कि अभिमन्यु का चक्रव्यूह में फँसना इतिहास और पौराणिक प्रसंगों में आगे आ

गया लेकिन स्त्री के संघर्ष और यथार्थ को अनकहा ही रखा गया। *मोम के पंख* कविता संग्रह में सीमा जैन का मानना है-

> अभिमन्यु का/ चक्रव्यूह में
>
> फँस जाना/ और फिर
>
> उसे भेदकर/ बाहर न निकल पाना
>
> मिथक हो गया/ इतिहास बन गया
>
> लेकिन जीवन के चक्रव्यूह से जूझती
>
> भूलभुलैया में अपनी राह तलाशती
>
> जो सदा पराजित रही/ इतिहास के पन्नों में
>
> जो हमेशा दबी रही/ उसके नित संघर्ष की दास्ताँ
>
> अचर्चित रही। (जैन 45)

स्त्री-विमर्श की जरूरत यही है कि यह उनके संघर्षों को लोगों के समक्ष लेकर आए। लोगों को यह बताए कि स्त्रियों के स्वप्न और उम्मीदें क्या हैं? वे क्या चाहती हैं और वास्तव में उन्हें मिल क्या रहा है? स्त्री विमर्श की जरूरत और आवश्यकता को *युद्धरत आम आदमी* की सम्पादिका रमणिका गुप्ता संपादकीय 'खरी-खरी बात' में इस प्रकार से समझाने की कोशिश करती है। वह कहती हैं-

> एक सांझी व्याख्या तो स्त्री की समझ में आ ही गई है कि पुरुष ने उसके मन को गुलाम बनाने से पहले उसे परिवार, ब्याह, संतान और समाज

> की लक्ष्मण रेखाओं के बाड़े में कैद करके उसके शरीर को गुलाम बनाया और उसे सभी अधिकारों से वंचित किया। पुरुष को जब जरूरत हो तो प्यार, आलिंगन व चुंबन के हथियार का इस्तेमाल कर या उसके रूप का बखान कर उसे गौरवान्वित किया, सर्वोत्तम करार किया, लेकिन उसके सब अधिकार छीन लिए ताकि वह उसी के प्रति समर्पित रहे। किन्तु, आज समय बदल रहा है, वह इस छद्म को पहचान गई है। आज वह घर, परिवार, पुरुष का सुरक्षात्मक छाता, रिश्तों की भावनात्मक बेड़ियाँ- सभी को नकार अपनी अस्मिता के निर्माण के लिए जूझने लगी है। (गुप्ता 10)

इस जूझने में उसका संघर्ष साफ़ दिखाई दे रहा है जिसे पंजाब के हिंदी कवियों ने भी अपने-अपने तरीके से समृद्ध किया है। इस समृद्धि में देर तो हुई है लेकिन जो भी है सुदृढ़ता की तरफ बढ़ती हुई आवाज़ है उस पर अवश्य चिंतन किया जाना चाहिए।

पंजाब की हिंदी कविता में स्त्री-जीवन का आदर्श पक्ष ही नहीं यथार्थ भी अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ का कवि सही अर्थों में स्त्री के यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए किसी कल्पना का सहारा नहीं लेता दिखाई देता है। वह लोक जीवन के अंतस्तल में प्रवेश करता है और वहाँ की विसंगतियों को देखते हुए अपनी अभिव्यक्ति देता है। यह सच है कि स्त्रियों के लिए आज सभी रास्ते खुल गए हैं। धर्म एवं नीति आदि के दायरे को बेधते हुए वे आगे बढ़ रही हैं। आज सभी देख रहे हैं कि वह जड़ परम्पराओं के लिए चुनौती बनी हुई है लेकिन दूसरा यथार्थ यह भी है कि आज भी उसे महज देह ही समझा जाता है। जबकि वह देह से कहीं अधिक अपेक्षा आत्मीयता

की करती है। इसे डॉ. शशि प्रभा अपने काव्य संग्रह *यह धरती* में इस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं-

इंटरनेट के युग में/ ऐसा!

मैं सोचती हूँ/ हाथ

क्या कम हैं/ एक अहसास को

महसूसने के लिए/ भूख तो कभी

मिटती ही नहीं। (प्रभा 14)

स्त्री के लिए मूल्य कितने भी निर्धारित क्यों न हो जाएँ लेकिन समाज का एक अंश उसके जिस्म को महज भूख की दृष्टि से देखता है। लोगों की निगाहों में उसके लिए इतनी नफ़रत है कि देखते ही उसे चबा ले जाने की लालसा जगने लगती है। यह लालसा छोटा हो या बड़ा, युवा हो या बुज़ुर्ग, समाज में रहते सभी के अन्दर है। स्त्री वस्तु के सामान नोची-खसोटी जाती है और लोग तमाशे देखते हैं। समाज कहने के लिए नैतिकता और नियमों से बंधा होता है। कहने भर के लिए रिश्ते-नाते होते हैं। स्त्रियों के लिए यह यथार्थ बहुत भयावह है कि वह महज जिस्म है और उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। *संघर्ष के ज़ख़्म* में शुभदर्शन इसी यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं-

रिस रहा सामाजिक रिश्तों,

नैतिक मूल्यों, अपने-परायों

आज़ाद सपनों की मर्यादा तोड़ता

बापू के तीन बंदरों का पर्याय बन

होशो-हवास में सरेआम

सस्सी से होता गैंगरेप देख आंखें मूंदने

चीखों को अनसुना करने/ और

गवाही पर चुप रहने को मान रहा

अपना आदर्श। (शुभदर्शन 20)

जो समाज 'अपना आदर्श सामाजिक बुराइयों खत्म करना समझता था' यह ऐसा समय आ गया है कि वही समाज अपना आदर्श अपराधियों को बचाने और उसके पक्ष देने को मान रहा है। यह इक्कीसवीं सदी का वह भारत है जिसमें स्त्रियाँ अधिक आत्मनिर्भर हुई हैं। सचेत और जागरूक भी। यह गांधी के देश का वही भारत है जिसके सुख और शांति से परिपूर्ण होने का स्वप्न उन्होंने देखा था। जिस सत्य के प्रयोग को उन्होंने आजमाया था उसकी आजमाइस इस तरह से होगी किसी ने परिकल्पना तक न की थी। घर में सुरक्षित बेटियाँ जैसे ही माँ के घर की दहलीज टापती हैं उनके ऊपर मुसीबतों का अम्बार गिरने लगता है। जिस ससुराल को उनका दूसरा घर समझा जाता है वही ससुराल किस तरह उसकी अस्मिता के लिए फांसी बनकर उभरता है यह शुभदर्शन की *संघर्ष के ज़ख़्म* में संकलित इस कविता में देखा जा सकता है-

"आए दिन/ स्टोव से, तंदूर में

बहू के जलने की/ किसी

सुनते ही ख़बर/ ससुराल से भयभीत

और मायके में/ 'जीवन भर के बोझ' का लांछन लिए

ज़िंदगी गुजारती हैं लड़कियाँ

समानता के दावे लाख हों

पर/ जन्म से पहले

और ससुराल तक/ कहाँ सुरक्षित हैं लड़कियाँ ?” (शुभदर्शन 37-38)

कहने को तो लड़कियाँ ब्याह कर आती हैं लेकिन उनकी यथास्थिति यह है कि एक उम्र गुजर जाती है फिर भी वे समाज में दयनीय स्थिति गुजार रही हैं। यह वही समाज है जिसमें जीवनसाथी ना होने पर लोग ताने देते हैं। क्यों समाज एक स्त्री को पब्लिक प्रॉपर्टी समझकर उसका उपयोग करना चाहता है? यह आए दिन देखा सकता है। समाज खुले आम उसकी यौन इच्छाओं की पूर्ति की चर्चा करता है। यहाँ तक कि पति के गुजरने पर किस तरह से उसकी मजबूरी का फायदा उठाकर उसका शारीरिक शोषण करता है और कई बार स्त्री गर्भधारण भी कर जाती हैं, मोहन सपरा जैसा कवि गंभीरता से इस विषय को उठाता भर नहीं है अपितु व्यापक फलक पर विमर्श का मुद्दा भी तैयार करता है। *समय की पाठशाला में* संग्रह में मोहन सपरा कहते है-

कैसे एक सभ्य होने का ख्याल है

पर, लोगों के नामों के अक्षरों को गोंद का लेप देने से

बच्चे पैदा होने की संख्या में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा

और नहीं विधवा औरतों के मासिक-धर्म की चर्चा बन्द होगी

या वे बच्चे जनना बन्द कर देंगी,

फिर, किसी भी बात को सत्य कह देने का क्या अर्थ होता है

जबकि सत्य उग आता है / गुलाब की पँखुड़ियों के बीच,

ओ' मेज़ पर सजे डिनर को

दूसरा आदमी

बिना खाए उलट देने का भी तो कोई अर्थ होता होगा,

मेरे लिए यही एक तजवीज़ थी

जो मेरी प्रेमिका ने मुझे सुझाई थी,

मैं अपनी प्रेमिका को भरा-पूरा प्यार करता हूँ

फिर भी विवाह करवाने की फिक्र में हूँ (सपरा 21)

प्रेम का यह ढोंग बंद हो तो अच्छा है। एक तरफ प्रेमिका के लिए चाँद तारे तोड़कर लाने की प्रतिबद्धता तो दूसरी तरफ ब्याह कराने की बेचैनी, यह द्विअर्थी रवैया से सम्पूर्ण समाज सभ्य बना हुआ है। कवि सभ्यता की ऐसी बनावटी पर्तो को खोलता है और समाज को सचेत भी करता है कि स्त्री के सन्दर्भ में जो मूल्य निर्धारित किये गए हैं उन्हें पूरा करने की जरूरत है। इस जरूरत को पूरा करने में एक स्त्री सबसे अच्छी भूमिका का निर्वहन स्वयं कर सकती है। लेकिन समाज में यह भी देखा गया है कि एक औरत की प्रगति में सबसे बड़ी रुकावट दूसरी औरत ही बनती है, औरत ही औरत की दुश्मन होती है। शशि प्रभा औरतों की परेशानियों का हल उस

जगह खोजती हैं जहाँ एक औरत दूसरे औरत के लिए सहायतार्थ खड़ी होती है। *धरती यह* संग्रह में शशि प्रभा लिखती हैं-

अगर औरत/ औरत के दर्द को

समझ पाए/ शायद

औरत के/ बहुत-से मसले

सहज ही हल हो जाएं।

मसला तो/ यह है जनाब

कि औरत/ पुरुष से प्यार करती है

औरत की राह का रोड़ा

बहुत बार/ औरत ही तो बनती है

याचक-सी/ यह औरत

पुरुष की मुहब्बत पाने को

कुछ भी कर गुजरती है। (प्रभा 48)

जितना वह पुरुष के प्रति प्रेमाकांक्षी होती है उतना यदि वह एक स्त्री के प्रति आत्मीय हो जाए तो परिदृश्य कुछ और ही हो। यथार्थ मात्र यही नहीं है। यथार्थ का एक दूसरा पहलू यह भी है कि इस 21वीं सदी में शशि प्रभा को आश्चर्य है कि इतने उन्नत समाज में होने के बावजूद भी स्त्री को योग्यता से लेकर उपस्थिति तक के लिए 'देह' पर निर्भर रहना पड़ रहा है। शशि प्रभा *बहुत कुछ अनुत्तरित संग्रह* में कहती हैं-

धर्म, नीति, महिमामंडन के

मनमोहक आदर्शों से/ बंद थे

संभावनाओं के/ जो सारे द्वार

आज लगे हैं खुलने/ अफ़सोस मगर!

देह द्वार से ही क्यों/ गुज़रने लगे हैं

लगभग/ लगभग सारे रास्ते

बिकती देह/ लुटती देह

पिटती देह/ दिलवाती देह

धन-दौलत, शोहरत

बेईज्ज़ती और/ लीलता हुआ

खालीपन भी/ अन्तहीन अंत का

एक सिलसिला। (प्रभा 63)

देह के कोलाज में फँसी औरत महज एक वस्तु बनकर रह गयी है। समाज भी उसके इसी रूप का आकांक्षी है तो स्त्रियाँ भी स्वयं को देह का नुमायश बनाकर प्रस्तुत करने में व्यस्त हैं। शशि प्रभा आज की नाबालिग लड़की का चित्र खींचती हैं। जैसा समाज चाहता है वैसा उसे होने में भी संकोच नहीं है। आज यह एक नई संस्कृति और परिवेश का निर्माण हो रहा है जहाँ समाज जिस रूप में स्त्री को देखना

चाह रहा है वह उसी रूप में स्वयं को दिखाने में अभ्यस्त हो रही है। शशि प्रभा कविता संग्रह *बहुत कुछ अनुत्तरित* में लिखती हैं-

प्रदर्शन के युग में/ प्रदर्शन की चीज़ है वह

'उसे' वह चीज होने में/ कुछ बुरा नहीं लगता

वह जानती है/ प्यार, मोहब्बत, लगाव

बेमानी से हो गए हैं शब्द/ उसे चाहिए

कोई पैसे वाला शहज़ादा/ लड़के पटाने में

माहिर हो गयी है/ आज की यह नाबालिग लड़की। (प्रभा 66)

नाबालिग लड़की भले इस प्रक्रिया में ढालकर स्वयं को खुश हो ले लेकिन कहीं न कहीं इस लोक की सचेत स्त्रियाँ अभी भी स्वयं को उस प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बना पा रही हैं। परिवेश का दबाव कहें या फिर अपेक्षाओं का बोझ उसे ढोने में वह अभी भी बहुत अधिक व्यस्त है। यह व्यस्तता कहीं गहरे में उनके यथार्थ को व्यंजित करता है जिसमें आगे बढ़ने की लालसा तो है साथ ही जड़ बने रहने का कारण भी हैं। *बन रही है नई दुनिया* में अमरजीत कौंके ऐसी स्त्री के साथ यात्रा कर रहे हैं जो आधुनिक ख्याल की स्त्री होते हुए भी 'निडर' और 'निर्भीक' स्त्री न होकर अनागत भय से ग्रसित और तमाम प्रकार के युद्ध में संलग्न और सक्रिय स्त्री है। अमरजीत 'कौंके' कविता संग्रह *बन रही है नई दुनिया* में कहते हैं-

मैंने हैरान हो कर/ उसकी आँखों में देखा

लेकिन वहाँ तो/ वह कहीं नहीं थी

जिस पर विश्वास करके मैं/ गरजते

गहरे समुदर में उतर गया था/ उस की आँखों में

‘वह’ तो कहीं भी नहीं थी/ वहाँ तो खड़ी थी अब कोई

अजनबी-सी औरत/ अनजाना बेपहचाना-सा

कोई वजूद/ जिसके भीतर कितने ही युद्ध

लड़े जा रहे थे एक साथ/ कितने ही रिश्तों का

मचा था घमासान वहाँ/ उसकी आँखों में

उन युद्धों की/ तस्वीर झलकती थी

वहाँ मेरा अक्स तो/ कहीं भी नहीं था। (कौंके 105-106)

स्त्री-जीवन में ‘युद्ध’ घर की ड्योढ़ी से शुरू होते हैं और मंजिल के अंत तक उसका पीछा नहीं छोड़ते। यहाँ जो ‘रिश्तों का घमासान है’ वही सही अर्थों में एक स्त्री की पहचान है। परन्तु इतने रिश्तों में बंधकर भी स्त्री स्वयं को असहाय और निर्बल पाती है। घर और बाहर को साधने में संघर्षशील स्त्री से सभी प्रश्न पूछना चाहते हैं लेकिन सभी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए वह स्वयं को उलझी हुई पाती है। इस उलझाव में वह रिश्ते अधिक हैं जिसके प्रति उसका समर्पण अधिक रहा है। समर्पण में ‘घर की संरचना’ अधिक कार्य करती है। घर की संरचना में सीमा जैन का यह प्रश्न यथार्थता को और अधिक गंभीरता से अभिव्यक्त करता है। सीमा जैन कविता संग्रह *धूप-छाँव* में लिखती हैं-

सदियों से/ घर की ‘संरचना’ करती

नारी के/ अवचेतन मन को

'घर' की तलाश/ क्यूँ भटकाती है

किसी खानाबदोश की तरह। (जैन 18)

खानाबदोश की तरह स्त्रियों का भटकना जारी है। कहीं इस यंत्रणा से दुखी होकर वह प्रतिरोध कर बैठती हैं तो कहीं कुछ न कहते हुए मौन रख लेती हैं। स्त्रियों का मौन हर समय बहुत कुछ कह देता है। जो वह प्रत्यक्ष तौर पर नहीं कह पाती हैं वह मौन बता देता है। पुरुष सबसे अधिक डरता है तो स्त्री के मौन से। डॉ. शशि प्रभा ने स्त्री के मौन के सामने पुरुषों को असहज होते पाया है। उन्होंने देखा है कि लोग स्त्री के मौन के आगे विवश होकर समर्पण करते हैं बशर्ते कि उस मौन में एक तत्परता और प्रतिबद्धता होनी चाहिए। डॉ. शशि प्रभा कविता संग्रह *धरती यह* में कहती हैं-

मैंने/ तुम्हें

कुछ कहा तो नहीं/ फिर भी

तुमने/ कुछ सुना था

खामोशी की भाषा/ कभी-कभी

विचलित कर देती है/ इतना

कि तुम फिर लौटे थे/ यह पूछने

कि/ मैंने कुछ कहा। (प्रभा 18)

मौन में जिस वेबसी से एक पुरुष गुजरता है वह निश्चित तौर पर गहरा एहसास तो देती है लेकिन स्त्री का कुछ न कहना भी किसी समस्या से कम नहीं है।

इन समस्याओं का निदान स्त्रियाँ स्वयं खोजेंगी और उन्हें ऐसा करना भी होगा क्योंकि समय उसी के साथ होता है जिसमें हौसला और क्षमता होती है। संघर्ष और साहस का प्रतिफल है कि स्त्रियों ने मौन के खाली स्पेस का हल खोज निकाला है। अब मुखरता के साथ अपने भविष्य का निर्धारण उन्हें खुद ही करना पड़ेगा। यदि वे ऐसा करती हैं तो भविष्य के दिनों में स्त्री-जीवन के लिए बहुत कुछ अच्छा हो सकता है। अन्यथा तो संघर्ष का मार्ग है ही। स्त्री के साथ पति का नाम जुड़े होने से उसे एक आश्रय तो होता ही है। परिवार और समाज भी उसे इज्जत देते हैं। समस्या वहाँ आती है जहाँ एक पति और स्त्री की मनोदशा के विपरीत कार्य करती है। शादी के बंधन महज बंधन नहीं होते। संवेदनाओं से परिपूर्ण होते हैं और उन्हें निभाना भी पड़ता है। लेकिन एक स्त्री संवेदनात्मक स्तर पर जुड़े होने के बावजूद किस तरह अलग-थलग पड़ने लगती है, यह पीड़ा अत्यंत पीड़ादायक होती है। *अंतहीन दौड़* में अमरजीत कौंके इस व्यथा को आवाज़ देते हुए एक जगह लिखते हैं-

बिस्तर पर बैठती/ वह मंगलसूत्र निकालती

अपनी चूड़ियाँ/ बेदर्दी से उतार देती

धीरे-धीरे वह अपने पति का

सब कुछ निकाल फेंकती

लेकिन मिलन की/ इन घड़ियों के बाद

जाने लगी/ मुझ से छिपाकर

वह अपनी आँखों के आँसू पोंछती

उस पल/ उसकी आँखों में

मेरे प्रति एक नफरत जागती

उदास-सा मुस्करा कर/ वह चली जाती। (कौंके 59)

'जाना' सबसे खतरनाक क्रिया होती है, यह बात अपनी कविता में केदारनाथ सिंह ने पहले ही कही है । यहाँ एक स्त्री मुस्कराहट के बावजूद जो उसकी अंतहीन पीड़ा है वह अभिव्यक्ति पाती है और हमारे अन्दर चिंतन की पराकाष्ठा को बढ़ाती है।

भारतीय संस्कृति में नारी शब्द मातृत्व का बोध करवाता है। एक नारी के श्रद्धा, करुणा, वात्सल्य, त्याग, सहिष्णुता, स्वार्थ शून्यता, निर्मलता और विश्वास आदि गुणों को माँ के रूप में अच्छी तरह देखा व परखा जा सकता है। मातृत्व नारी का चरम विकास होने के साथ-साथ जीवन का एक सुखद एहसास भी है। पंजाब की कविता में नारी को वात्सल्यपूर्ण नारी के रूप में चित्रित किया गया है। समकालीन कविता में पुरुष स्त्री के प्रति आभार व्यक्त करता हुआ उसके त्याग, समर्पण, सहनशीलता और सेवा भावना आदि गुणों के आगे नतमस्तक भी दिखाई देता है यह बात सुरेश नायक के लेखन में मुख्य रूप से दिखाई देती है। वह अपने काव्य संग्रह *रंग आ जाते है!* में लिखते हैं-

स्नेह की विभूति/ त्याग प्रतिमूर्ति/

माँ तुझ समान नहीं कोई और/ देखे दो जहान। (नायक 32)

इस तरह से कहा जा सकता है कि पंजाब की हिंदी कविता में स्त्री-जीवन के यथार्थ पर गंभीरता से विचार-विमर्श किया गया है। समस्याओं को उठाया गया है तो उनका हल भी दिया गया है। पंजाब के कवि महज समस्याओं को उठाना अपनी ज़िम्मेदारी नहीं समझते हैं वे उनकी तह तक जाकर उनका निदान भी खोजते हैं। इस

स्थिति को स्त्री विमर्श से सम्बन्धित कविताओं में देखा जा सकता है। समाज द्वारा औरत को बार-बार एहसास दिलाया जाता है कि उसका रूप, यौवन और सौंदर्य ही उसकी योग्यताएँ हैं और इनके पास ना रहने पर उसका पुरुष की नजरों में कोई मूल्य नहीं है। आधुनिक शिक्षा के प्रचार और प्रसार से पुरानी भ्रांतियाँ और अवधारणाएँ कुछ ढीली जरुर पड़ी हैं परंतु अभी भी समाज में विद्यमान हैं। पंजाब के कवि के अनुसार समाज की सोच के साथ-साथ नारी की सोच में भी बदलाव आना आवश्यक है तभी इन समस्याओं का समाधान हो सकता है।

3.3 वृद्ध विमर्श का यथार्थ

दलित विमर्श, स्त्री विमर्श के बाद जिस एक विचार बिन्दु पर चर्चा करना बहुत जरूरी है वह है वृद्ध विमर्श। हिंदी साहित्य में इस विमर्श पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है। विचारकों का मानना है कि भारत में बुज़ुर्गों को पर्याप्त मान-सम्मान दिया जाता है। इसलिए इन पर इतना परेशान होने की जरूरत नहीं लेकिन यथार्थ इसके एकदम विपरीत है । बुज़ुर्गों का जीवन आजकल की बदलती जीवन-शैली, सोच और विचार के अनुकूल फिट नहीं बैठ रहा है जिसे आज के युवा वर्ग ने और उलझा हुआ बना रहा है। यह एक तरह की त्रासदी है जिस पर गंभीरता से विचार करना जरूरी हो गया है। पंजाब की इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में पंजाब के कवियों ने इस पर गंभीरता से लेखन किया है।

सही मायने में मूल्यांकन किया जाए तो यहाँ बुज़ुर्ग का उपेक्षित होने का मतलब है पितृ ऋण से उरिन न होना। आज भी कहीं कोई बुज़ुर्ग उपेक्षित किया जाता है तो परिवार, समाज उसे अपनी तरह से फटकार लगाता है। यह फटकार

युवाओं को एक सीमा और दायरे में रोकते हैं। अनैतिक नहीं होने देते उनकी कर्तव्य भावना के आगे। अन्य तमाम देशों की अपेक्षा भारत बुज़ुर्गों के लिए किसी स्वर्ग से कम नहीं है। लेकिन ऐसा पिछले कुछ दशकों से देखा जा रहा है कि यहाँ भी वृद्धाश्रम खोले जाने लगे हैं। वर्तमान समय में उनकी इतनी उपेक्षा हो रही है कि घर पर सभी के रहते हुए भी उनसे बोलने और हाल-चाल लेने वाला कोई नहीं है। डॉ. शशि प्रभा *बहुत कुछ अनुत्तरित* में संकलित कविता 'माँ' में लावारिस हो चुकी 'माँ' की यथास्थिति दर्शाते हुए इस बिडम्बना को कुछ इस तरह दिखाती हैं-

अपनों के बीच/ ली उसने

आखिरी साँस/ पर अकेले !

खाली हुआ बिस्तर/ मन का एक कोना

चली गई माँ/ जाना ही था उसे

मुक्त हुई स्वयं/ मुक्त कर गई

मुझे ! (प्रभा 104)

मुक्त माँ नहीं हुई और न ही तो कवयित्री हुई बल्कि प्रश्न छोड़ गयी पूरे समाज पर। ऐसी बहुत स्त्रियाँ हैं जिनके विधवा होने के बाद बाल-बच्चों ने उनकी परवरिश करना बंद कर दिया। जब तक पति रहे माँ सबकी सेवा और देखभाल करती रही। जैसे वह गुजरे सब माँ को भूल गए और अपने परिवार में व्यस्त रहने लगे। परिवार का हिस्सा तो माँ भी थी लेकिन इसके आज के युवा भूले जा रहे हैं। पति-पत्नी और बच्चों में मशगूल रहने वालों के यहाँ रौनक चाहे जितनी हों एक खालीपन हर समय रहेगा क्योंकि स्त्री की भटकती आत्मा सुख-शान्ति का अनुभव नहीं कर पाती। एक तो

स्त्री दूसरे बुज़ुर्ग। इसकी पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए सीमा जैन अपने काव्यसंग्रह *धूप-छाँव* में कहती हैं-

सारा जीवन तुमने की/ सब की सेवा

पति, बच्चे, घर-परिवार, रिश्तेदार,

निभाती रही दुनियादारी,

मगर अन्त में माँ/ तू अपने ही अंश से हारी।

पति के जाते ही/ सब हो गए लीन बच्चों में, काम धंधे में।

तू जहाँ थी, वहीं रही/ तेरी सुध किसी को न रही।

समय कहाँ था किसी के पास तेरे लिए।

हाथों की अकड़ाती उँगलियों, बढ़े नाखून, उलझी लटें,

बहुएँ सोचतीं देख-देख, कैसे हाल बिगाड़े रहती हैं,

लोग क्या कहेंगे ?

कभी नहीं पूछा- साड़ी बदलवा दूँ या उसे धुलवा दूँ ?

पोपले मुँह से, बिन दाँत,

जब तुम कुछ न खा पाती, भूखी रह जाती,

फ्रिज में बंद फल, जूस देख सोचती रह जाती।

तब तुम, जो कभी कुछ न कहा करती थी किसी से

नम आँखों से, हताश सांसों से, कहे बिन रह न पातीं। (जैन 53)

बुज़ुर्ग महिलाओं की यह स्थिति हर प्रदेश, नगर और गाँव का यथार्थ होता जा रहा है। पहले ये चीजें महज शहरों तक में सीमित थीं लेकिन वर्तमान समय में तो गाँवों में भी फैलती जा रही हैं। यह फैलाव बहुत अन्दर तक कचोट रहा है लेकिन कोई कहे तो किसे और क्या? इस भारतीय समाज में अनाथालय तो खैर पहले से ही थे। वर्तमान समय में जिस तरीके से वृद्धाश्रम खुल रहे हैं उससे उनकी समस्याएँ जगजाहिर हैं। जब भरे पूरे परिवार में उनका ख्याल कोई नहीं रखने वाला है तो जिनके पास धन है वह ही कम से कम भटकती हुई आत्माओं को एक आशियाना तो दे रहे हैं न? सच यह भी है कि इधर के दिन बुज़ुर्ग अन्दर से डरे हुए और भयभीत हैं। शहरों में रह रहे बच्चे यदि कभी आते भी हैं तो महज कुछ पैसे देकर वापस अपने शहर की तरफ रुख कर लेते हैं जिसका जिक्र *अंतहीन दौड़* में अमरजीत कौंके अपनी कविता में कुछ तरह करते हैं-

मैं जल्दी जल्दी/ माँ की सूख रही हथेलियों पर

चन्द सिक्के टिकाऊँ/ और वापिस

अपने शहर लौट आऊँ। (कौंके 15-16)

बच्चों के घर जल्दी न आने और फिर वापस शहर की तरफ मुड़ने की यथास्थिति के बीच वृद्धों के इस डर और भय का मनोवैज्ञानिक कारण भी है। यह मनोवैज्ञानिक कारण है- सामाजिक, पारिवारिक और दैहिक सत्ता का हस्तांतरण। आज तक उन्हें पदानुक्रम में श्रेष्ठ की हैसियत प्राप्त थी। उन्हीं का आदेश सर्वोपरि था। घर के अन्दर सास का साम्राज्य और घर के बाहर पिता का। लेकिन बहू के प्रवेश से सास के अधिकारों में हिस्सेदारी की माँग बढ़ी। धीरे-धीरे परिवार में बहू की प्रमुखता

ने घर के अन्दर सत्ता का हस्तांतरण किया उसी तरह घर के बाहर सभी तरह के निर्णयों में पुत्र के हस्तक्षेप से पिता की सत्ता में सेंध लगी। शारीरिक रूप से भी कल तक जो व्यक्ति 'पूर्णता' में था, आज निरूपाय-सा है। तात्पर्य यह कि सारा खेल सभी तरह की सत्ता का हस्तांतरण का है, जो वृद्धों को मनोवैज्ञानिक रूप से कटु, रिक्त और कई बार मनोरोगी तक बना डालता है। जिस तरीके से बुज़ुर्ग मनोरोगी बन रहे हैं, एकांत झेलने की पीड़ा से ग्रसित हैं उसे अभिव्यक्त करते हुए *शिकायत किए बिना* संग्रह में सुरेश नायक आज के युवाओं को भी तैयार रहने की चेतावनी समय के हवाले से देते हैं-

"तैयार रहना तुम भी

ईंट-ईट/ अपने ही बनाए-सँवारे

घर के/ किसी उपेक्षित

सूने कमरे में/ अपने बुढ़ापे के

बाकी बचे दिनों की/ रोटी-दाल खा सकने के लिए

समय/ सब कुछ को

सम्भव होते देखने का/ दूसरा नाम है।" (नायक 47)

बच्चों के प्रवास ने बुज़ुर्गों के मन में असुरक्षा के भाव अधिक भरे हैं। इससे भी अधिक विडंबना उन्हें अकेले हो जाने की है। आर्थिक तंगी के चलते कहें या फिर शौक वश परदेस बस गए बेटों की वजह से घर का कोना एकदम अकेला और खाली हो गया है। भरे-पूरे परिवार में रहने की आदत के चलते बुज़ुर्ग पंजाब जैसे प्रदेश में बनी कोठियों में अकेले रहने के लिए अभिशप्त हैं और वह इस पीड़ा को अपने बच्चों तक को

नहीं बताना चाहते हैं। *संघर्ष बस संघर्ष* में शुभदर्शन अपने हृदय के भाव को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं-

पेट की आग बुझाने

परदेस गए बेटा/ क्या समर्पित करूं तुझे

मेरे पास तो हैं/ केवल तेरी यादें

कुछ आँसू/ और

मुझे बहलाने को थमा गए/ कमल से बिगड़े

कवल से चुभे काँटों का दर्द। (शुभदर्शन 126)

स्मृति का दंश बहुत भयानक होता है। यह अकेले पड़े हृदय को अन्दर तक बेधता है। कचोटता है और फिर घर से बाहर गए पुत्र की याद में अकेले तड़पाता है। यह तड़पन इधर के दिन और अधिक तीव्र हुई है। अन्य प्रदेश के युवाओं के साथ-साथ पंजाब प्रदेश का परिवेश वर्तमान समय में अधिक अशांत और खाली-खाली है। बच्चों के रहने से जितनी रौनक घर-परिवार में होती है उससे कहीं अधिक रौनक आस-पड़ोस, पार्क आदि में होती है। जब युवाओं से परिवेश खाली हो जाता है तो खिलौने आदि का अस्तित्व न के बराबर रह जाता है। जिन झूलों पर बच्चों की हँसी फूटती है वही झूले एकदम नीरस और उबाऊ प्रतीत होते हैं। इसका एक कारण इन दिनों बच्चों के हाथ में रिमोट का पहुँच जाना भी है। सुरेश नायक अपनी एक कविता में पार्कों की यथास्थिति को दिखाते हुए असहाय और निरुपाय बुजुर्गों को भी दिखाते हैं। बच्चे या तो बाहर हैं या फिर घर में टी.वी. की कैद में हैं। घर में अकेलापन झेलने वाले बुज़ुर्ग

पार्कों में भी बोरियत ही पाते हैं जो इस कविता में बहुत सुन्दर तरीके से दिखाने का प्रयास हुआ है। *रंग आ जाते हैं!* संग्रह में सुरेश नायक लिखते हैं-

हमारे शहरों के बीचों बीच स्थित

बच्चों के पार्क का नाम है/ जहाँ झूले गतिहीन खड़े हैं

शॉप्स पर खिलौने अनबिके पड़े हैं।

कॉमिक्स धूल से जड़े हैं हैं/ चटख रंग के बेंच पर केवल

जुगाली करते कुछ बूढ़े हैं/ आसपास की चीजों का चटख रंग

उन बूढ़ों के लफ्जों से मेल नहीं खाता है

बच्चे घर पर हैं, उन्हें यहाँ आना नहीं सुहाता है

आँखों के सामने तैरते, नाचते गाते

रंगीन चित्रों को ताकना उन्हें भाता है

रिमोट कन्ट्रोल पर दृश्य बदलता है

हर बच्चा एक विधाता है

(यही एक काम उन्हें बखूबी आता है।) (नायक 28)

बच्चों की यह राजशाही उन्हें लेकर डूब रही है। बुज़ुर्ग अकेले हुए हैं तो सुख और सुकून बच्चों का भी छिना है। वह उम्र से पहले ही जवान हो रहे हैं। उन्हें दादा-दादी की कहानियाँ अब नसीब नहीं हो रही हैं और न ही बहू और बेटे अब उनकी जरूरत महसूस रहे हैं। महसूसते तब हैं जब बच्चे लगभग बिगड़ जाते हैं। बिगड़े

हुए हालात इन दिनों सम्पूर्ण परिवेश के हैं। एक तरह की संवाद न होने से नीरसता छाई हुई है और कुसंस्कार व्यवहार बनते जा रहे हैं। बुज़ुर्गों के पास कोई चारा न होने के कारण वे संवादहीनता में मौन को गले लगा रहे हैं। मोहन सपरा दादूराम नामक शख्स के जरिये देश के बुज़ुर्गों की यथास्थिति को अभिव्यक्त करते हुए मौन की पीड़ा को साकार करने का प्रयास करते हैं। वह *समय की पाठशाला में* संग्रह में दादूराम के जरिये देश के बुजुर्गों की यथास्थिति दिखाते हुए कहते हैं-

पूरे देश की तरह/ दादूराम अब बोलता नहीं

बोलने की उसकी आदत नहीं रही, नहीं रही।

दादूराम अब घड़ियाँ नहीं बेचता

घड़ियाँ बेचने की उसकी ज़रूरत नहीं रही, नहीं रही।

उसने अन्धेरे की दुनियाँ की यात्रा शुरू कर दी है

जहाँ हर कदम अपनी ओर उठता है

उठता है और पस्त हो जाता है

अब दादूराम की शिनाख्त करना मुश्किल हो गया है

दादूराम चौखटे में फिट हो गया है

दादूराम के नाम पर/ ईमानदारी की घण्टियाँ बजती हैं

और घण्टियों के शोर में/ दादूराम

कोरे कागज़ों पर हस्ताक्षर करता जाता है

बेचारा दादूराम! (सपरा 32)

समय इस तरह बदलेगा और पूरी पीढ़ी मौन और संत्रास की दुनिया में शरण लेगी कम से कम भारतीय परिवेश में किसी ने न सोचा होगा। किसी ने ख्याल नहीं किया होगा कि इस देश में भी संवादहीनता सम्बन्धों में आएगी। यह किसी विडंबना से कम नहीं है कि वर्तमान समय में यही संवादहीनता पूरे परिवेश में छाती जा रही है। इक्कीसवीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में यह पूरे विश्वास के साथ इसलिए दिखाया जा रहा है कि कोई परिवर्तन अवश्य दिखाई देगा। कोई आगे आएगा और बुज़ुर्गों की समस्या पर बोलने या लिखने का प्रयास करेगा। यथार्थतः कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में बुज़ुर्गों का यथार्थ भयावह है जिस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत और आवश्यकता है।

3.4 पर्यावरण-प्रकृति विमर्श का यथार्थ

प्रकृति का वर्णन अनेक वर्षों से, सभी काल में, कविता के माध्यम से किया जाता रहा है। आज के परिवर्तनशील परिस्थितियों को केन्द्र में रखकर अनेक कवियों ने अपने-अपने तरीके से, समकालीन हिंदी कविता में प्रकृति का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है जिसके प्रति सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक आदि की तरह कवि और साहित्यकार भी काफी चिंतित हैं। ये लोग अपने कविताओं और साहित्य के माध्यम से पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता व्यक्त कर रहे हैं। समकालीन कविता वास्तव में पर्यावरण त्रासदी का युग है जिसे अनेक कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है।

प्रारम्भिक काल से ही विद्वानों में यह चिंतन का विषय रहा है कि पर्यावरण क्या है? उसकी ठीक-ठीक परिभाषा क्या हो सकती है? दामोदर शर्मा अपनी कृति *आधुनिक जीवन और पर्यावरण* में लिखते हैं-

> जब हम इसके शब्दगत अर्थ पर विचार करते हैं तो पाते हैं-पर्यावरण दो शब्दों परि+आवरण से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है परि—चारों तरफ, आवरण—घेरा, यानी प्रकृति में जो भी हमारे चारों ओर परिलक्षित होता है—वायु, जल, मृदा, पेड़-पौधे, प्राणी आदि—सभी प्रकार के अंग हैं और इन्हीं से पर्यावरण की रचना होती है। (शर्मा 11)

यही पर्यावरण मनुष्य को जीवनवायु मुहैया कराता है तो यही उसके अत्यधिक हस्तक्षेप से दूषित होकर पर्यावरण प्रदूषण के रूप में परिभाषित होता है।

यदि पर्यावरण-संरचना पर विचार करें तो जिस प्रकार की संरचना में मनुष्य वास करता है, वह सम्पूर्ण भौगोलिक संरचना पर्यावरण के दायरे में आ जाती है। भौगोलिक संरचना दो प्रकार की होती है—1. (जीवभूगोल) भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं का योग जसकी अनुभूति किसी प्राणी या प्राणियों को होती है। इसके अंतर्गत जलवायु, मिट्टी, जल, प्रकाश वनस्पति, स्वप्रजाति एवं अन्य प्राणी जगत सम्मिलित होते हैं। पर्यावरणीय दशाओं में देश, काल, दिन के समय, मौसम (ऋतु) तथा कारकों के अनुसार भिन्नता पायी जाती है। 2. (मानव भूगोल) भौतिक तथा सांस्कृतिक दशाओं का सम्पूर्ण योग जो मानव के चारों ओर व्याप्त होता है और उसे प्रभावित करता है। भौतिक पर्यावरण में उच्चावच, संरचना, जलवायु, मिट्टी, वनस्पति तथा जीव-जंतु सम्मलित होते हैं। सांस्कृतिक या मानवीय पर्यावरण में समस्त मानवीय क्रियाओं, दशाओं तथा सांस्कृतिक भूदृश्यों को सम्मिलित किया जाता है। ये सभी सम्मिलत होकर एक ऐसे परिदृश्य का निर्माण करते हैं जो हमें

सुरक्षा और रक्षा देती है। (http://hindi.indiawaterportal.org/water_words/पर्यावरण-की-परिभाषाएं-और-अर्थ-definitions-and-meaning-environment)

पर्यावरण-प्रकृति के अध्ययन के लिए दोनों माध्यमों का सहारा लिया जाता है। जीव, जंतु, वनस्पति आदि का व्यवहार, उपस्थिति और सक्रियता के साथ-साथ इन सभी के प्रति मनुष्य के क्रियाकलाप, विचार-दृष्टि, समझ और समझ के कारक सभी पर्यावरण के निर्माण में सहभागी होते हैं। यहाँ सुरेश नायक के विचार द्रष्टव्य हैं जहाँ वह पर्यावरण का अर्थ गुलमोहर के हँसने से लेते हैं और हँसने की क्रिया ही एक तरह से पर्यावरण की सुन्दरता को बढ़ाती है, यह भी दर्शाते हैं। अपने काव्य संग्रह *शिकायत किए बिना* में सुरेश नायक लिखते हैं-

मेरे आनन्द का अनुमान/ वही लगा सकता है
जिसने गुलमोहर को हँसते देखा है
मैंने हर गुलमोहर को हर वक्त हँसते देखा है।
गुलमोहर चिन्ता में नहीं घुला जाता
खूबसूरती बाँटता वह नित्य प्रसन्न है
गुलमोहर हँसता है
भरी जेब और सूनी आँखों को एक साथ देखकर
शब्दों से भरे, समझ से खाली मस्तिष्क के अन्धेरों पर
उसका हँसना खूबसूरत है/ यह हँसना जरूरत है
कटाक्ष नहीं। (नायक 1)

सही अर्थों में कहें तो यदि ये सभी सात्विक और सकारात्मक रूप में सामने आते हैं तो पर्यावरण स्वस्थ और सुंदर होता है, वहीं यदि इनकी उपस्थिति

नकारात्मक रूप में होती है तो पर्यावरण प्रदूषण को जन्म देते हैं। मनुष्य हँसने की जगह रोने और घिसटने को महत्त्व देने लगता है तो समस्या बढ़ने लगती है।

पर्यावरण-प्रकृति को सुरक्षित रखने और उसके यथार्थ पर विचार-विमर्श करने में पंजाब के कवियों का विशेष योगदान रहा है। नित-प्रतिदिन बढ़ती पदार्थ उपयोगिता पर उनमें आक्रोश भी है और समाधान के भाव भी। हरे-भरे बाग़-बगीचे काटकर बाज़ार, बिल्डिंग्स के साथ-साथ अन्य आधुनिक सुविधाओं को जोड़ा व बनाया गया लेकिन परिणाम क्या मिला? *संघर्ष के ज़ख़्म* संग्रह में शुभदर्शन उन दिनों को याद करते हुए स्मृति में जाते हैं जब पेड़ों-पौधों से परिवेश सुसज्जित हुआ करता था-

क्या दिन थे वो/ जब माँ रूपी बरगद
पशु-पक्षियों को ही नहीं/ पूरे मुहल्ले को
ताजा हवा के झोंकों से/ थकान, उदासी, गम के थपेड़े
झेल पाने की शक्ति दे/ नई स्फूर्ति पैदा करता
आज बरगद गिर चुका/ उड़ गए पक्षी
आवारा हुए मुहल्ले के पशु/ आपसी नफरत से
जहर भरे वृक्षों के पत्ते/ छनकर आती
सूर्य किरणों को कर रहे विषाक्त
और उनकी खड़खड़ाहट/ ज्यो ढोल बजाती हो-भीड़
अपने आका की जीत पर/ फिर रिश्तेदारों के बने गुट
दाग रहे हो तानों के शोले/ सब झुलस गया है (शुभदर्शन 41-42)

अब तो इस झुलसने की प्रक्रिया में गौरैये के लिए पेड़ के शाखाएँ, उनके घोसले उजड़ते जा रहे हैं। परिवेश धीरे-धीरे कोयल की आवाज़ से वंचित होता जा रहा है। लेकिन फिर भी व्यक्ति खुश है और उसे लगता है कि वह संतुलित भूमिका निभा रहा है। कवि शुभदर्शन कविता संग्रह *संघर्ष बस संघर्ष* में परिवेश से गायब

होते गौरैया के प्रति चिंतित दिखाई दे रहे हैं तो इसके पीछे जो कारक सहायक रहे हैं उसके प्रति 'गलती तो अपनी ही थी' कहकर मनुष्य समाज को ही इसके लिए दोषी ठहराते हैं-

गलती तो अपनी ही थी/ एक-एक कर
काटा वही वृक्ष/ जिसकी ठण्डी छांव में
की थी मस्ती/ कोयल की आवाज़ सुन
भागते रहे पीछे/ उड़ाते रहे खिल्ली
उड़ते देख गौरैया के झुण्ड/ उसकी चहचहाट की गूँज को
चिल्लाहट में बदलते देख/ आज यदि कोई डाल नहीं
तो गौरैया के मुंडेर पर बैठने से/ उदास क्यों हो..(शुभदर्शन 84)

बैठने के लिए पेड़ की अनुपलब्धता पर गौरैया का 'मुंडेर पर' बैठना स्वाभाविक है। कवि के लिए यह चिंता का विषय है। व्यक्ति को आज छाँव भी नसीब नहीं हो रही क्योंकि पेड़ की अंधाधुंध कटाई उसी ने तो की है, ऐसे पेड़ों की जिसके छाँव तले वह रहता आया है। यूँ तो प्रकृति ने व्यक्ति को क्या नहीं दिया? नदी, समुद्र, जल, पशु, पक्षी, पेड़-पौधे, हिमालय-पर्वत आदि सब कुछ तो उपलब्ध किया था। कविता संग्रह *धूप छाँव* में कवयित्री सीमा जैन की मानें तो-

कुदरत ने हमें सौंपा था/ एक हरा-भरा संसार
हरियाली से ओत-प्रोत थे वन/ नदियों का जल था निर्मल;
पर्वत श्रृंखलाएं ओढ़े रहतीं थीं/ श्वेत वसन
हवाएँ होती थीं/ शुद्ध और शीतल
दूध, दही, फल, सब्जियाँ/ स्वास्थ्य के थे सुदृढ़ आधार
मगर आज जीवन/ हो रहा है 'सिंथेटिक'
परिस्थितियाँ हैं अति विकट। (जैन 34)

विकट परिस्थितियाँ क्यों हैं? क्यों अब प्राकृतिक आपदाएँ अधिक हो रही हैं? व्यक्ति प्रकृति पर अधिक से अधिक दबाव बढ़ा है और वह निरंतर उसे क्षीण करने में लगा हुआ है। सभी वनों की अंधाधुंध कटाई से तो सभी परिचित हैं, अनचाहे और अनावश्यक हथियारों का निर्माण, कल-कारखानों की अधिकता इन सब ने स्वच्छ और सुंदर प्रकृति को प्रदूषित किया है। इसकी प्रत्यक्ष हानि दिखाई देती है। *धूप-छाँव* कविता संग्रह में कवयित्री सीमा जैन के शब्दों में देखें तो-

> जूझ रहा है आज मानव/ झेल रहा जैसे कोई श्राप
> रोग, भूकंप, सुनामी, विध्वंस/ कैंसर, एड्स एटमी युद्ध
> हवा, पानी, ज़मीं आसमां/ सब कर डाले हमने प्रदूषित। (जैन 34)

उपभोग करने की बढ़ती कुप्रवृत्ति का ही परिणाम है कि आज धरती पर अनावश्यक रूप से दबाव बढ़ा है। यह भी सहजतः स्वीकार करना पड़ता है कि मनुष्य ने अपने निहित स्वार्थों के वशीभूत होकर प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया है। इस दोहन का जो सीधा परिणाम निकल कर आया वह है-पर्यावरण का असंतुलित होना है। आकाशीय प्रदूषण की सबसे बड़ी मार आकाश में विचरण करने वाले पक्षियों पर पड़ रही है। आज पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर है। प्रकृति विरोधी इस मानवीय आचरण पर कवि अमरजीत कौंके कविता संग्रह *बन रही है नई दुनिया* व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हैं-

> ऐ छोटे-छोटे परिंदो!/ पक्षी मुझ से डरते
> दूर भागते/ चीं चीं की भाषा में बोले.....
> पूछने लगे-/ तुम झूठ बोलते हो/-हाँ...
> तुम हिंसा करते हो/ -हाँ...
> तुम हमारे छोटे छोटे साथियों को/ आलू बैंगन समझ कर
> खा जाते हो...?/ फिर हमने

तुम्हारे पास नहीं आना/ हम तभी आएँगे तुम्हारे पास
जब/ पक्षियों जैसा होगा
जब तू हमारे जैसा होगा..../ अभी तो
मनुष्य है तू/ बहुत डरावना। (कौंके 25-26)

सम्पूर्ण संसार में असंतुलन की यह समस्या आज सबसे अधिक विचारणीय मुद्दा है। *हिंदी नवगीत और पर्यावरण* में अनिल कुमार पाण्डेय कहते हैं-

भावात्मक रूप से प्राकृतिक संसाधनों में जहाँ असंतोष के भाव दृष्टिगत हुए हैं वहीं विद्वानों एवं चिंतकों के लिए यह बेहद भयावह स्थिति के रूप में चिह्नित किया गया है। (पाण्डेय 22)

कवि मोहन सपरा के यहाँ सब कुछ होते हुए भी एक अन्धकार-सा माहौल है जिसके सन्दर्भ में उन्हें जानकरी नहीं है कि यह अंधकार/ किधर से/ निसृत हो रहा है। कहने को इसे कवि की हताशा और निराशा कहा जा सकता है लेकिन यह एक ऐसा यथार्थ है जिस पर गंभीर हुए बिना व्यक्ति स्वयं को बचा नहीं सकता। कवि मोहन सपरा कविता संग्रह *रक्तबीज आदमी है* में कहते हैं-

मेरे आसपास/ सब कुछ है-
फूल, हरे, चिड़िया/ बिल्ली...
पत्नी, बच्चे, मित्र, संबंधी/ फिर भी
यह अन्धकार/ किधर से
निसृत हो रहा है/ मुझे बार-बार
उचका रहा है। (सपरा 28-29)

यह अंधकार अनावश्यक नहीं है। यह मनुष्य द्वारा परिवेश को अशांत बनाए जाने का ही परिणाम है। मनुष्य स्वयं को असुरक्षित समझ रहा है। मनुष्य के लिए परिवेश कितना अधिक जरूरी है यह समझना मनुष्य के लिए उतना ही जरूरी है

जितना कि परिवेशजनित व्यवस्था के पोषक तत्त्वों पर विचार करना। मनुष्य की चेतना शक्ति जिनसे संचालित होती है वे भी पर्यावरण-प्रकृति के अंश होते हैं। इधर के वर्षों में पर्यावरण प्रकृति के प्रति उदासीनता बढ़ी है। उद्योग जगत की नई-नई स्थापनाओं से, क्रिया-कलापों से मानवीय परिवेश गहरे से प्रभावित हुआ है। यह प्रभाव लोगों के चिंतन शक्ति में भी देखने को मिल रहा है।

वर्तमान समय में भौतिकता की अंधी दौड़ में घर और परिवार का पर्यावरण प्रदूषित हुआ है। सभी एक दूसरे से गहरे में उलझे हुए हैं। कोई किसी से संवाद नहीं करना चाहता है। कोई किसी से मिलना नहीं चाहता है। घर की चारदीवारी शक और शंकाओं से भरी हुई है। सभी जैसे संवादहीनता से बोझिल होकर खुशी की परछाई ढूंढते दिखाई देते हैं। डॉ. शशि प्रभा *संधिरेखा पर खड़ी मैं* कविता संग्रह में घर में उपजे खालीपन से प्रदूषित मानसिकता का चित्रण करते हुए बताती हैं घर अब घर की तरह नहीं रह गए हैं-

घर अच्छे लगते हैं/ जो घर होते हैं
वे घर!/ घर कहाँ होते हैं
जहाँ/ चलती फिरती हैं
परछाइयाँ/ ढूँढती हुई
गुजरे हुए पल। (प्रभा 17-18)

अतीत में होना गलत नहीं है लेकिन वर्तमान से हारकर अतीत को ताकना किसी भी परिवार और परिवेश के लिए हितकर नहीं होता है। प्रदूषण की ऐसी हवा आज के समय में चली है कि घर खण्डहर होते दिखाई दे रहे हैं। *बहुत कुछ अनुत्तरित* कविता संग्रह में डॉ. शशि प्रभा देखती हैं कि रिश्तों में खटासपन भरी हुई है और उन पर संवादहीनता हावी है। सभी की अपनी कथा और व्यथा है। कोई किसी को समझने का प्रयास उतना ही कर रहा है जितने में उसकी अपनी सीमाएँ सुरक्षित हैं और ऐसे

भाव रिश्तों के मजबूत दीवार को खोखला कर रहे हैं। *बहुत कुछ अनुत्तरित* कविता संग्रह में डॉ. शशि प्रभा के अनुसार-

रिश्तों में खटासपन भरी हुई है/ सबकी
अपनी कथा है/ व्यथा है
रिश्तों की मज़बूत दीवारों में/ इतनी दरारें
दीवारों को/ खोखला करने में
निरंतर/ प्रयासरत हैं। (प्रभा 87)

रिश्तों के दीवारों को मज़बूत करने से व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ और समृद्ध रहेगा। संवाद को बढ़ाने से व्यक्ति नकारात्मकता से बचता रहेगा पर इसके लिए मनुष्य का मनुष्य के रूप में दिखाई देना जरूरी है। इससे परिवेशगत सकारात्मकता बनी रहेगी और व्यक्ति धरती को सुंदर तथा सौन्दर्ययुक्त बनाने में स्वयं को सक्रिय कर सकेगा। प्रकृति ने मनुष्य बहुत कुछ दिया है लेकिन मनुष्य ने प्रकृति को क्या दिया? अब इस पर विचार करने की जरूरत है। प्रकृति के उपहार और मनुष्य के स्वार्थ का चित्र खींचते हुए सीमा जैन ने *धूप-छाँव* संग्रह में यथार्थ को कुछ इस तरह अभिव्यक्त किया है-

कुदरत ने माँ बनकर/ हमें क्या नहीं दिया
लेकिन हमने माँ के प्रति/ फर्ज कब अदा किया?
धरती कर रही चीत्कार/ लगा रहीं अपने बच्चों से गुहार
समय रहते सम्भल सको/ तो सम्भल जाओ
वरना सहनी पड़ेगी/ कुदरत की अचूक मार। (जैन 35)

कुदरत की अचूक मार से बचने के लिए व्यक्ति अपने कर्तव्यों से परिचित होना होगा। व्यक्ति को यह समझना होगा कि वह प्रकृति से बड़ा नहीं है और न ही वह प्रकृति को अस्थाई करके स्थायित्व ही प्राप्त कर सकता है। प्रकृति ने यदि 'माँ' बनकर

मनुष्य को बहुत कुछ दिया है तो उसे भी सन्तान की तरह उसकी रक्षा-सुरक्षा की ज़िम्मेदारी लेनी होगी। कवि मोहन सपरा कविता संग्रह *रक्तबीज आदमी है* में कहते हैं-

जब कभी देखो/ वृक्ष के पीले पड़ रहे
पत्तों को/ तो हाथ उठाओ
और जंगल को ललकारो। (सपरा 64)

यहाँ जंगल को ललकारना उन सभी को संदेश देना है जो पर्यावरण को प्रदूषित करने में भूमिका निभा रहे हैं। उन्हें यह समझाना होगा कि उन सबकी बुद्धिमत्ता स्वार्थजनित भाव को और अधिक विस्तार देने लगी है। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए जिस दिन मनुष्य यह समझ जाएगा उसी दिन से मनुष्य प्रदूषण की समस्या से निजात पाना शुरू कर देगा। सुरेश नायक मनुष्य को रुकने, देखने और संभल कर चलने की सलाह देते हैं। यदि मनुष्य इतना भी करे तो बचाव का काफी रास्ता निकल सकता है। सुरेश नायक *शिकायत किए बिना* संग्रह में कहते है-

धूल-धुएँ से बढ़े प्रदूषण-दर
आते ओवर टेकिंग के अवसर
यातायात के नियम भंग नहीं करना है
हमें बस अपनी-अपनी गति निर्धारित करना है
रुकना है, देखना है, चलना है। (नायक 28)

व्यक्ति को अपनी आदतों में सुधार लाने की जरूरत है और यह जरूरत हर नागरिक को समझनी होगी। जिस दिन यह समझ जगेगी उसी दिन पर्यावरण प्रदूषण के संकट कम हो जाएँगे। इस तरह कहा जा सकता है कि पंजाब का कवि पर्यावरण-प्रदूषण के प्रति अधिक सचेत है जहाँ वह प्रदूषण के विभिन्न कारकों की पहचान कर रहा है, वहीं पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए उपाय भी सुझा रहा है।

चतुर्थ अध्याय- अर्थतन्त्र का बदलता प्रारूप

4.1. श्रमिक और किसान के यथार्थ का परिदृश्य

4.2. अर्थतन्त्र के विविध परिदृश्य

4.3. कार्पोरेट जगत का परिदृश्य

4.4. आर्थिक उन्नति : विकास या विनाश का परिदृश्य

व्यक्ति आज के जिस विकसित दौर में जी रहा है उसमें सबसे बड़ी समस्या यदि कुछ है तो वह आर्थिक समस्या है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो आर्थिक उन्नति के लिए प्रयासरत न हो। जिनके पास साधन-संसाधन हैं वह समृद्ध हैं, जिनके पास नहीं हैं वह विपन्नों की श्रेणी में आते हैं। समकालीन समाज का यथार्थ यह है कि यहाँ जो जितना अमीर है वह उतना ही अधिक अमीर होता जा रहा है जबकि दूसरी तरफ जो जितना गरीब है वह उतना ही गरीब होता जा रहा है। गरीब और अमीर के बीच की खाई को जब गंभीरता से देखा जाता है तो पाया जाता है कि यह अंतर निरंतर बढ़ता जा रहा है।

मनुष्य के हृदय और परिवेश में सामाजिकता इसीलिए भी कम हुई है क्योंकि जो भी सामाजिक व्यवस्था कभी कल्पना में लाई गयी थी और जिसके लिए समाज का अस्तित्व स्वीकार किया गया था, वह पूरी तरह से बदल गयी। इस दृष्टि से युवा लेखक राकेश रेणु का पुस्तक *आंबेडकर ने कहा था* में दिया गया कथन पूरी तरह से सही सिद्ध होता है-

> यदि आपकी सामाजिक व्यवस्थाएं मुकम्मल नहीं हैं तो आपकी आर्थिक व्यवस्थाएं भी अच्छी नहीं हो सकतीं। (रेणु 31)

वर्तमान समय की आर्थिक व्यवस्था वास्तविकतः अच्छी व्यवस्था नहीं है, यह कहने और सोचने में कोई दो राय नहीं होनी चाहिए। 21वीं सदी के पंजाब का हिंदी कवि समाज में हो रहे आर्थिक परिवर्तन को गंभीरता से देख रहा है। वह सिर्फ देख ही नहीं रहा है अपितु उसके यथार्थ परिदृश्य का वर्णन करके समाज को जागरूक भी बना रहा है। *आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास* में बच्चन सिंह के दिए शब्दों में कहें तो-

> साहित्य का इतिहास बदली हुई अभिरूचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है। जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से है। (सिंह 440)

ऐसे परिवर्तन जो अब यथार्थ हो चुके हैं पंजाब की हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त हुए हैं। चिंतन और विमर्श के दायरे में 'जन' ने प्रमुखता पाई है। 'जीवन' जिसे व्यक्ति सुन्दर बनाने की परिकल्पना करता है वह इस भौतिक युग में सही मायने में अर्थ पर ही निर्भर करता है।

पंजाब की समकालीन कविता की सर्वप्रमुख उपलब्धि किसान और मज़दूरों के यथार्थ स्वर की वापसी है। भारतीय स्वतंत्रता के बाद देश को तो आज़ादी मिल गयी, किन्तु किसान और मज़दूर आज भी सामंतवादी जकड़बंदी से मुक्त नहीं हो पाये हैं। सदियों से उनके द्वारा जोती जा रही ज़मीन का मालिकाना हक तक किसानों को नहीं मिला है। दिन रात खून-पसीना एक कर, मुसीबतों का सामना कर उगाई फसल से किसान वंचित हैं। समकालीन कविता में इस अमानवीय अत्याचार पर लगातार टिप्पणियाँ दर्ज हुई हैं। सत्ताधारी एवं पूँजीपति द्वारा विकास के नाम पर चल रही साँठ-गाँठ में किसान पिस रहा है। विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं की आड़ में रिश्वतखोरी और भष्ट्राचार को बढ़ावा देकर किसानों और मज़दूरों का आर्थिक शोषण चल रहा है। पंजाब के समकालीन कवियों ने किसान, मज़दूर एवं ग्रामीण अंचल की इन विद्रूपताओं का चित्रण किया है।

इधर किसानों के जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन हुए हैं तो श्रमिक वर्ग भी नए पारिवेशिक संस्कृति को अपना कर चल रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दबाव इन दोनों पर तो देखा ही जा सकता है, बाज़ार के चकाचौंध में इनकी बढ़ती परेशानियों को भी चिह्नित किया जा सकता है। अर्थतंत्र के नए विकसित रूप मनुष्य

को चौंकाते हैं तो उनके चंगुल में फँस रही युवा पीढ़ी की दुर्दशा उसे सोचने के लिए विवश करती है। इस दौर में आकर मनुष्य यह सोचने के लिए विवश हो रहा है कि यह आर्थिक उन्नति की दौड़ उसे विनाश की ओर ले जा रही है या फिर विकास की तरफ?

कवि क्योंकि समाज का एक ज़िम्मेदार नागरिक होता है और दूसरों से कहीं अधिक गंभीर और संवेदनशील होता है इसलिए इन सभी समस्याओं को वह गंभीरता से अपने काव्य का विषय बनाता है। 21वीं सदी के इस दौर में पंजाब का हिंदी कवि किस तरह से बदलते अर्थ-तन्त्र के प्रारूप को चिह्नित कर रहा है यह देखने के लिए निम्न बिंदुओं पर विचार करना होगा-

4.1 श्रमिक और किसान के यथार्थ का परिदृश्य

भारत में श्रमिक और किसान लगभग एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। जिन किसानों के पास ज़मीन कम होती है वही मज़दूरी करने के लिए विवश होते हैं। वही अपना घर-परिवार छोड़कर परदेश जाने के लिए मजबूर होते हैं। किसानी में प्रायः खेतीबाड़ी का कार्य होता है। दुग्ध उत्पादन से लेकर अनाज उत्पादन तक के कार्य किसानों के जिम्मे माने जाते हैं। ज़मीन कम होने और आय के संसाधन न होने से जब किसानी से परिवार का पालन-पोषण मुश्किल होने लगता है तब वही किसान शहरों में मज़दूरी करने के लिए निकलता है। यही वर्ग श्रमिक वर्ग कहलाता है। श्रमिक की परिभाषा देते हुए राधेश्याम शर्मा ने अपनी पुस्तक *भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक चेतना* में कहा है-

> ग्रामीण वर्ग व्यवस्था में सबसे निम्न स्थान कृषि मज़दूर का है और उनकी संख्या ही सर्वाधिक है। ये लोग दूसरे के खेतों पर मजदूरी करके

> अपना जीवन निर्वाह करते हैं। एक ओर ये संख्या की दृष्टि से गाँवों में सर्वाधिक हैं तो दूसरी ओर उनकी आय सबसे कम है। (शर्मा 42)

यहाँ प्रायः कृषि मज़दूर की तरफ संकेत कर के श्रमिक वर्ग को परिभाषित करने की कोशिश की गयी है लेकिन जब आप इन्हें व्यापकता में देखने का प्रयास करेंगे तो गाँव-नगर-शहर तक फैले हुए दिखाई देंगे। ये वही श्रमिक होते हैं जो होटलों, मिलों, कारखानों से लेकर सड़क आदि के निर्माण में लगे होते हैं।

महानगरीय परिवेश में श्रमिकों की एक बड़ी संख्या है। मजबूर और वेबस होकर ये श्रमिक या तो किसी तरह जीवन को काट रहे हैं या फिर अपने होने को लेकर पछतावा कर रहे हैं। इनके बाल-बच्चे प्रायः भूखे और नंगे पाए जा सकते हैं। माता-पिता दिन-रात खटने और श्रम करने के बावजूद इनकी आम जरूरतों को पूरा करने में भी विफल हैं। इसके विपरीत जो उच्च तबके के लोग हैं उनकी स्थिति अलग ही है। वे सुखों के खजाने पर बैठकर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जी रहे हैं और इन्हें ललचा रहे हैं। *संघर्ष के ज़ख़्म* में कवि शुभदर्शन श्रमिकों को यथार्थ का यह भयावह परिदृश्य कुछ इस तरह दिखाते हैं-

> जब तुम्हारी अंतड़ियों का जूस/ परोसा जाएगा
> किसी पाँच तारा होटल में/ और
> तुम्हारी आँखों के सामने/ बिलखने लगेंगे बच्चे
> दो कौर भुने चावल के लिए/ फिर
> पेट में दर्द तो उठेगा ही। (शुभदर्शन 93)

यह दर्द हर उस श्रमिक के हिस्से आता है जो गाँवों से निकलकर महानगरों में मज़दूरी करने आते हैं। इनका अपना कोई घर नहीं होता । जिनके पास ज़मीन और घर है भी वे भी इतने तंगहाल और जर्जर व्यवस्था में घरों का निर्माण किये हैं कि कई

बार यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि ये घर इन्हीं के लिए बनाए गए हैं या फिर किसी जानवर के लिए। किसी तरह से बिजली की व्यवस्था हो भी जाती है लेकिन पानी और हवा की व्यवस्था में गंभीर समस्या उत्पन्न होती है। सीमा जैन ने *मोम के पंख* में संकलित कविता 'किराए का घर' में उनके जीवन के यथार्थ को रखा है जो कमरे किराए पर लेकर रह रहे हैं-

> किराए के घर में रहना/ दिनों-दिन, सालों-साल।
> वह नल से टपकता पानी/ सड़क पर वाहनों की रवानी
> बारिश में सीलती दीवारें/ छत पर मटमैली कड़ियों की कतारें।
> ज़िन्दगी की सरकती हुई/ सुबह, दोपहर, साँझ और रात
> एक युग जैसे सिमट कर/ हो गया हो पलों की बात। (जैन 76)

यह भी सच है कि बहुत-सी फैमिली के रोजगार का आधार भी किराए पर कमरा देना है। ये बदलती हुई आर्थिक स्थितियों का ही तकाज़ा है कि लोगों ने छोटे-छोटे कमरे बनाकर किराए पर देना शुरू कर दिया। यह दूर-दराज से आए मज़दूरों और श्रमिकों के लिए एक तरह से हितकर भी रहा लेकिन कुछ समय तक। बाद में यह उनके शोषण का एक आधार होता गया। मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था न कर पाना इस क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या में से एक थी जिसे बाद में श्रमिकों को झेलना पड़ा और आज भी वह झेल रहे हैं।

अक्सर ट्रेनों आदि में भीख माँगते हुए बच्चों को देखा जा सकता है। ये बच्चे शौक से भीख नहीं माँगते और न ही खुशी-खुशी मज़दूरी करते हैं। यह इनकी विवशता होती है। ट्रेनों में कार्य करने वाले बच्चों के जीवन का यथार्थ देखना हो तो सुरेश नायक के *रंग आ जाते हैं !* संग्रह की 'इस तरह' कविता में देख सकते हैं। इस कविता में बाल श्रमिक की दिनचर्या पर प्रकाश डाला गया है-

> ट्रेन में/ नंगे पाँव, नन्हें बाजीगर

चेहरे के फीकेपन/ किस्मत के खालीपन
और अंदर के सूनेपन को/ चटकीले रंगों से छिपाए
मुँह पर पाउडर और/ सुर्खी लगाए
जोकरनुमा टोपी सिर पर सजाए
पतले गोल/ लोहे के छोटे से रिंग में से
हाथ, पैर और कमर/ निकाल रहे हैं
जल्दी-जल्दी/ इनके ज़हन में
ट्रेन के बाकी बचे/ डिब्बों की गिनती चल रही है
इसी तरह इनके जीवन की सुबह
शाम से पहले ढल रही है/ देश के एक पर्याप्त
हिस्से की आबादी/ इस तरह पल रही है। (नायक 25)

"देश के एक पर्याप्त/ हिस्से की आबादी/ इस तरह पल रही है" जो वह बदलते अर्थ-तन्त्र की यथास्थिति और यथार्थ है जिसे किसी भी रूप में इनकार नहीं किया जा सकता है। यह केवल ट्रेनों में ही नहीं, बसों आदि में भी देखे जा सकते हैं। दिनभर घूमते, करतब दिखाते ये बच्चे किसी की आँखों के नूर और ममता के आँचल जरूर हैं, लेकिन यथार्थ आर्थिक दुर्दशा इनकी इतनी भयावह है कि ये अपने भविष्य के विषय में बेहतर तरीके से सोच नहीं पाते हैं। इनके अभिभावक और परिवार के पास भी इतना विकल्प नहीं होता है कि वह इनके बेहतर भविष्य का देखभाल कर सकें।

श्रमिकों में सबसे भयावह स्थिति बाल श्रमिक की होती है। देश में बालश्रम एक तरह का अपराध भी माना जाता है। इसके लिए सरकारों ने अपनी तरह का कानून भी बनाया है लेकिन सुनवाई के स्तर पर कुछ भी नहीं है। वह बहुत कम उम्र में मज़दूरी की दुनिया में कदम रखते हैं लेकिन जब तक बड़े होते हैं तब तक नशे के दलदल में बुरी तरह फँसे हुए होते हैं। यह प्रायः शिक्षा से वंचित रह जाते हैं और

चाहकर भी वापसी नहीं कर पाते। *बहुत कुछ अनुत्तरित* में शशि प्रभा बालश्रम के यथार्थ पर अपना प्रश्न भरा दृष्टिकोण इस तरह रखती हैं-

> सुना है मैंने/ देश में
> बालश्रम के विरुद्ध/ कानून बना है
> सब बच्चों को/ शिक्षा का/अधिकार मिला है/
> है कहाँ कानून की वह किताब/जो देती बाप को
> सन्तान बेचने का अधिकार/ पीने को शराब। (प्रभा 23)

कानून की ऐसी किताबें प्रायः न के बराबर हैं। हैं भी तो उनका व्यावहारिक प्रयोग उस सख्ती से नहीं होता जिसकी जरूरत होती है। यदि कानून अपना कार्य ठीक तरीके से करे तो परेशानी न हो लेकिन कानून तभी व्यावहारिक हो सकेगा यदि समाज अपनी ज़िम्मेदारी को समझे। यही पीड़ा अंततः अमरजीत कौंके की भी है जिसे वह अपने कविता संग्रह *बन रही है नई दुनिया* में छोटे-छोटे बच्चों की श्रमिक हालत को दर्शाते हुए लिखते हैं-

> बड़े-बड़े पैलेसों में/ छोटे-छोटे बच्चे
> यह नहीं मालूम किस मजबूरी के मारे
> बचपन की आयु में/ पढ़ने की उम्र में
> उठा कर चलते प्लेटें/ बाँटते शराब
> सुनते गालियाँ/ भद्दे शब्द। (कौंके 39-40)

किसानों का कार्य पारम्परिक होता है। परम्परा से चली आ रही पुश्तैनी ज़मीन पर इनका रोजगार निर्भर करता है। ज़मीनें प्रायः एक से दूसरे को हस्तांतरित होती रहती हैं। इनके आय से लेकर बचत तक के माध्यम मात्र ज़मीन होती है। ज़मीन में पर्याप्त गुजारा न होने की स्थिति में ही ये दूसरी दुनिया का ख्याल मन में लाते हैं। अक्सर तो बटाई आदि पर किसी अन्य का खेत लेकर अपनी जीविका चलाते हैं।

राधेश्याम शर्मा ने अपनी पुस्तक *भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक चेतना* में किसानों की परिभाषा देते हुए कहा है-

> ये भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों के स्वामी होते हैं और उन पर स्वयं ही कृषि करते हैं। ये अपनी भूमि को अपनी संतानों को हस्तांतरित करते हैं। कई बार जब किसान परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक होती है और अपनी-अपनी भूमि पर्याप्त नहीं होती है तो ये लोग भू-स्वामियों से किराए पर भूमि को लेकर जोतते हैं अथवा कृषि-मज़दूरी द्वारा अपना जीवन यापन करते हैं। (शर्मा 42)

इससे एक बात तो स्पष्ट है कि ज़मीन पर निर्भर रहने वालों में जो भी है वह एक हद तक किसान है। यह एक तरह से भारतीय परिवेश में परम्परागत रोजगार है जो एक से दूसरे में हस्तानांतरित होता रहता है। इनमें बहुत से परिवार ऐसे भी होते हैं जो रोजगार के अन्य साधन न होने की वजह से और पर्याप्त ज़मीन न होने पर भी अपनी जीविका के लिए किसानी पर ही निर्भर करते हैं।

किसानों के शोषण की कहानी कोई नई बात नहीं है यह पंजाब का कवि जानता है। आर्थिक, मानसिक, बौद्धिक क्षरण तो होता ही है शारीरिक शोषण भी उसी निर्दयता से होता है। यह एक अपनी तरह का यथार्थ है कि किसानों के परिवार में बच्चियों का जन्म होना किसी अभिशाप से कम नहीं माना जाता है। *संघर्ष के ज़ख़्म* में शुभदर्शन ऐसे परिदृश्य का चित्र खींचते हैं जहाँ एक किसान की जवान बेटी गाँव के ज़मीदार या दबंग की ईर्ष्या का शिकार होती है। वह लिखते हैं-

> खेतों में गेहूं की कटाई के बाद
> निकलते हैं-तीतर बटेर
> अपनी जवानी की अकड में
> गर्दन उठाए देते हैं-बांग

जिसे भांपते ही सक्रिय हो जाते हैं-शिकारी
कहाँ सहन होता है/ कम्मी का अहम्
ज़मीदार को/ एक ही फितरत लिए
अलग-अलग जातियों में जन्में
गीध दृष्टि के मालिक/ कहाँ छोड़ते हैं कोई मौका
खेतों से गेहूं की बालियाँ चुन/ पीठ पर झोला लटकाए
सपने सजाए अपनी शादी के/ जा रही थी कम्मों
ट्यूबवैल पर बैठे/ जैलदार से नज़र बचाकर
मेढ से फिसला पाँव/ खा गयी गच्चा। (शुभदर्शन 95-96)

शोषण का यह सामाजिक यथार्थ गाँव और खेतों में जुताई-बुवाई के समय देखा जा सकता है। जिसने भी ज़मीदारी प्रथा से लेकर उच्च जातियों के प्रकोप और यथार्थ को देखा है वह इस सच से बिलकुल इनकार नहीं कर सकता है। खेतों आदि में मज़दूरी करने के लिए अमूमन दलित एवं आदिवासी परिवार से लोग जाते हैं। विवशता इतनी होती है कि ज़मीन मालिक या रखवालों के अत्याचार के खिलाफ कुछ बोल भी नहीं पाते हैं।

बेबस और असहाय छोटे-छोटे किसानों के दुःख किसी से देखे भी नहीं जाते हैं। कोई देखकर कुछ कर भी नहीं सकता है क्योंकि शक्ति के जो संसाधन हैं वह उनके पास नहीं हैं। उनके पास हैं जो दबंग और शक्तिसंपन्न हैं। इसलिए पंजाब के कवि का कहना है कि यदि सम्भव हो तो चुपचाप अपने रास्ते निकल लो। कवि यह मानकर चलता है कि इनकी दयनीयता को देखकर आप महज पश्चाताप कर सकते हैं, आँसू ही बहा सकते हैं। कवयित्री शशि प्रभा अपने काव्य संग्रह *धरती यह* में इस परिदृश्य का चित्र खींचते हुए लिखती हैं-

न देख इधर/ चुपचाप गुज़र

फटेहाल-से लोग यहाँ/ आँखों में आँसू
आ जाएंगे/ मन में उलझन भर जाएंगे। (प्रभा 8)

समस्या यह है कि यथार्थ का ऐसा भयावह रूप देखकर भी लोगों का हृदय नहीं पसीजता है। किसानों से राजनीतिज्ञ अपनी तरह का फायदा उठाते हैं तो पूँजीपति वर्ग अपनी तरह का। उनके बाल-बच्चे भूखे रहें या दुखी किसी से कुछ भी नहीं लेना-देना है। यथार्थ परिस्थितियाँ इतनी विकराल हैं कि इनके दिन का चैन और रातों की नींद गायब रहती है। दुर्भाग्य यह है कि इनके नाम पर आन्दोलन तो छेड़े जाते हैं लेकिन इन्हें या इनकी समस्याओं को तवज्जोह नहीं दी जाती है।

यथार्थतः कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के पंजाब की समकालीन हिंदी कविता में किसानों और श्रमिकों के यथार्थ सामाजिक परिदृश्य को पूरी ज़िम्मेदारी से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में जीवन की अभिव्यक्ति सर्वथा निर्दोष भाव से हुई है, यहाँ संवेदना के साथ पक्षपात नहीं किया गया है। संवेदना के साथ पक्षपात न करने से तात्पर्य यह है कि समस्याओं को खोजते व अभिव्यक्त करते हुए कवियों ने वर्ग व जाति आदि का भाव अपने मन में नहीं आने दिया है।

4.2 अर्थतंत्र के विविध परिदृश्य

इक्कीसवीं सदी के इस दौर में सामाजिक जीवन के निर्वहन के लिए सबसे जरूरी साधन है 'अर्थ'। कहने को 'अर्थ' का कोई महत्त्व नहीं है और व्यक्ति को इसके लिए उतना ही श्रम करना चाहिए कि जितने में उसकी जरूरत पूरी हो जाए, यथार्थ में परिदृश्य एकदम इसके विपरीत है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था अर्थ केन्द्रित व्यवस्था है। इसमें जिस व्यक्ति के पास जितना अधिक अर्थ है वह उतना ही समृद्ध

और सुरक्षित हैं। अर्थतन्त्र एक ऐसा व्यावहारिक ढाँचा है जिसमें व्यक्ति की जरूरतें और व्यवहार पूरी तरह दिखाई देती हैं।

अर्थ-तन्त्र के विविध परिदृश्य होते हैं। पारिवारिक एवं वैयक्तिक जीवन का अर्थ-तन्त्र मनुष्य को बहुत कुछ सोचने-विचारने के लिए विवश करता है। विद्यालयी जीवन का अपना तन्त्र है। जब आदमी नौकरी आदि की दुनिया में कदम रखता है तो वहाँ की विसंगतियाँ अलग से झेलता है और कभी आगे बढ़ता है तो फिर कभी पीछे मुड़कर अपनी आर्थिक समृद्धि या कंगाली का आंकलन करता है। इन सभी से व्यक्ति का विकास तो होता ही है लेकिन वह खोता भी बहुत कुछ है। सुरेश नायक मानते हैं कि दिन का आना और रात का बीतना जारी रहता है लेकिन सच्चाई यही है कि व्यक्ति अपनी यथास्थिति से दो-चार होता रहता है। *रंग आ जाते हैं!* संग्रह में सुरेश नायक लिखते हैं-

हर नया दिन यही कहता है कि
दिन आ ही जाता है
रात कितनी भी लम्बी लगे
रात बीत ही जाती है। (नायक 43)

अर्थ-तन्त्र और मनुष्य का संबंध इतना उलझा हुआ होता है कि मनुष्य को अपने प्रारंभिक जीवन से लेकर वर्तमान समय तक सबसे अधिक संघर्ष 'अर्थ' के लिए करना पड़ता है। बचपन से ही मनुष्य को अर्थ की ताकत का अंदाजा लग जाता है। स्कूल जाते हुए बच्चे, जिनमें से अधिकांश ग्रामीण परिवेश में रह रहे हैं या महानगरीय परिवेश में भी हैं, चाहते हुए भी स्कूल का मुँह नहीं देख पाते हैं। इसके पीछे उनके परिवार की आर्थिक विसंगतियाँ होती हैं जो उन्हें ऐसा करने के लिए विवश करती हैं। यहाँ कभी परिवार आड़े आता है तो कभी व्यक्तिगत जरूरत। इन दोनों स्थितियों की

एक झलक शशि प्रभा के काव्य संग्रह *बहुत कुछ अनुत्तरित* की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में देखने को मिलती है जब वह पूछती हैं-

"बताओ तो,/ तुम क्यों जाती नहीं स्कूल?"

बेबस आँख/ बोली वह-

"कौन देगा रोकड़ा

बाप को / पीने को शराब?" (प्रभा 21)

एक बार ये प्रश्न किसी का पीछा करते हैं तो सम्पूर्ण जीवन वह अर्थ के पीछे भागते हुए बिताता है। कभी अपनी जरूरतें तो कभी परिवार की जरूरतें उसे श्रम करने के लिए प्रेरित करती हैं तो मजबूर भी। वैयक्तिक एवं पारिवारिक जरूरतों के लिए भटकते मनुष्य से उसके रिश्ते और संबंधी बहुत पीछे छूट जाते हैं, जिसे शुभदर्शन ने अपने कविता संग्रह *संघर्ष बस संघर्ष* में इस यथार्थ को व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

पैसे की अंधी दौड़ में

छूट चुका है

रिश्तों का अहसास। (शुभदर्शन 30)

आज के समय में यदि व्यक्ति के पास रिश्ते हैं तो यह मानकर चला जा सकता है कि उसके पास पर्याप्त आर्थिक उन्नति के अवसर हैं या फिर वह आर्थिक-स्थिति से सम्पन्न हैं। यदि उसके पास पैसे नहीं हैं या उसका अभाव है तो फिर व्यक्ति सम्बन्धों को बहुत दिन तक जीवित नहीं रख सकता। बहुत-से आदमियों के लिए 'भूख' एक बड़ी समस्या बन कर आती है। सब स्थितियों से पार पाया जा सकता है लेकिन 'भूख' वह यथार्थ है जिससे निपटने के लिए आर्थिक स्थिति पर मजबूती जरूरी होती है। उद्योग जगत से लेकर खेती-किसानी तक के हालात ऐसे हैं कि वेबसी और लाचारी का मंजर बढ़ता

जा रहा है। उद्योग जगत में बारह घण्टे कार्य करने के बावजूद भी उतना पारिश्रमिक नहीं मिल पा रहा है कि व्यक्ति अपनी जरूरतों के साथ-साथ परिवार की जरूरतों को पूरा कर सके। *रंग आ जाते हैं!* में डॉ. सुरेश नायक अर्थतन्त्र के इस उलझे परिदृश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं-

आठ-दस बरस के बच्चे/ मैले-फटे चीथड़े पहने
हाथ में ढोलक और/ ढोलक पर थाप देते
नाचते-गाते/ (अपनी) खुशी से नहीं
मुसाफ़िरों की खुशी/ और अपनी तंगी तुर्शी
दूर करने के लिए/ खाली पेट उनके
उन्हें गाने के लिए/ मजबूर करते हैं। (नायक 11)

यह अर्थतन्त्र के उलझे परिदृश्य का ही नतीजा है कि ये बच्चे भूख से विवश होकर गाते-बजाते हैं। यदि भूख का सवाल न हो तो फिर इन्हें इस बाल उम्र में इतना ज़ोखिम क्यों उठाना पड़े? भूख की वेबसी और वैयक्तिक-पारिवारिक जरूरतों के वशीभूत होकर युवा पीढ़ी विदेशों की तरफ गमन कर रही है। सुरेश नायक अपनी एक अन्य कविता में चौकीदारों की यथा-व्यथा को केंद्र में लेकर आने का प्रयास करते हैं। वह 'नेपाली चौकीदार' के बहाने एक नए किस्म के उगते 'अर्थ-तन्त्र' पर प्रकाश डालते हैं। वह *रंग आ जाते हैं!* में लिखते हैं-

नेपाली चौकीदार की आहट/ गूँजती रही
देर तक आती रही/ भौंकने की आवाजें
चाँद अपना सफर/ खत्म करता रहा
करवट हर बार/ और बोझिल होती गई
वक्त बाकी था/ अभी सुबह होने में। (नायक 47)

'अर्थ' के अभाव में प्रवास ही एकमात्र विकल्प बचता है। प्रवास उत्तर आधुनिक परिवेश के अर्थ-तन्त्र का एक कड़वा यथार्थ है। जब अपने देश में पर्याप्त रोजगार नहीं मिलते तो आदमी दूसरे देश की तरफ ध्यान लगाता है। यह इक्कीसवीं सदी का ऐसा यथार्थ है जिस पर पंजाब के लगभग सभी कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि घर का घर सूनसान हो गया है। जवान बेटा तमाम विसंगतियों और परेशानियों को सुनकर प्रवास कर जाता है जिसका खामियाजा बुज़ुर्ग माँ-बाप को भुगतना पड़ता है। यह एक असहनीय पीड़ा होती है जिससे बचने के लिए अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों से अपनी परेशानियाँ नहीं कहते हैं। किसी न किसी रूप में छुपा ले जाते हैं। कुछ ऐसा ही भाव शुभदर्शन की कविताओं में देखने को मिलता है जब वह *संघर्ष बस संघर्ष* में कहते हैं-

उदास न हो मेरे बच्चे/ अपने दर्द की दास्तां सुना
तुम पर कोई बोझ नहीं डालूँगा/ नहीं बताऊंगा...
पेट की भूख मिटाने को/ कितने हंटर खाए
यह भी नहीं कि जिद का मतलब/ माँ समेंत
कई दिन तक महरूम रहता/ रोशनी की किरण से। (शुभदर्शन 37)

निश्चित रूप से तमाम विसंगतियों को सह लेना ज्यादा उपयुक्त है बनिस्बत कि बेटा विदेशों की शरण ले। इधर के पंजाब का यथार्थ फिलहाल यही बना हुआ है जहाँ मुसीबतों से तंग आकर विदेशों की तरफ रुख किया जाता है। हालाँकि बाद में यही सांस्कृतिक विघटन का कारण भी बनता है लेकिन पहले रोजी-रोटी और रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए उसके बाद ही सभी स्थितियाँ कंट्रोल में ली जा सकती है।

देश से लेकर विदेश तक अर्थ-तन्त्र में व्यापक बदलाव प्रदर्शित हो रहे हैं। प्रवास का नया चेहरा लोकल को वोकल बनाकर प्रस्तुत कर रहा है। वैश्वीकरण के

दौर में लोक का गमन हो रहा है और पश्चिमी सभ्यता से लेकर व्यवहार तक को अपनाया जा रहा है। विघटन कभी परिवारों में होता था आज तो पीढ़ियाँ ही संकट में हैं। पंजाब के कवियों को इसकी चिंता है। वे चाहते हैं कि रोजगार के विभिन्न परिदृश्य स्वयं में संतुलन बनाकर रखें लेकिन फिलहाल ऐसा हो नहीं रहा है। इन सभी के पीछे जो विशेष कारण है वह है- अर्थ लोलुपता का बढ़ता दायरा। इस दायरे ने इक्कीसवीं सदी के लिए बड़ी चुनौती प्रस्तुत की है।

4.3 कार्पोरेट जगत का परिदृश्य

कार्पोरेट जगत मनुष्य को सुविधाएँ तो दे रहा है लेकिन उसे और उसके जीवन को मशीन की तरह प्रयोग में लाने का कार्य भी कर रहा है। बड़ी-बड़ी कंपनियों का खुलना, उद्योगजगत में लगातार बढ़ोतरी होना अचरज नहीं है, यह सब तो आधुनिकता के आगमन से ही सुनिश्चित हो गया था। यदि यह कहें कि आधुनिकता की नींव ही इन सबसे निर्मित हुई तो गलत नहीं है। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते जो मनुष्य अपनी जरूरतों को पूरा करने मात्र के लिए इन कंपनियों का रुख करता था, वह स्थाई रूप से इन्हीं का होकर रह गया। कंपनियों के नीति-नियम लगभग एक-से रहे लेकिन कार्य-प्रणाली में अपेक्षाकृत बदलाव लाने की अपेक्षा उसमें और अधिक जड़ता बढ़ती जा रही है।

मनुष्य स्वभाव से सामाजिक है और उसके जीवन का आधार एक-दूसरे के साथ रहन-सहन पर निर्मित है। आर्थिक जरूरतों और जीवन-यापन की विसंगतियों के चलते भले ही वह एकात्मक जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो रहा हो और शहरों की तरफ पलायन करने के लिए विवश हो लेकिन सही अर्थों में उसकी मानसिकता ऐसी कभी न रही कि वह मात्र अपने व्यक्तिगत हित के लिए ही सोचे। इधर के आर्थिक

परिवर्तनों के दौर में ऐसा नहीं है। मनुष्य एकांगी हुआ है व्यवहार में भी और एक हद तक संस्कार में भी। यह उसकी जरूरत भी है और वेबसी भी। छोटे-छोटे मिलों और फैक्ट्रियों की तरफ कभी फुर्सत में देखेंगे तो उनका यथार्थ सोचने और विचारने के लिए विवश करता दिखेगा। मोहन सपरा अपनी कविता में मनुष्य के उस रूप का चित्र खींचते हैं जो मनुष्यों के बीच रहते हुए भी मनुष्य न रह पाने की वेबसी से पीड़ित है। इन सभी का कारण वही आर्थिक समस्या है जिसके दायरे में आने के बाद मनुष्य अपना सुख-चैन खो बैठता है। *समय की पाठशाला में* कवि मोहन सपरा कहते हैं-

इस देश में/ आदमी,
हर रोज़ शीशे पर थूक कर/ दफ्तर को कूच करता है
और अब यह/ उसकी आदत में शुमार हो गया है
आदमियों के बीच/ रह कर भी
आदमी अजनबी हो गया है।(सपरा 26)

मनुष्य का व्यवहार अजनबीयत-सा कभी नहीं रहा लेकिन वर्तमान आर्थिक हालातों ने उसे ऐसा करने के लिए विवश किया है। फैक्ट्रियों और कंपनियों की बनावट और बुनावट भी इस देश में इस तरह से की गयी है कि आर्थिक समस्यापूर्ति के लिए छटपटाते परिवार में 'रुपया' स्थाई भाव है बाकी सभी जरूरतें गौण हैं। आदमी के बीच रहते हुए आदमी का अजनबी होना कार्पोरेट जगत का एक षड्यंत्र तो है ही खेल भी है। इस खेल में मनुष्य बस पिस रहा है । संवेदना के स्तर पर भी और व्यक्तिगत तथा पारिवारिक स्तर पर भी। ग्रामीण जीवन से निकले हुए व्यक्ति के लिए शहर इस अर्थ में महज 'कहर है/ ज़हर है' जिसे वह झेल रहा है या फिर उसके दायरे में आकर खत्म हो रहा है। *रक्तबीज आदमी है* संग्रह में मोहन सपरा अपनी एक कविता में कहते हैं-

पाबंदियों के शहर में

कहर है/ ज़हर है। (सपरा 25)

सीमा जैन 'मकबरा' कविता में कहर और ज़हर की प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए स्त्री का चित्रण किया है जो सुबह से लेकर शाम तक महज ऑफिस में फँसकर रह जाती है। उसके संघर्ष का दृश्य देखकर कामकाजी स्त्रियों के साथ-साथ ऑफिस वर्क करने वाली स्त्रियों का भी दृश्य सामने आ जाता है। एक तरह से स्त्रियों का जीवन कार्पोरेट जगत में और भी अधिक संघर्ष से भरा हुआ है जहाँ वह दोहरी ज़िन्दगी जीने के लिए अभिशप्त हैं। यथार्थतः ये दृश्य देखने में भले कुछ हद तक यथार्थ हैं लेकिन जो भोगते हैं उनके लिए किसी यंत्रणा से कम नहीं है। यानि आज का यह दौर कार्यालयों आदि में काम करने वालों के लिए एक तरह की यंत्रणा देने वाला दौर है। *मोम के पंख* में सीमा जैन ने इस यथार्थ का चित्रण इस प्रकार किया है-

सुबह सवेरे, तड़के उठकर/ सब काम निपटाती है।

दिन भर ऑफिस के/ चक्रव्यूह में उलझ जाती है।

साँझ होते, घर आकर/ फिर गृहस्थी में डूब जाती है।

'दोहरी' ज़िंदगी जीती है/ इसी में 'खुशी' पाती है। (जैन 50)

इधर के बदलते परिवेश में कार्पोरेट जगत में प्रतियोगिता बेशुमार है। इन प्रतियोगिताओं में बनकर रहने के लिए उसके अनुरूप कार्य करने की योजना बनानी पड़ती है। इस हेतु युवाओं की एक नई दुनिया बनती जा रही है। वह नित नए आविष्कार तो कर रहे हैं लेकिन उन्हें जो परम्परा के रूप में पहले से प्राप्त है वे भूलते जा रहे हैं। यह कार्पोरेट जगत की बड़ी सच्चाई है कि व्यक्ति योग्य तो बन रहा हैं या योग्यता तो पैदा कर रहा है लेकिन 'संस्कार' और व्यवहार ये दोनों चीजें उससे दूर होती जा रही हैं। वर्तमान समय में बच्चों में इस तरह की विकसित हो रही

मानसिकता को देखते हुए तो कवि अवाक रह जाता है। जिसे शुभदर्शन की *संघर्ष बस संघर्ष* में संकलित इन काव्य-पंक्तियों को देखा जाता हैं-

> आज कम्प्यूटर युग में/ बनाते हैं...बच्चे
>
> नए-नए सॉफ्टवेयर/ संस्कार कौन-सा सॉफ्टवेयर है
>
> ...पूछते हैं वे/ तो कैसे, क्या जवाब दूँ? (शुभदर्शन 55)

वर्तमान परिवेश में "नए-नए सोफ्टवेयर" इस तरह से दिल और दिमाग में जगह बना लिए हैं कि छोटे-छोटे बच्चों की मानसिकता में एक किस्म की अनभिज्ञता भरती जा रही है। उनके मस्तिष्क से पारिवारिक एवं सामाजिक संस्कार गायब हो गए हैं या गायब होते जा रहे हैं। यहाँ बच तो व्यवहार भी नहीं रहा फिर भी संस्कार को बचाए रखने की कवायद की जा रही है तो इसका मतलब है कि कवि अपने समय की त्रासदी से कहीं गहरे में जुड़ा हुआ है और उसे समाप्त करने के लिए पूरी कोशिश में है।

कार्पोरेट जगत के विभिन्न रूप व्यक्ति को हतप्रभ कर रहे हैं। आज का मध्यवर्गीय परिवार जिस तरह से पीवीआर और मॉल कल्चर में रूचि लेने लगा है उससे एक नई तरह की समस्या खड़ी होने लगी है। यह समस्या है- घर के उजड़ने और भावी पीढ़ी के संकटग्रस्त होने की। यह युवा पीढ़ी इतनी संकटग्रस्त है कि न तो अपना भाव बचा पा रही है और न ही अपनी भाषा। *नयी सदी का पंचतंत्र* में उदय प्रकाश लिखते हैं-

> हम आज अपने शहर में हर रोज खुलने वाले एक से बढ़कर एक शानदार शॉपिंग मॉल और पीवीआर में जिस वर्ग को खाते-पीते और खरीदारी करते देखते हैं, जो एक जैसी अंग्रेजी बोलता है, जिसे न तो

इंग्लैण्ड ने पैदा किया है, न अमेरिका ने बल्कि जिसे अभी दस साल पहले हमारे टी.वी. चैनलों की फर्राटा वीजे ने रचा है, जिसका व्याकरण अभी तक कहीं लिखा नहीं गया है लेकिन इसके बावजूद सारे विज्ञापनों, टी.वी. चैनलों और कॉल सेंटरों में जो गिन्लिश बेतहाशा छा गयी है और यही वह बाज़ारू अंग्रेजी है जिसे ताइवान, कोरिया, दुबई, हंगरी और अफ्रीकी देशों नया उपभोक्ता वर्ग समझता है। (प्रकाश 163-164)

हर देश और बाज़ार का यथार्थ यही है कि भाषाई संस्कृति अपनी तरह के खतरे से जूझ रही है। मॉल कल्चर मनुष्य को एक नई दुनिया में लाया है जहाँ से वापसी बहुत हद तक संभव नहीं है। यहाँ सब कुछ अब बिकने के कगार पर आ गया है। कार्पोरेट जगत यही चाहता रहा है और यही निकल कर आ भी रहा है। नवजात से लेकर बुज़ुर्ग, वेदना से लेकर संवेदना तक आज के परिदृश्य में सब बिक रहे हैं जिसका चित्रण शुभदर्शन ने बड़ी गंभीरता से एक गौरैया को प्रतीक बनाकर किया है। *संघर्ष बस संघर्ष* में वह लिखते हैं-

बिकते हैं सपने यहाँ/ बिक जाते हैं खरीदार भी

चारों तरफ नज़र उठा/ परख-सी करती हूँ मैं

पूँजीपति हो गयी है/ गौरैया

जंगल से शहर आ गई है/ गौरैया
पुराना सब भूलने को/ बेताब है...गौरैया
संस्कार भी अहंकार भी/ वादे भी दावे भी
सब में उलझ कर रह गई है/ ...गौरैया (शुभदर्शन 67)

शहर, गौरैया और मनुष्य। गाँव, जीवन और समाज। समय, संस्कृति और परिवेश सब कुछ भयंकर त्रासदी से जूझ रहा है। मनुष्य संवेदना के स्थान पर मशीन बनता जा रहा है जहाँ अधिक से अधिक प्रोडक्टिव होना उसकी नियति ही नहीं वेबसी और मजबूरी भी है। पंजाब के हिंदी कवियों ने ऐसे यथार्थ को बड़ी गंभीरता से उकेरा है। कॉर्पोरेट जगत ने मनुष्य को भरे-पूरे परिवार में अकेला किया है। यह भी एक बड़ी विसंगति है कि मनुष्य न तो घर का हो पा रहा है और न ही परिवार का। यदि परिवार के होते हुए भी व्यक्ति एकाकी जीवन जीने के लिए अभिशप्त है तो कहीं न कहीं वह आर्थिक विसंगतियों से परेशान और विवश है।

4.4 आर्थिक उन्नति : विकास या विनाश का परिदृश्य

इक्कीसवीं सदी का भारत पूर्णतः विकास के मार्ग पर प्रशस्त राष्ट्र है। आर्थिक उन्नति हो रही है और देश में धन की आवजाई बड़ी मात्रा में दिखाई दे रही है। बड़ी-बड़ी इमारतें बनती हुई नज़र आ रही हैं, अच्छे-अच्छे और आधुनिक मॉल के साथ-साथ बड़े-बड़े राष्ट्रीय राजमार्ग भी बन रहे हैं। परंतु इन सब के पीछे भारत का वह समाज भी खड़ा है जो राष्ट्रीय उन्नति में कहीं भी ना तो सहायक है और ना ही इस उन्नति में उसका कोई हिस्सा दिखाई दे रहा है। भारत की पचास वर्ष पुरानी गरीबी के स्तंभ आज भी ऐसे ही खड़े हुए हैं। ऐसी स्थितियाँ पंजाब के कवियों के लिए लगभग असहनीय हैं। ऐसे तमाम वर्गों और जीवन विशेष का चित्रण पंजाब के वर्तमान हिंदी कवियों ने अपनी कविता में किया है जिन्हें पढ़ते हुए असहज महसूस होता है।

संयुक्त राष्ट्र की एक वर्तमान रिपोर्ट के अनुसार भारत में आधी जनता अर्थात् 60 करोड़ लोगों को केवल एक समय का ही भोजन मिलता है। पिछले कुछ वर्षों में

उड़ीसा और तेलंगाना में भूख और गरीबी से तंग आ कर पूरे के पूरे परिवारों की आत्महत्या के समाचार से पूरा देश कुछ समय के लिए स्तब्ध अवश्य हुआ था। पर उसके बाद भी देश की 'आर्थिक उन्नति' की गाड़ी उसी रफ़्तार से जारी रही है। पर प्रश्न यह है कि इस आर्थिक उन्नति में देश की 85% जनता कितनी भागीदार है? कवि मोहन सपरा इस जनता की पहचान करते हुए प्रश्न भी करते हैं और *समय की पाठशाला में* संग्रह में उसकी यथास्थिति को अभिव्यक्त करने का प्रयास भी करते हैं।

> अरे, क्या तुम वही हो
>
> जो अपना आकाश माँगने की मुद्रा में चीखा था?
>
> तुम्हारे तो दायें-बायें-आगे-पीछे
>
> रेत के अनगिनत पहाड़ खड़े हैं
>
> इनमें सुरंग बनाने के बात सोचते हो
>
> मुझे नहीं लगता/ कि तुम
>
> अपने सपनों के हाथ-पाँव
>
> लहू-लुहान होने से बचा पाओगे?" (सपरा 39)

देश के आर्थिक वृद्धि के स्तंभ माने जाने वाले माल्स में देश की 85% जनता जा कर खरीदारी का साहस भी नहीं जुटा सकती। यह जान कर भी अचंभा अवश्य होना चाहिए कि देश की 80% से अधिक जनता ने रेलवे के एयर कन्डीशंड (वातानुकूलित) यात्री डिब्बों को आज तक अंदर से देखा भी नहीं है, इन वातानुकूलित डिब्बों से यात्रा करना तो बहुत दूर की बात है। हवाई जहाज़ को दूर से

देख कर एयरपोर्ट तक आने का सपना लेने वाले भारतीयों की संख्या करोड़ों में हैं और करोड़ों तो इतने दुर्भाग्यपूर्ण हैं कि वह एयरपोर्ट तक आने का साहस भी नहीं कर सकते। क्या यही है भारतीय आर्थिक उन्नति का शानदार मॉडल? यह तो वे मोटे आँकड़े हैं जो एक आम भारतीय अपनी उंगलियों पर गिन सकता है। इसके अतिरिक्त गरीबी के महा स्तंभों की निशान देही के लिए हर शहर में बिखरे झोपड़ पॅट्टो की निशानदेही काफी है। ये उन लोगों में से हैं जो किश्तों में किसी तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किश्तों में बटे जीवन को अभिव्यक्त करते हुए कवि अमरजीत कौंके ने यथार्थ परिदृश्य का चित्रांकन किया है। *अंतहीन दौड़* में वह लिखते हैं-

> उदास होता हूँ बहुत/जब अपने
>
> बेबस पंखों की तरफ देखता हूँ
>
> अपने पाँवों में पड़ी बेड़ियाँ
>
> किश्तों में बटा हुआ/ अपना जीवन देखूँ
>
> उस दौड़ की रफ़्तार देखूँ/ जिस में मैं महज
>
> एक रेस का घोड़ा बनकर/ रह गया हूँ। (कौंके 31-32)

ऐसे परिदृश्य को देखते हुए आर्थिक उन्नति का ढोंग किन मूल्यों पर हो रहा है वह भी अत्यंत दुखद है। राजनेताओं और पूँजीपतियों की जोड़ी ने मिल कर राष्ट्र के सम्मान और राष्ट्रीय चिन्हों के मूल्यों पर छद्म विकास की नींव रखी है। राष्ट्रीय अस्मिता अर्थात् हमारी कृषि व्यवस्था को चोपट करके औद्योगिकीकरण किया गया। 5% से भी कम उद्योगपतियों के विकास के लिए देश के 70% ग्रामीण कृषकों का विनाश किया गया। आर्थिक उन्नति को इस तरह वितरित किया गया कि विकास की सारी ब्यार देश के महानगरों के पॉश इलाकों तक सीमित कर दी गई।

देश के कर्णधरों अर्थात् 70% कृषकों को मजबूर किया गया कि वे अपने खेत खलिहानों को बेच कर विकास की धारा में आने के लिए शहरों की ओर पलायन करें। जिसने देश के समग्र और सुव्यवस्थित विकास को अव्यवस्थित कर दिया। कृषि भूमि का विनाश हुआ, नगरों के आसपास कच्ची और अव्यवस्थित गंदी बस्तियों की बाढ़ आ गई। क्या यही वह विकास है जो देश को अग्रणीय राष्ट्रों के साथ ले जा कर खड़ा करेगा? भ्रष्ट राजनेताओं ने अव्यवस्था के द्वारा देश की 80% जनता को सूली चढ़ा दिया। देश के तथाकथित विकास 5% विलासी और 15% मध्यम वर्ग के लिए ही है और 80% जनता आज भी सुबह उठ कर रात तक दो वक्त की रोटी जुटाने की जुगत में ही रह जाती हैं। मोहन सपरा सरीखे कवि किसानों से ही नहीं आम आदमी के दायरे में जीने वाले सभी से आह्वान करते हुए दिखाई देते हैं। भूख के विरुद्ध एक होने और आवाज़ उठाने की अपील करते दिखाई देते हैं। *रक्तबीज आदमी है* संग्रह में मोहन सपरा लिखते हैं-

अच्छा, नहीं तो/ कब तक

पत्थर बने रहोगे/ अपनी जुबान

खुद काटते रहोगे/ अच्छा, नहीं तो

भूख से लड़ो/ कुछ तो करो

आसमान तक सीढ़ी बना लो। (सपरा 36)

भूख, गरीबी और असमानता के खिलाफ जब तक देश का अधिकांश खड़ा नहीं होगा, अपने अधिकारों की माँग नहीं करेगा तब तक आर्थिक समृद्धि का स्वप्न देखना एक दिवास्वप्न ही होगा। मोहन सपरा की यह कविता भूख के प्रतिरोध में एक आवाज

है एक तरह से सामानांतर दुनिया की संरचना करना चाहती है। आर्थिक विकास के राह में समानता का स्वप्न संजोती है। *धरती यह* में संकलित कविता 'याचक क्यों' में इसी सामर्थ्य का परिचय शशि प्रभा भी देती हैं। स्त्रियों के हवाले से वह उद्यम करना उचित समझती हैं लेकिन माँगने की प्रवृत्ति से इनकार करती हैं। वह ही नहीं अपितु अधिकांश स्त्रियाँ यहाँ यह मानकर चलती हैं। *धरती यह* में शशि प्रभा लिखती हैं-

> मुझे/ जाने क्यों
>
> कभी नहीं भाया/ हाथ फैलाना
>
> याचक बन जाना/ मोहब्बत के लिए
>
> या फिर/ भोजन के लिए
>
> जानती हूँ मैं/ अगर 'मैं' हूँ
>
> जो भी मेरा 'प्राप्य'/ मिलेगा मुझे
>
> नियति है मेरी। (प्रभा 7)

देश की सार्थक उन्नति में सभी का योगदान अपेक्षित होता है और प्रतिबद्धता भी। विकास को स्थाई बनाकर रखना ऐसे सामर्थ्य से ही संभव है। यहाँ स्वप्न से कहीं अधिक दृढ़ता और आत्मविश्वास कार्य करता है, यह पंजाब के हिंदी कवियों को गहराई में पता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक उन्नति किसी भी रूप में अभिशाप न बने इसके लिए समन्वयशील और जुझारू प्रवृत्ति का उभर कर आना आवश्यक हो जाता है। यह बड़ी बात है कि पंजाब का हिंदी कवि महज समस्याओं का रोना नहीं रो रहा है अपितु यथार्थ का सामना करते हुए उसके परिप्रेक्ष्य में विकल्प

भी दे रहा है। उन्नति के मार्ग के लिए यदि किसी प्रदेश का साहित्य इस तरह सक्रिय और समर्पित रहता है तो यह किसी भी रूप में सामान्य बात नहीं है। हालाँकि यह बाज़ार का दौर चल रहा है लेकिन परम्परा और संस्कृति के प्रति उचित व्यवहार और समर्पण यहाँ के लोक को डूबने से जरूर बचाएगा।

पंचम अध्याय- धर्म और संस्कृति

5.1 धर्म का अर्थ एवं स्वरूप

5.2 धार्मिक विश्वास एवं सांप्रदायिक समन्वय का यथार्थ

5.3 संस्कृति का अर्थ एवं स्वरूप

5.4 ग्रामीण एवं शहरीकरण का यथार्थ

5.5 रीति-रिवाज एवं परम्पाराओं का यथार्थ

5.6 बाज़ार एवं विज्ञापनी संस्कृति का यथार्थ

हर देश में कुछ नागरिक होते हैं। उसका अपना भू-क्षेत्र होता है। जीवन और जन होता है। युवा होते हैं, बच्चे होते हैं। एक पूरा समाज होता है। प्रत्येक समाज का अपना धर्म और संस्कृति होती है। सभी उस धर्म और संस्कृति को अपना कर चलते हैं। उसका अनुसरण करते हुए व्यक्तिगत आचरण तो करते ही हैं अन्य को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह ऐसी व्यवस्था होती है जिसमें चीजें एक से दूसरे में हस्तांतरित होती रहती हैं। एक कवि का जो प्रदेय होता है वह ये कि धर्म और संस्कृति के वास्तविक और व्यावहारिक परिदृश्य से समाज को अवगत कराए और उसका ध्यान समन्वयशील प्रवृत्ति के विकास की तरफ आकर्षित कर सके। यह सब विचारणीय है। प्रकृति से साक्षात इन सभी स्थितियों का कोई लेना-देना नहीं है। मनुष्य-स्वभाव के अनुसार चलता है। *रक्तबीज आदमी है* संग्रह में कवि मोहन सपरा कहते हैं-

देश, देश में

आदमी हैं, स्त्रियाँ हैं, बच्चे हैं

भाषा है, कला है, विज्ञान है, धर्म है

यानि बहुत कुछ है

पर, कुछ भी यकसार नहीं है

जो प्रकृति का नहीं

विचार का अंग है।

देश, देश में। (सपरा 55)

विचार का अंग होने की वजह से इन पर विचार-विमर्श किया जा सकता है। मनुष्य के मस्तिष्क में इस प्रकार के स्वाभाविक प्रश्न पैदा होते थे कि प्राकृतिक घटनाओं का संचालन कौन करता है? पानी क्यों गिरता हैं? बिजली क्यों कौंधती है? आदि इसी प्रकार के अनेक प्रश्न उसके मस्तिष्क में पैदा होते थे। इसके साथ ही वह ऐसे प्रयास भी करता था जिनसे प्राकृतिक शक्तियों से अपनी रक्षा कर सके। इस सबका परिणाम यह हुआ कि वह परिस्थितियों के मध्य अपने को असहाय मानने लगा। ज्ञान के अभाव में वह इस प्रकार की धारणाएँ विकसित करने लगा कि इन घटनाओं का संचालन एक ऐसी शक्ति के माध्यम से होता है, जो मनुष्य से परे है। शक्ति का रूप स्वीकार करने के बाद मनुष्य ने उस शक्ति में पूजा, आराधना, जैसे कार्यों को विकसित किया और इस प्रकार धर्म नामक संस्था का जन्म हुआ। आगे जानेंगे धर्म क्या है? धर्म किसे कहते है? धर्म का अर्थ, धर्म की परिभाषा और धर्म की विशेषताएँ। नीचे धर्म के स्वरूप और कार्य भी दिए गए है।

5.1 धर्म का अर्थ एवं स्वरूप

'धर्म' शब्द 'धृ' धातु में 'मन्' प्रत्यय लगाने से बना है, 'जो धारण करता है' वह धर्म है।...वेदान्त दर्शन में प्रेरणा को "धर्म का लक्षण" माना गया है। डॉ. चरण सखी शर्मा *तुलसी-काव्य में धर्म और आचरण का स्वरूप* में लिखती है-

> "यतोअभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" के अनुसार तत्त्वज्ञान के द्वारा श्रेष्ठ मुक्ति प्राप्त करना ही धर्म है। (शर्मा 24)

तात्विक दृष्टि से धर्म का मुख्य आधार सार्वभौम शाश्वत और सनातन कहा जा सकता है। जसपाल कौर के *संतकाव्य के धार्मिक दार्शनिक चेतना का आधुनिक सामाजिक सन्दर्भ* (अप्रकाशित शोध-प्रबंध) में दिए मतानुसार- "

> इस न्याय से जो मनुष्य के सहज स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए उसे आधार व्यापक, मानवीय, संवेदनशील, परोपकारी बनाए रखने में जो तत्व प्रेरणा बनता है, वह धर्म है। (कौर 63)

धर्म व्यक्ति के हृदय का परिष्कार करके उसे मानवीय सन्दर्भ में संवेदनशील बनाने का उपक्रम करता है। इस उपक्रम में मनुष्य स्वयं को सांस्कारिक प्रवृत्तियों मंद व्यस्त रखने का उद्यम करता है।

सांस्कारिक प्रवृत्तियों से तात्पर्य जीवन यापन करने के शास्त्र सम्मत जो तरीके हैं उन तरीकों को व्यावहारिकता के धरातल पर अपनाने और तन मन की अंतरावास्था के परिमार्जन से है। डॉ चरणसखी शर्मा की पुस्तक *तुलसी-काव्य में धर्म और आचरण का स्वरूप* में सम्मलित शिवदत्त ज्ञानी के मतानुसार-

> धर्म उन सिद्धांतों, तत्त्वों तथा जीवन प्रणाली को कह सकते हैं जिससे मानव जाति परमात्मा-प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपना ऐहिक जीवन सुखी बना सके, साथ ही मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा जन्म-मरण के झंझटों में न पड़कर शांति व सुख का अनुभव कर सके। (शर्मा 25-26)

इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि धर्म अनवरत सक्रिय रहते हुए जीवन के लिए किया जाने वाला सार्थक कर्म है। धर्म व्यक्ति के हृदय में वैचारिक सघनता के रास्ते से भी प्रवेश पाता है। धार्मिक वैचारिकता के रास्ते व्यक्ति तर्क माध्यम से किसी एक शक्ति के प्रभुत्त्व को प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न करता है। ये प्रयत्न उसे अन्य विषयों एवं विचारों को भी जानने और समझने लिए प्रेरित करते हैं। प्रेरणा के स्रोतों से जैसे-जैसे कोई व्यक्ति परिचित होता जाता है वैसे-वैसे वह सामाजिक जीवन के अनुभवों से संपन्न होता जाता है। अनुभव वह माध्यम है जिससे संपन्न होने के पश्चात्

व्यक्ति उसका विस्तार करता है। विस्तार करने के लिए नियमों आदि की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति धर्म के रास्ते ही संभव है।

यह स्पष्ट है कि मानवीय समाज में मुक्ति की प्रक्रिया का वर्तमान होना सहज नहीं होता। किसी भी व्यक्ति के लिए मुक्ति से तात्पर्य महज जीवन निर्वहन से न होकर अज्ञानता से मुक्ति का भी है। अज्ञानता से मुक्ति तभी संभव है जब एक जिजीविषा व्यक्ति की इच्छा-शक्ति में कार्य कर रही हो। सामाजिक संबंधों की सम्पूर्ण जानकारी भी इसी प्रक्रिया के अंतर्गत आती है। जब व्यक्ति को संबंधों की जानकारी होगी, वह उसी के अनुसार आचरण करेगा। जिन संबंधों की वैयक्तिक जानकारी व्यक्ति को नहीं रहती उसके लिए वह नियमों एवं आचार-पद्धतियों का सृजन करने का प्रयास करता है। सृजन-अवस्था में संवाद और चिंतन अपना कार्य करते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच से संवादों की निरंतरता किस प्रकार चिंतन प्रक्रिया को एक विशेष उद्देश्य की तरफ लेकर जाती है, यह भी धर्म का ही विषय है।

इस तरह जब आप जानने की भूमिका में होते हैं उस समय यथार्थतः आप एक समाज का मूल्यांकन करने की प्रक्रिया में होते हैं। मूल्यांकन प्रक्रिया से गुजरते हुए जब आप उचित-अनुचित का निर्धारण करने का प्रयत्न करते हैं तो कहीं न कहीं आप उसका अनुसरण कर रहे होते हैं और दूसरे से भी ऐसा करने की अपेक्षा रख रहे होते हैं। डॉ० सावित्री चन्द्र शोभा अपनी कृति *समाज और संस्कृति* में लिखती है-

> धर्म और समाज का पारस्परिक संबंध बड़ा ही विचित्र है। समाज व्यक्तियों का समुदाय है और इस समुदाय का सामंजस्य-विधान ही 'धर्म' है। समाज की इसी सामंजस्य विधायिनी चेतना ने अपने में से जिस उदात्तीकरण की प्रवृत्ति को मूर्तिमान किया वह नाना स्तरों को आभासित करती हुई धर्म के नाम से पुकारी जाने लगी। धर्म मूलतः

> व्यक्ति के उन्नयन की प्रक्रिया है और चूंकि व्यक्ति समाज का अविभाज्य अंग है, अतः धर्म अनिवार्यतः समाज का उन्नतीकरण बन जाता है। (शोभा 170)

धर्म के मार्ग से गुजरते हुए ही सामाजिक विकास की अवधारणा मजबूती पाती है। व्यक्ति जितना व्यक्तिगत जीवन से जुड़ाव महसूस करता है उतना ही सामाजिक जीवन से भी जुड़ता जाता है।

धर्म एक जीवन पद्धति है जो मानवीय समाज का मार्गदर्शन करता है। धर्म एक प्रकार से उन परम्पराओं, आचार-व्यवहारों और सामाजिक नियमों का एक ऐसा समुच्चय है जो लोगों को न केवल परस्पर जोड़ कर रखता है अपितु उन्हें विषम परिस्थितियों में मानसिक अवलम्ब एवं मार्गदर्शन भी प्रदान करता है। धर्म एक मनोवैज्ञानिक प्रणाली की तरह काम करता है जो अदृश्य रूप से उनका मार्गदर्शन करते हुए उन्हें परस्पर जोड़े रखती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि धर्म किसी-न-किसी प्रकार की अतिमानवीय (Super-human) या अलौकिक (Super-natural) या समाजोपरि (Supra-social) शक्ति पर विश्वास है जिसका आधार भय, श्रद्धा भक्ति और पवित्रता की धारणा है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना, पूजा या आराधना आदि के रूप में की जाती है।

5.2 धार्मिक विश्वास एवं सांप्रदायिक समन्वय का यथार्थ

पंजाब की इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में 'धर्म' एक विश्वास की तरह आता है। एक ऐसा विश्वास जिसमें सभी सात्विक भाव से बँधकर रहना चाहते हैं।

इसमें मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे के प्रति वह दीवानगी तो नहीं मिलती लेकिन ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकृति जरूर मिली है। यहाँ के कवि धर्म के प्रति इतने आत्मीय हैं कि घर को ही धर्म बना लेने की सीख देते हैं। यहाँ के कवि शुद्ध आचरण करने और जीवन-व्यवहार के प्रति सजग और सचेत रहने की सीख देते हैं। *शिकायत किए बिना* संग्रह में कवि सुरेश नायक एक जगह घर को मंदिर बनाने और व्यक्तिगत स्तर पर समाज में सक्रिय होने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं-

घर अपना हम मंदिर कर लें

आओ ईश्वर से यह वर लें

सुबह सुबह अमृत घट छलके

जब हम खोले निज पलकें

फिर हो इक दूजे के संग

शुभकामनाओं के ही प्रसंग

मुस्काते कर लें हम भोजन

चलें काम पर हो के मगन

मीठी सी हो वाणी और अपनी

और नहीं बस माला जपनी

संयम से आचरण निखारें

निज व्यवहार को सदा संवारें

अपना मंत्र बनाएँ बनाएँ

सही स्वतंत्र सोच बनाएँ

हँस कर सबको मिल जाएँ

तो मन सबके खिल जाएँ

शुभरात्रि हो सबके हित में

शांति का निवास हो चित्त में। (नायक 9)

यह एक ऐसी आदर्श स्थिति है जिसकी परिकल्पना कवि करता है। उसकी दृष्टि में जिस परिवेश में कोई घर ही मंदिर हो जाए तो धर्मगत विकृतियाँ जो फैल रही हैं या फैलाई जा रही हैं, स्वयंमेव समाप्त होती जाएँगी। धर्मगत विकृतियाँ विस्तार पाने में समय नहीं लगाती हैं लेकिन जब धर्म के आदर्श रूप का प्रचार-व्यवहार घर से शुरू होगा तो विकृति की जगह सुकृति का विस्तार होगा।

यथार्थ परिदृश्य इसके एकदम विपरीत है। वर्तमान दिनों में यह समस्या और अधिक तीव्र हुई है कि जो घर सदाचार और सुकृति को विस्तार देने का जरिया होने चाहिए थे वे बच्चों में गलत संस्कार भर रहे हैं। ईर्ष्या और द्वेष के भाव बढ़ाकर महज सांप्रदायिक तनाव दिया जा सकता है न कि सात्विक शांति की प्रवृत्ति का प्रसार। जिन बच्चों में बड़ों के प्रति सम्मान और अन्य धर्मों, जातियों, मतों, विश्वासों के प्रति प्रेमपूर्ण भाव भरने के की जरूरत होती है उनमें शंकाओं और प्रतिस्पर्धाओं को भरा जा रहा है, यह गलत और अविवेकपूर्ण कार्य है। कवि मोहन सपरा *समय की पाठशाला में* काव्य संग्रह में शहर की यथास्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं-

मेरे शहर में/ अब

बच्चों को/ एक दुकान पर जाने

और दूसरी पर/ न जाने की शिक्षा दी जाती है,

दो स्कूलों के बीच/ धर्म की आड़ पर अन्तर किया जाता है

बच्चों को/ गुलेल, पतंग और अन्य सभी खेल-साधन भूल रहे हैं

बेटी अनुजा को डर है/ कि उसकी गुड़िया पर

गोलियों की बौछार न हो जाए/ इसलिए/

वह उसे/ छिपा-छिपा कर रखती है

और लोरी सुनाकर/ सुला देती है

और फिर कई दिन तक जगाती तक नहीं। (सपरा 60)

धर्म की संकीर्ण शिक्षा जब बच्चों, युवाओं में पडती है तो परिवेश हर समय संकट की स्थिति में रहता है। धर्म के नशे में बारूद के गोले लेकर चलने वालों कोई और नहीं वही बच्चे और युवा होते हैं जिनके कान परिवेश और घर के बड़े भरते रहते हैं। इनमें बहुत से ऐसे होते हैं जिनकी रोजी-रोटी महज सांप्रदायिक लड़ाइयों और झगड़ों से चलती है। कितनों का व्यापार ही धार्मिक लड़ाइयाँ हैं जिनके होने के बाद उनकी समृद्धि बढ़ती है। एक शहर में दंगा होता है दूसरा अपने आप उसकी जद में आ जाता है। जो खुरापात करता है वह आनंद मनाता है, जश्न मनाता है और यह सब अंततः लूट-खसोट का जरिया बनता है। *समय की पाठशाला में* काव्य संग्रह में कवि मोहन सपरा कहते हैं-

यहाँ का धर्म

समय की पाठशाला में

मुर्गी का चिड़िया का कबूतर का

क्योंकि अब

नकोदर, सिरसा, दिल्ली, मेरठ और जबलपुर में

भभकती आग का रंग एक ही होता है,

लूट-खसूट का ज़रिया (सपरा 62)

शुभदर्शन जैसे कवि यहाँ सभ्य होने की स्थिति को बेनकाब होते देखते हैं और मनुष्य के अन्दर की पाशविकता को चिह्नित करते हुए उसे गलत सिद्ध करते हैं। वह *संघर्ष के ज़ख़्म* में कहते हैं-

यह गाय के या सूअर के

जांचने बैठते हैं आयोग

अय्यार की गिरफ्त से

बाहर नहीं वह भी

फाड़ता है धर्मग्रंथ के पन्ने

होता है तांडव/ उतर जाता है

सभ्य होने का मुखौटा। (शुभदर्शन 16)

धर्म के अन्दर होकर दिखावा करना अलग है और धार्मिक प्रवृत्ति और विश्वास में होकर रहना एकदम अलग। परिवेश में भड़काऊ और सांप्रदायिक राजनीति की जरूरत न होकर व्यावहारिक धर्म को मानने की आवश्यकता है। जब यह नहीं होता है तो प्रदेश, देश, जिला, गाँव का अंतर समाप्त हो जाता है और फिर दंगों का दौर

शुरू हो जाता है। शुभदर्शन इस स्थिति की भयावहता को समझते हैं और उसको *संघर्ष बस संघर्ष* में अभिव्यक्त करते हुए कहते भी हैं-

यूं महाराष्ट्र हो या कश्मीर/ पंजाब हो या बंगाल

तमिल हो या मंगोल/ सोमालिया हो या ईराक

कहीं भी मरने वालों के/ खून में फर्क नहीं होता

फर्क होता है/ उस नफरत सनी दीवार में

जो की जाती है खड़ी/ रंग-भेद-नस्ल, धर्मजाति

फिरके की सुरक्षा के नाम पर/ लड़ मरती है दुनिया

खत्म हो जाती हैं- संस्कृतियाँ (शुभदर्शन 43)

यथार्थतः कहा जा सकता है कि धर्म और साम्प्रदायिकता की लड़ाइयों ने बहुत-से घरों को तबाह किया है। बहुत-से घरों को उजाड़ा है। आज भी हर देश में शरणार्थी कैम्प देखे जा सकते हैं तो उसमें से अधिकांश धार्मिक एवं सांप्रदायिक तनाव से निर्मित होकर सामने आए हैं। पंजाब के कवि अनुसार यदि धर्म और संप्रदाय में सामंजस्य और सहभागिता बढ़ा दी जाए तो बहुत-सी तबाहियाँ और लड़ाइयाँ रोकी जा सकती हैं। निष्कर्षतः पंजाब के इक्कीसवीं सदी के कवियों ने धार्मिक विसंगतियों को रोकने और साम्प्रदायिकता के प्रभाव को कम करने में विशेष भूमिका निभाई हैं।

5.3 संस्कृति का अर्थ और स्वरूप :

मानव-विकास उसकी संस्कृति का परिणाम है। मनुष्य द्वारा उसकी सामाजिक परम्परा से सीखे हुए समस्त व्यवहारों को संक्षेप में संस्कृति कहा जाता है। मानव समाज में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है। यह विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्यों और प्रथाओं आदि गुणों का समुच्चय समझी जाती है। इस संदर्भ में संस्कृति को मनुष्य की भौतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यामिक साधनाओं की समष्टिगत अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । यह संस्कृति ही है जो मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन व नियंत्रण करती है । अत: मानव की जीवन पद्धति, वैचारिकी, दर्शन, और सामाजिक परम्पराएँ व रीति रिवाज उसकी संस्कृति की अभिव्यक्ति होते हैं ।

विद्वानों ने संस्कृति के दो पक्षों को स्वीकार किया है –'1. आदिभौतिक संस्कृति 2. भौतिक संस्कृति'।(https://m.bharatdiscovery.org/india) सामान्य शब्दों में आदिभौतिक संस्कृति को संस्कृति और भौतिक संस्कृति को सभ्यता कहा जाता है। संस्कृति के ये दोनों पक्ष परस्पर भिन्न होते हैं। इनमें संस्कृति की सत्ता अमूर्त जबकि सभ्यता की सत्ता मूर्त होती है। संस्कृति एक सतत तथा वैविध्य से परिपूर्ण परम्परा है। इसमें परम्परागत चिन्तन, कला, ज्ञान, विज्ञान व धार्मिक आस्था तथा विश्वास इत्यादि सम्मिलित होते हैं। सभ्यता स्थूल है, इसमें मनुष्य की भौतिक प्रगति में सहायक सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ शामिल रहती हैं। कुबेर नाथ राय अपनी कृति *मराल* में मानते हैं-

> संस्कृति की व्याख्या की दो पद्धतियाँ होती हैं : (1) मूल्यपरक और (2) ऐतिहासिक नृतात्त्विक। शंकर-रामानुज से लेकर आज तक भारतीय मनीषा की दृष्टि में 'मूल्य' ही महत्त्वपूर्ण रहा है ।.......इतना

> अवश्य है कि मूल्यों से निरपेक्ष रहकर केवल ऐतिहासिक नृतात्त्विक दृष्टि पर भरोसा करके चलना गहरे अन्धकार में भटकना मात्र है। (राय 159)

भारत में तमाम आधुनिक कसौटियों के प्रचलन में रहते भी संस्कृति को सदैव मूल्यों के आधार पर ही देखा एवं परखा गया है। भारत में संस्कृति के सन्दर्भ में यह प्रबल धारणा रही है कि 'संस्कृति हमारे सामाजिक जीवन प्रवाह की उद्गम स्थली है और सभ्यता इस प्रवाह में सहायक उपकरण। संस्कृति साध्य है और सभ्यता साधन। संस्कृति सभ्यता की उपयोगिता के मूल्यांकन के लिए प्रतिमान उपस्थित करती है।' संस्कृति मनुष्य को विरासत में प्राप्त अमूल्य निधि है। यह वह पारिस्थितकी तन्त्र है जिसमें रहकर प्रत्येक मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनकर भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध है ।

'संस्कृति' हिंदी का एक तत्सम शब्द है जो अपनी मूल भाषा संस्कृत में दो शब्दों से मिलकर बना है– सम+कृति जिसका मूल अर्थ है-

भली प्रकार से किया जाने वाला व्यवहार अथवा क्रिया जिसका संबंध परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने से है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिए 'कल्चर' शब्द का प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के 'कलचुरा' अथवा 'कोलियर' से निकला है जिनका अर्थ क्रमश: उत्पादन व परिष्कार है। 'संस्कृति' शब्द का संबंध संस्कार से भी माना जाता है जिसका अर्थ परिष्कार, शुद्धिकरण, नवनिर्माण और सुन्दरतम सृष्टि की प्रक्रिया से लिया जाता है।

ईश्वरी प्रसाद प्राचीन भारतीय संस्कृति कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन में लिखते हैं-

> अनेक भाषाओं में संस्कृति के लिए जो विभिन्न शब्द मिलते हैं उन सभी से संस्कृति का संबंध क्रिया, व्यवहार, उत्पादन, संस्कार तथा परिष्कार से जुड़ा मिलता है। (प्रसाद 13)

संस्कृति किसी राष्ट्र अथवा मानव समाज द्वारा परिष्कार की दिशा में प्रगति करते हुए आदिकाल से वर्तमान तक किये गये सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त उत्तराधिकार है। यह मानव समाज जीवन की विविध छटाओं का समुच्चय है। अत: संस्कृति मनुष्य के मन, वचन के कर्म के मूल में अवस्थित वह नाभकीय सत्ता है जो उसके समस्त कर्मों में परिलक्षित होती है ।

देशकाल, परिस्थितियों, मानसिक अवस्थाओं, मानवसमाज की तात्कालिक आवश्कताओं एवं प्राथमिकताओं के वैविध्य के कारण विश्व के भिन्न भू-भागों में भिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ है । अत: चिंतन के विभिन्न प्रतिमानों के प्रभावस्वरूप संस्कृति की आधुनिक परिभाषाओं में आंशिक अथवा स्पष्ट अंतर भी लक्षित किया जाता है। संस्कृति की विभिन्न परिभाषाएँ इसलिए भी संभव हुई हैं क्योंकि उन्नति, प्रगति एवं सृजनात्मकता का कोई एक रूप नहीं है। शिवशंकर श्रीवास्तव की कृति *भारतीय संस्कृति* में दिए गए रामधारी सिंह दिनकर मतानुसार-

> संस्कृति ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य के स्वभाव में उसी तरह व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक अथवा दो दिन में नहीं होता, युग-युगान्तर में होता है । (सिंह 2)

अत: सुदीर्घ इतिहास और अजस्र प्रवाह संस्कृति की अनन्य विशेषता सिद्ध होते हैं। शिवशंकर श्रीवास्तव की कृति *भारतीय संस्कृति* में दिए गए मैथ्यू आर्नोल्ड के मतानुसार-

> विश्व में जो कुछ उत्तमोत्तम कहा गया अथवा जाना गया है उससे स्वयं को भिज्ञ करना ही संस्कृति है। (श्रीवास्तव 2)

यहाँ आर्नोल्ड भी संस्कृति का अर्थ उसी दृष्टि से लेते हैं जैसा संस्कृत शब्दार्थ के आधार पर पहले वर्णित किया गया है।

विचार-प्रवाह में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'मनुष्य की विभिन्न साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति को संस्कृति मानते हैं।' (द्विवेदी 25) अत: संस्कृति मानव द्वारा शताब्दियों से निरंतर किये जा रहे विचार और कर्म के मंथन से निसृत पीयूष है। आज जो कुछ भी मनुष्य देख या अनुभव कर पा रहा है उसके उद्भव व विकास की जड़ें इतिहास में गहरे में धंसी हैं। भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में महादेवी वर्मा *संस्कृति के स्वर* में मानती है-

> भारतीय संस्कृति निश्चित पथ से काँट-छाँट कर निकाली हुई नहर नहीं यह तो अनेक स्त्रोतों को साथ लेकर अपना तट बनाती और पथ निश्चित करती हुई बहने वाली स्त्रोतस्विनी है। (वर्मा 21)

महादेवी वर्मा भी प्रकारांतर से हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार को ही आगे बढ़ाती हुई प्रतीत होती हैं ।

5.4 गाँव एवं शहरीकरण का यथार्थ

पंजाब की हिंदी कविता में ग्रामीण और शहरी संस्कृति को लेकर पर्याप्त विमर्श हुआ है। कवियों ने अपने-अपने तरीके से गाँव की यथास्थिति को लेकर विचार किया है। कोई गाँव के किसी जीवंत किरदार को याद कर रहा है तो कोई ग्रामीण संस्कृति को। सभी किरदार भोले और सहज हैं। गाँव को लेकर कवियों में सहजता विद्यमान

है। यह सहजता ग्रामीण-संस्कृति का ही प्रभाव है। अमरजीत कौंके जैसा कवि अपनी कविता में नायक की सर्जना करता है और कविता के माध्यम से तमाम भोले चरित्रों को बचा कर रखने के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है। अमरजीत कौंके काव्य संग्रह *अंतहीन दौड़* कहते हैं-

मैं अपनी कविता में

अपने गाँव का नायक 'मोदन' सृजता हूँ

'पीर रोड़ू' की समाधि/ 'बाबा' के घर में

बीस बरस पहले खाया रोट

'डाक्टर तेजा सिंह' की सुई

डेरे का महंत 'बाबा प्रताप सिंह'

जो पिछले बरस गुज़र गया

(जिस का डेरा भी अब गिरने वाला है)

गाँव की मोहतबर औरतें

जै कौर, चन्द कौर, बेबे भानी, माई बुद्धां

गाँव के गिर रहे दरवाजे की तरह

सब जो धीरे धीरे

वक़्त की आगोश में समा गए/ मैं इन सब को

अपनी कविता में सम्भाल लेना चाहता हूँ। (कौंके 107)

जिन चरित्रों को अमरजीत कौंके जैसा कवि अपनी कविताओं में बचाकर रखना चाहता है, शुभदर्शन जैसा कवि जब गाँव से शहर आता है तो ऐसे परिदृश्य या पात्रों को न पाकर विचलित हो उठता है। भारतीय संस्कृति का जो रूप गाँवों में दिखाई देता है वह शहरों में दिखाई नहीं देता। शहरों ने पश्चिमी संस्कृति के प्रभावस्वरूप भारतीय संस्कृति के उस रूप को तिलांजलि दे दी है। पंजाब का कवि इस यथार्थ को देख और महसूस कर रहा है। शहरों और गाँवों के बीच के इस अंतर को देखते हुए शुभदर्शन का कवि-हृदय यह मानने के लिए विवश होता है गाँव में जातिवाद होते हुए भी ग्रामीण परिवेश शहरों से कहीं अधिक ठीक और सुंदर है। वह इस अंतर को व्यक्त करते हुए *संघर्ष बस संघर्ष* में लिखते हैं-

यहाँ कहीं नहीं पनिहारन ताई

कुम्हारिन चाची, लोहार भाई

रलिया तेली, छिन्दा नाई

भी/ जातियाँ होते हुए

वहाँ अहसास था

सब कुछ सपाट था (शुभदर्शन 32)

कवि देखता है कि शहर का परिदृश्य एकदम बदला हुआ है। वर्तमान समय में रिश्तों में भी बड़े बदलाव दिखाई दिए हैं। ये बदलाव सहज और स्वाभाविक नहीं हैं। जबरन और बाज़ार की शर्त पर निर्मित हुए हैं। शहरों ने पश्चिमी संस्कृति के विकास पथ को चुना है लेकिन यह विकासपथ रिश्तों को गंभीर क्षति पहुँचा रहा है। *संघर्ष बस संघर्ष* में शुभदर्शन का कवि-हृदय इस बात को स्वीकार करते हुए कहता है-

यहाँ उलझाव है

आंटी और अंकल ने

खत्म कर दिए हैं वे सब रिश्ते

और/ पैसे के अहंकार ने अहसास (शुभदर्शन 33)

यहाँ शहरों में रिश्ते खत्म हो गए और अहसास अधूरे रह गये तो फिर रह क्या गया? पंजाब के कवियों द्वारा ये प्रश्न लगातार पूछे जा रहे हैं। कवियों द्वारा व्यापक स्तर पर हुए बदलाव को चिह्नित ही नहीं किया जा रहा है अपितु अभिव्यक्त भी किया जा रहा है। बड़े और भव्य महलों के अतिरिक्त सब कुछ खत्म और मृतप्राय हो रहा है और इसे ही आज बदलाव की ज़मीन का उर्वर होना कहा जा रहा है। सीमा जैन ने इस बदलाव को व्यापकता से चित्रित करने का प्रयास किया है। वह बदलाव को चिह्नित करते हुए बाज़ार और की यथास्थिति को भी केंद्र में लाती हैं। सीमा जैन अपने संग्रह *मोम के पंख* में लिखती हैं-

आज कितना कुछ बदल गया है-

नहीं हैं वह गुफाएँ, कंदराएँ,

हैं गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ,

हैं बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ, हैं भव्यवस्त्र,

पर भीतर है आत्मा कितनी त्रस्त,

शक, वहम, डर, ईर्ष्या, असुरक्षा से

मोबाइल फोन, कम्प्यूटर, सूचना क्राँति

हवाई जहाज़, जैट/ मिट रहीं हैं दूरियाँ

सिमट गए हैं फासले/ बढ़ गई हैं दूरियाँ

बढ़ गए हैं फासले/ चेहरों की ताज़गी

कॉस्मेटिक्स का करिश्मा/ नकली मुस्कानें, मुखौटे,

पीछे छिपे खतरनाक इरादे। (जैन 33)

ये इरादे ही हैं जो गाँव को मृतप्राय करके लगातार शहरीपन को बढ़ावा दे रहे हैं धीरे-धीरे ही सही पर बदलाव से अभिसिंचित दुनिया को हाशिए पर आना ही होगा।

पंजाब के हिंदी कवियों के लिए गाँव अभी भी हद से अधिक प्रिय है। गाँव यहाँ के कवियों के लिए आकर्षण का ही नहीं अपितु जीवन-शैली का भी कार्य करता है। गाँव में व्याप्त कुएँ-तालाब, ताल-तलैया आदि का जिक्र करते हुए कवि की स्मृति अतीत में चली जाती हैं। कवि को अतीत इस तरह बेचैन करता है कि वह अतीत-वर्तमान में आते-जाते रहना चाहता है। अपने काव्य संग्रह *अंतहीनदौड़* में गाँव में बने कुएँ का जिक्र करते हुए अमरजीत कौंके ग्रामीण परम्परा और संस्कृति तक का वर्णन कर जाते हैं। वह लिखते हैं-

कुआँ तब कुआँ नहीं था

एक दुनियाँ होती थी पूरी की पूरी

उसके पास बने चौबच्चे में

मैं पानी भर कर कूदता

मेरी माँ उसमें मिट्टी से सने

मेरे गन्दे कपड़े धोती थी

कुआँ तब कुआँ नहीं था

उसके इर्द गिर्द एक पूरा संसार था

पूरे का पूरा परिवार था

अब चौबच्चे में मिट्टी भर गई

जिसमें एक छोटा सा पीपल

उग आया है

कुएँ को किसी ने बन्द कर दिया है। (कौंके 59)

कवि अमरजीत कौंके कुएँ के बंद होने और उस पर पीपल के उग आने का जिक्र करते हैं। गाँव में कुएँ महज पानी भरने के काम न आकर पारिवारिक एवं ग्रामीण संवाद के आधार भी हुआ करते थे, इस बात का जिक्र करते हुए अमरजीत कौंके गर्व महसूस करते हैं। अब कुएँ बंद हो रहे हैं इसकी सबसे अधिक पीड़ा कवियों को है। वे नहीं चाहते कि किसी भी रूप में संवाद के माध्यम सीमित हों या बंद हों। अमरजीत कौंके जैसा कवि ग्रामीण संस्कृति और संवाद के प्रति दीवानगी-बेचैनी को खत्म होता देखकर हतप्रभ हैं। वह अपने बचपन को याद करता है और गाँव की औरतों का 'बैठक के लाल फर्श पर/ बैठ कर गर्व महसूस करती' स्त्रियों का चित्र खींचता है तो गाँव एक बार हृदय में जगमगा उठता है। इसे व्यक्त करते हुए कवि अमरजीत कौंके अपने काव्य संग्रह *अंतहीनदौड़* में लिखते हैं-

मैं छोटा-सा बालक होता था तब

गाँव की औरतें

इस बैठक के लाल फर्श पर

बैठकर गर्व महसूस करती

जिसके ठीक बीच में

एक बड़ा सफेद चक्र था

मेरी दादी इस बैठक के

दरवाजे के बीचों बीच

मशीन रखकर सिलाई करती

औरतें उसके पास

बहाने से आतीं। (कौंके 99-100)

औरतों का बहाने से आना और एक साथ बैठना यह महज गाँवों की ही संस्कृति हो सकती है। साथ बैठते हुए सभी एक-दूसरे से बात-व्यवहार शुरू करते हैं। सुख-दुःख सांझा करते हैं। एक-दूसरे का ख्याल रखते हैं। वर्तमान परिवेश में यह सब गायब होते जा रहा है। समूह का स्थान एकाकीपन लेता जा रहा है। मनुष्य का अकेला होना त्रासद घटना है। इसीलिए कवि अपनी कविताओं में गाँव को याद करता है और गाँव के परिवेश को पुनः प्राप्त करने के लिए फिक्रमंद रहता है।

इस तरह कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की पंजाब की हिंदी कविता में ग्रामीण और शहरी दोनों प्रकार की संस्कृति का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। यह कहने में भी कोई संकोच नहीं है कि शहरी संस्कृति से कहीं अधिक प्रेम कवि को ग्रामीण संस्कृति से है। पंजाब का कवि शहर से हताश और परेशान कवि है क्योंकि लोक-व्यवहार सहजतः रूप गाँवों में ही देखने को मिलते हैं। शहरों में अक्सर लोग

व्यस्त रहते हैं जबकि गाँवों में आज भी एक-दूसरे के साथ मिलना-जुलना संभव हो जाता है। हालांकि वर्तमान दिनों में ग्रामीण संस्कृति में भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है जिसका यथार्थ सहज नहीं कहा जा सकता है।

5.5 रीति-रिवाज एवं परम्पराओं का यथार्थ

इक्कीसवीं सदी का भारत संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। भारत मुख्यतः परम्पराओं का देश रहा है। यहाँ लोगों की सोच और मस्तिष्क में परम्पराएँ ही भरी रहती हैं। यहाँ के रीति-रिवाज, संस्कार-व्यवहार, मेल-मिलाप की संस्कृति जो कुछ भी है वह सब परम्पराओं से सम्बद्ध है। यदि आप यह चाहें कि परम्पराओं से अलग करके कोई चीज देखें तो यह असंभव है क्योंकि परम्परा यहाँ के लोक-जीवन की शैली बन चुकी है। किंतु आज पश्चिमी सभ्यता के आकर्षण ने परम्पराओं पर प्रश्न चिह्न छोड़ा है। बहुत से कवि प्रगतिशीलता की तरफ देखते हैं लेकिन वे जब यह पाते हैं कि युवा समुदाय अपनी जड़ों से कट रहा है तो उन्हें दुःख होता है। जड़ परम्पराओं का प्रतिरोध और शाश्वत तथा उर्वर परम्पराओं का संरक्षण भी इस देश की अन्यतम विशेषताओं में से एक माना जाता रहा है। परम्परा सामाजिक सहभागिता और रिश्तों की आत्मीयता से बढ़ती है और समृद्ध होती है। वर्तमान समय में सामाजिकता में गहरी कमी दिखाई दे रही है और रिश्तों को प्रगाढ़ बनाने के लिए किसी के पास समय भी नहीं है। सीमा जैन अपने काव्य संग्रह *मोम के पंख* में एक जगह कहती हैं-

> आज के युग में रिश्ते
>
> एक घर की आलमारी के
>
> उस बिखरे कोने की

याद दिलाते हैं

जिसे संवारने की

चाहत तो होती है

फुरसत नहीं होती। (जैन 83)

घर यदि किसी भी रूप में घर बना हुआ है तो उसके पीछे स्त्रियों का त्याग और समर्पण की परंपरा रही है। परम्पराओं के कैनवास से देखें तो बच्चों की सलामती का दुआ माँगना और ईश्वर को संरक्षक के रूप में देखना भारत की ही परम्परा रही है। यहाँ की परम्परा में आदमी से ज्यादा विश्वास पेड़-पौधों और आस्था-श्रद्धा पर किया जाता है जो अनवरत जारी है। शुभदर्शन जैसे कवि अपनी कविताओं में माँ की वह छवि दिखाते हैं जो वास्तविकतः परम्पराओं के अनुसरण से बनती है। एक माँ एक बच्चे की सलामती की दुआ किस तरह माँगती है और किस तरह उसके बेहतरी के लिए प्रकृति के अंग-संग पर विश्वास करती है, *संघर्ष के ज़ख़्म* के इस कवितांश में देख सकते हैं-

पीपल के गिर्द धागा बांध

लाखों दुआएँ माँगती थी माँ

दुआएँ मेरी उम्र की/ खुशहाली की

घर-परिवार में शांति की

विष्णु रूप है यह/ 'सदके जाईए' कह

बंद आंखों से/ कानों को छूते हुए

अपने किए / अनकिए

गुनाहों से तौबा करती।(शुभदर्शन 12)

माँ का एक रूप यह है कि वह संतान की बेहतरी चाहती है और उसके लिए दुआ माँग रही है लेकिन बदले में आज की पीढ़ी उसे क्या दे रही है। यह भी पंजाब का हिंदी कवि ठीक तरीके से अभिव्यक्त करता है। वर्तमान समय में समाज में जितनी भी गालियाँ प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश का यथार्थ माँ और स्त्री से जुड़ता है जबकि दोनों को भारतीय संस्कृति में पूज्य माना गया है। मोहन सपरा का कवि हृदय यह जानना और समझना चाहता है कि लोग माँ-पिता को गाली देकर भी माँ-पिता क्यों बनना चाहते हैं। वह *समय की पाठशाला में* संग्रह में लिखते हैं -

लोग माँ-बाप को गालियाँ देकर भी

न जाने क्यों माँ-बाप बनना चाहते हैं

ऐसे बेहिसाब, बेतरतीब और झगड़ालू विषय (सपरा 20)

ऐसी बातें और खबरें व्यक्ति को निराश करती हैं। एक तरफ जहाँ इस तरह के बच्चे हैं जो माता-पिता को गाली देते हैं वहीं दूसरी तरफ ऐसे भी बच्चे हैं जो माता-पिता के आदेशों का अक्षरशः पालन करते हैं और अनवरत संघर्षरत रहते हैं। माता-पिता की अवहेलना करना, उन्हें भूलना या छोड़ कर अलग बसना न तो यहाँ की संस्कृति रही है और न ही तो परम्परा। 'शिकायत किये बिना' कविता में 'कार्तिकेय' और 'गणेश' का उदाहरण देते हुए सुरेश नायक ने गणेश की समृद्धि और सम्पन्नता की बात की है तो उसके पीछे माता-पिता का होना ही बताया है। *रंग आ जाते हैं!* संग्रह में सुरेश नायक लिखते हैं-

माता-पिता के आदेश पर

कार्तिकेय तो चले गए
मयूर वाहन पर
पृथ्वी का चक्कर लगाने
अपने मूषक वाहन पर
सवार हुए बिना गणेश ने
कर ली परिक्रमा
शंकर-पार्वती के चारों ओर
और कहा
"माता-पिता ही हैं जगत
सन्तान के लिए/ इसलिए
उनकी ही परिक्रमा
कर रहा हूँ/ क्योंकि
माता-पिता ही/ जगत से सन्तान का
परिचय कराते हैं। (नायक 44)

भारत की घर को तोड़कर, परिवार को बिखेरकर खुश रहने की परम्परा नहीं है। यहाँ का माता-पिता, दादी और दादा के प्रति प्रेम पूरे लोक में विख्यात है, उसके विषय में कुछ कहना ठीक नहीं है लेकिन आज की पम्पराओं का यथार्थ यह है कि दादी के सामान से, जो उन्होंने बड़ी जतन से बनाकर रखा था, सबको मतलब है

लेकिन उनके यथार्थ से किसी को कुछ लेना देना नहीं है। अमरजीत कौंके अपनी एक कविता में इसी तरह की मानसिकता का जिक्र करते हैं जिसमें 'दादी का सन्दूक' कोने में पड़ा रहता है लेकिन उसमें रखा सामान सभी एक-एक करके उठाकर लेकर चले जाते हैं। वह अपने काव्य संग्रह *अंतहीन दौड़* में लिखते हैं-

दादी का संदूक

अभी भी कोने में उसी तरह पड़ा है

गाँव से सब जरूरी वस्तुएँ

कोई कुछ ले गया/ तो कोई कुछ

संदूक में पड़ी फुलकारियाँ

दादी की मयूर वाली दरियाँ

उसका ढक्कन वाला आईना

जिसमें मेरी दादी 'यशोधा'

यौवन में अपना मुख देखती थी

सब अपना अपना बाँट कर ले गये (कौंके 102)

फुलकारी पंजाब की एक विशेष कढ़ाई है जो सूटों और दुपट्टाओं पर की जाती है और पंजाब की औरतें घर पर ही मोर फूल पत्तियाँ डालकर सुंदर-सुंदर दरियाँ बनाती हैं जिन्हें वे घर पर आए मेहमानों के लिए संभाल कर रखती हैं। ऐसे अवसर पर स्त्रियों का एकत्रित होना जहाँ सुखकर होता है वहीं वाद-संवाद से एक-दूसरे के

प्रति आत्मीयता भी बढ़ती है। ऐसी आत्मीयता से परम्पराएँ पुष्ट होती हैं और सांस्कृतिक समृद्धि बढ़ती है।

आज के बदलते समीकरण और परिवेश में परिवार से किसी को कुछ लेना-देना नहीं है। रीतियों-रिवाजों के लिए किसी के पास कोई समय नहीं बचा है। अब गाँवों में चौपाल नहीं लगती है और न ही महिलाएँ एकत्रित नहीं होती हैं। सभी अपनी-अपनी समस्याओं और परिस्थितियों में कैद हैं। संयुक्त परिवार में जब से टूटन हुई है तब से एकल परिवार बचे हैं और वे भी ऑफिस की शोभा बढ़ा रहे हैं। सीमा जैन अपने काव्य संग्रह *धूप-छाँव* में ऐसे ही परिवार अथवा दंपत्ति का चित्र खींचती हैं जिनका मुख्य उद्देश्य ज़िन्दगी को एन्जॉय करना और धन कमाना है। उनका न तो परम्परा से कुछ लेना-देना है और न ही संस्कृति अथवा रीति-रिवाजों से। सीमा जैन अपने काव्य संग्रह *धूप-छाँव* में लिखती हैं-

> आज के जमाने में/ जीवन का महत्त्व तो है
>
> करियर बनाने में/ पति-पत्नी के मिलकर
>
> पैसा कमाने में/ सजने-सजाने में
>
> महफिलों, मैखाने में/ ज़िंदगी इन्जॉय करो
>
> किसी भी बहाने से। (जैन 16)

यथार्थतः स्थितियाँ यही हैं। अब तो मसला लिव-इन तक आकर ठहर गया है। इसके बावजूद पंजाब का कवि समाज में स्थायित्व और समृद्धि चाहता है। वह एक ऐसी संस्कृति बनाकर रखना चाहता है जहाँ समन्वय और सामंजस्य हो। न कि अलगाव और एक-दूसरे के बीच ईर्ष्या-द्वेष। पंजाब का परिवेश वैसे भी तमाम संकीर्णताओं को जगह नहीं देता है। *सन्धि रेखा पर खड़ी मैं* में शशि प्रभा अपनी

कविताओं के माध्यम से एक ख़्वाब देखती हैं और उस ख़्वाब के साकार होने की परिकल्पना कुछ इस तरह करती हैं-

ख़्वाबों में मेरे

स्नेह, सौहार्द, भाईचारा

स्वर्ग-बनते-/ घर, गाँव, शहर

सोना उगलते खेत/ भरपूर खलिहान

सबके सिर पर छत/ पेट में रोटी

बदन पर कपड़ा/ हर घर पानी

बिजली हर घर/ सारी वसुधा

एक कुटुम्ब/ न कोई दुश्मन (प्रभा 62)

इस तरह पंजाब के इक्कीसवीं सदी के हिंदी कवि शाश्वत भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की वापसी का स्वप्न देखते हैं। वे एक ओर विसंगतियों को अभिव्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर शाश्वत भारतीय संस्कृति को प्रकाश में भी लेकर आना चाहते हैं।

5.6 बाज़ार एवं विज्ञापनी संस्कृति का यथार्थ

भारत में विज्ञापन का इतिहास लगभग 200 वर्ष पुराना है। इसकी लोकप्रियता भारतीय समाचार पत्रों के प्रसार से जुड़ी है। 29 जनवरी 1780 में जेम्स अगस्त हिक्की ने पहले भारतीय समाचार पत्र की शुरूआत की थी जिसे बंगाल गजट के नाम से जाना जाता है। इसके पहले अंक में ही विज्ञापन प्रकाशित हुए थे। यह

अलग बात है कि वह सूचनात्मक थे। 1950 आते आते अख़बारों की आय का मुख्य स्त्रोत विज्ञापन बन गये। 60वें दशक से तो उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापन अख़बारों में छा गये। और फिर 70 के दशक से रेडियो व टी.वी. पर भी विज्ञापन आने लगे। विज्ञापन ने विस्तार पाया है जिसे लक्ष्य करते हुए काव्य संग्रह *धूप-छाँव* में सीमा जैन एक जगह कहती हैं-

दूध, दूध, दूध, दूध से

रोज़ खाओ अंडे तक

बादाम से मसालों तक,

स्कूल से 'कॉलेज' तक

धर्म से 'नालेज' तक

राजनीति से इन्सानों तक

औरत के जिस्म से

बच्चों की भोली मुस्कानों तक

पिता का प्यार/ माँ का दुलार

सब होते जा रहे है

उपभोक्ता संस्कृति के मोहताज। (जैन 42)

मौजूदा दौर का यह एक कडवा सच है कि आज आम उपभोक्ता के लिए बाज़ार किसी भूलभूलैया से कम नहीं है। वह अपने सीमित ज्ञान व जानकारी के बल पर इस भूलभूलैया को समझने व उससे निकलने में पूरी तरह से लाचार व बेबस

नज़र आता है। *मोम के पंख* संग्रह में सीमा जैन इस लाचारी को दर्शाती हुई कहती हैं-

चेहरों की ताज़गी/ कॉस्मेटिक का करिश्मा

नकली मुस्कानें, मुखौटे/ पीछे छिपे खतरनाक इरादे

इंसान ढोए हुए/ इंसानियत की लाश

अपने ही कंधों पर/ हर रोज, बार-बार। (जैन 33)

मनुष्य विज्ञापन और बाज़ार के आगे विवश और मजबूर है। उसको भ्रम में रखने और उलझाए रखने के लिए ये इरादे विज्ञापन के भी हैं और बाज़ार के भी। दर-असल उसे टी.वी., रेडियो और तमाम पत्र-पत्रिकाओं के विज्ञापनों ने इस प्रकार से उलझा कर रख दिया है कि अब वह अपने विवेक से कुछ भी सोच पाने की स्थिति में नहीं रहा। उसका एक तरह से ब्रेन वाश कर दिया गया है। कुछ समय से तो विज्ञापनों के तेवर लुभावने नहीं बल्कि आक्रामक नज़र आने लगे हैं। कहीं वे मृत्यु का भय दिखा रहे हैं तो कहीं बच्चों के भविष्य व उनके जीवन में मंड़राते खतरों का अहसास दिलाते हुए उपभोक्ता को भयग्रस्त कर अपने उत्पाद को बेचने की पुरजोर कोशिश में लगे हैं। मनुष्य का अधिकांश समय इसी उलझा हुआ है। उसे सार्थक कार्यों के लिए समय नहीं मिल रहा है लेकिन वह बाज़ार-संस्कृति में गहरे में उलझा हुआ है। *संधि रेखा पर खड़ी मैं* संग्रह में डॉ. शशि प्रभा इस विषय में लिखती है-

टी.वी. की दिलचस्प

स्क्रीन का मोह

कम्प्यूटर की तिलिस्मी दुनिया

निजी कंपनियों से मिलते

पैकेज का दम्भ/ वक्त-बेवक्त

कहाँ सवाल?

जब फुरसत तब खा लो (प्रभा 30)

बात यहीं तक सीमित नहीं है। अब तो प्रतिस्पर्धात्मक विज्ञापनों की बाढ़-सी आ गई है। 'इसमें है वही जो आपके मनपसंद नमक में नहीं' की तर्ज पर सैकड़ों विज्ञापन टी.वी. के पर्दे पर अपनी-अपनी धाक जमाने का प्रयास करते नज़र आने लगे हैं। इसके साथ ही बड़ी चालाकी से राष्ट्रीयता, देशभक्ति व राष्ट्रीय महापुरुषों का भी व्यावसायिक उपयोग किया जाने लगा है। कई विज्ञापनों ने तो राष्ट्रीयता की पूरी अवधारणा को ही बदल कर रख दिया है। यही नहीं, युवाओं के जोश और सपनों को अपने उत्पादों से इस तरह से जोड़ दिया गया है कि मानो उसे पाना ही उनका एकमात्र लक्ष्य हो। यानी आम आदमी के चारों तरफ विज्ञापनों की एक नई दुनिया रच बस गई है और वह है कि इससे पूरी तरह से बेखबर है। इसे व्यक्त करते हुए *धरती यह* संग्रह में शशि प्रभा लिखती है-

बाजार का सम्मोहन/ कि

धड़ाधड़ क्रय-विक्रय

जमीरों का/ धन-दौलत की मंज़िल

पहुँचाती पगडंडियाँ/ राह भूले वेद-मंत्र

प्रदूषण फैलाता दिमागों तक

चारों तरफ गूंजता विकास का मंत्र

शान्ति पाठ की जरूरत/ अब कहाँ ।

आकर्षित करती सेंसेक्स की उछाल

सोने-चाँदी के भाव

संवेदनाओं का सूखा सरोवर

किनारे बैठ सिसकते/ मन, बुद्धि और संस्कार

उजाड़-बियाबान में बदला/ रिश्ते-नातों का

भरा-पूरा संसार बहुत कुछ पाने की चाहत में। (प्रभा 89)

विज्ञापनों की इस मार से सिर्फ शहरी उपभोक्ता ही नहीं बल्कि गाँव-कस्बे के उपभोक्ता भी अछूते नहीं रहे। दो-चार गाँवों का छोटा बाज़ार भी विज्ञापनों और लुभावने होर्डिंग्स से भरा मिलेगा। इस विज्ञापन दुनिया का ही परिणाम है कि बाज़ारी संस्कृति हमारे गाँवों में भी पूरी तरह से हावी हो चली है। आज का ग्रामीण भी लस्सी व शर्बत की बजाए कोल्ड ड्रिंक पीने लगा है। सीमा जैन इन कुप्रवृत्तियों को देखते हुए *मोम के पंख* काव्य संग्रह में ठीक ही लिखती हैं-

खोया है-/ पारम्परिक परिधान,

केश-विन्यास/ नानी-दादी की गरिमा,

वो सावन के झूले/ बुजुर्गों की सेवा,

वो सेवा का मेवा/ वो लस्सी, अचार

मुरब्बे, चटनियाँ/ वो सरसों का साग

मक्की की रोटियाँ। (जैन 58-59)

यही नहीं, हर उम्र व वर्ग के उपभोक्ताओं में इनका जादू सर चढ़ कर बोलने लगा है। बच्चों की जीवन शैली तो इनके प्रभाव से पूरी तरह से बदल चुकी है। नौनिहालों का क्या खाना चाहिए और क्या पहनना चाहिए, यह सब कुछ विज्ञापन ही निर्धारित करने लगे हैं। अब तो उनकी सेहत के नाम पर उनकी माताओं के मनोविज्ञान को भी भुनाने की होड़-सी लग गई है। यहाँ चिंताजनक पहलू यह भी है कि मानवीय कमजोरियों का फ़ायदा उठाने की होड़ में इनकी शैली आक्रामक होने लगी है। अब विज्ञापन सिर्फ रिझाते या फ़ुसलाते ही नहीं है बल्कि डराते भी हैं। अब तो नौबत यह है कि सभ्यता-संस्कृति व आस्था की प्राचीन अवधारणाओं को भी तोड़-मरोड़ कर पेश किया जाने लगा है। व्यक्ति है कि अधिक और अधिक फास्ट हुए जा रहा है पर यथार्थ अभी भी ओझल है मन-मस्तिष्क से। शशि जैन के काव्य संग्रह *बहुत कुछ अनुत्तरित* में इसकी झलक देखने को मिलती है-

फास्ट है यह जिन्दगी

फास्ट फूड की तरह

फास्ट के इस दौर में!

प्रेमियों का इंतज़ार करना

आहें भरना/ समय की बरबादी ही तो है। (जैन 72)

बात यहीं तक सीमित नहीं है। बल्कि अब तो अपने उत्पादों को बेचने की होड़ में कंपनियाँ किसी भी सीमा तक जाने को तैयार हैं। हर चेहरा व्यापार की शक्ल में दिखाई देता है। हर कोई खरीददार बनकर टहल रहा है। ऐसी कोई भी स्थिति नहीं है जो विज्ञापन के जरिये संचालित न हो रही हो। *धूप-छाँव* में सीमा जैन अपनी एक कविता में विज्ञापन की बढ़ती संस्कृति को लक्ष्य करते हुए लिखती हैं-

विज्ञापन के युग में

साबुन हो या कार

दंत-मंजन या अखबार

तेल, खाद हो या विचार

हर चीज़ हो रही है

विज्ञापन की मोहताज। (जैन 42)

विज्ञापन और बाज़ार के प्रभाव में जिस तरीके से आज लोग फँसते जा रहे हैं और मायावी लोक में स्वयं को उलझाते जा रहे हैं, यदि ठीक तरीके से विचार करें तो यह किसी भी रूप में हितकर तो नहीं कहा जा सकता है। विडंबना यहाँ तक आ पहुँची है कि आम आदमी घर का चूल्हे तक विज्ञापन और बाज़ार से पूछकर सजा रहा है। आम आदमी वही कुछ कर रहा है जो बाज़ार चाहता है या विज्ञापन जो उसे दिखाता है।

षष्ठम अध्याय- व्यावहारिक अध्ययन

6.1 साक्षात्कार

6.2 व्यावहारिक सर्वेक्षण

6.3 दस्तावेजी सर्वेक्षण

पंजाब की इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ वैसे तो विशेष है लेकिन यह प्रश्न भी जायज़ है कि क्या कवि लोग यथार्थ बोलते या लिखते हैं? जायज़ तो यह भी है कि कविता का अधिकांश काल्पनिक होता है जहाँ कोई भी स्थिति काल्पनिक होती है वहाँ यथार्थ की संभावनाएँ नहीं रह जाती हैं। फिलहाल समकालीन हिंदी कविता के लिए ऐसा नहीं है क्योंकि इस समय का कवि यथार्थ को न सिर्फ देख रहा है अपितु स्वयं उसका भुक्तभोगी भी है। शोध की परिधि में इन शंकाओं एवं प्रश्नों के उत्तर देने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि जिन प्रसंगों और सन्दर्भों की चर्चा कवियों ने अपनी कविताओं में की है उन्हें व्यावहारिक जीवन में भी तलाशा जाए।

इस हेतु तीन माध्यमों को अपनाया गया जिनमें-साक्षात्कार, सर्वेक्षण, दस्तावेजी सर्वेक्षण शामिल हैं। प्रथम में विभिन्न विद्वानों के साक्षात्कार लिए गए हैं। दूसरे में लगभग सौ लोगों के पास एक प्रश्नावली बनाकर प्रेषित की गयी जिसका उत्तर उन लोगों ने अपनी मानसिकता से दिया है। इन सभी उत्तरों को एकत्रित कर जो निष्कर्ष निकलता है या निकल सकता है उन्हें यहाँ सांझा करने का प्रयास किया जा रहा है। तीसरे स्तर दस्तावेजी सर्वेक्षण किया गया है जिनमें समय-समय पर अख़बारों, वेब पोर्टल आदि में प्रकाशित सरकारी आँकड़ों को शामिल किया गया है।

वर्तमान हिंदी कविता की सशक्त हस्ताक्षर कवयित्री राजवन्तीमान से जिस समय यह प्रश्न पूछा गया कि “यह कहा जाता है कि अपने समय के बदलते परिवेश का प्रभाव साहित्य पर देखा जा सकता है। क्या आप भी यह मानती हैं कि बीसवीं सदी के आखिरी दशक में जो व्यापक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलाव हुए उनका प्रभाव साहित्य पर पड़ा है? क्या 21वीं सदी की पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता इस प्रभाव रेखांकित कर पाई है?” तो उनका जो जवाब था वह इस प्रकार है-

जैसा कि ऊपर जिक्र किया गया है कि समय के बदलते परिवेश का प्रभाव समाज, व्यक्ति एवं साहित्य सब पर पड़ता है। व्यक्ति चाहे वह रचनाकार है या नहीं समाज का एक छोटा सा हिस्सा होता है। समाज महाद्वीप की तरह है तो व्यक्ति क्षुद्र द्वीप की तरह है। बल्कि अंग्रेजी कवि जॉन डॉन (1572- 1631) के शब्दों में कहें तो- No man is an island, entire in itself; each is a piece of the continent, is a part of the main… अर्थात् कोई व्यक्ति अपने आप में सम्पूर्ण द्वीप नहीं होता; वह महाद्वीप का एक टुकड़ा होता है; यानि मुख्य का एक हिस्सा कुछ दार्शनिक इस कथन को इस तरह मानते हैं कि समाज व्यक्ति को वह बना देता है जो शायद वह अकेला हो तो नहीं हीं बनता यानि वह एक 'डिफरेंट सब्सटेंस' बन जाता है और एक कवि को तो सामाजिक परिवेश बहुत गहरे तक प्रभावित करता है क्यूंकि वह समाज की एक इकाई के तौर पर अधिक संवेदनशील होता है।

बीसवीं सदी का आखिरी दशक वैश्विक स्तर पर हुए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलावों का दौर था। इस दशक के शुरुआत में ही सोवियत रूस का विघटन हुआ और एक देश के पन्द्रह देश बन गये। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं बाजारवाद ने पूरे विश्व को एक बाजार में बदल दिया जाहिर है इसने भारत में भी पाँव पसारे। यह देखा गया है कि बदलते परिवेश में सबसे पहले 'मध्यम वर्ग' जो बहुत बड़ा वर्ग है, उसकी प्राथमिकताएँ बदलती हैं। आर्थिक स्तर के साथ साथ लोगों की मानसिकता को भी प्रभावित करती हैं। 1991 में जहाँ 1.48 लाख की मारुती 800 कार सामाजिक स्तर का पैमाना थी और बजाज, लम्ब्रेटा स्कूटर (दुपहिया) शान की सवारी होती थी इस दशक के बीतते बीतते पूँजी के प्रवाह और पूँजीवाद के मोह से लोगों को बड़ी गाड़ियाँ

और अन्य भौतिक वस्तुएँ लुभाने लगीं। इससे लोगों की जीवन शैली ही नहीं बदली अपितु कविता की प्राणवस्तु को भी प्रभावित किया। साहित्य में नागर जीवन लेखन में प्रमुखता से प्रवेश कर गया।

साहित्यिक यथार्थ के सन्दर्भ में राजवन्तीमान से ही पूछे गए एक अन्य प्रश्न में- "आज रचनाकारों के बीच साहित्य के क्षेत्र में एक-दूसरे से आगे निकलने और एक-दूसरे को पिछाड़ने की रणनीति देखी जा रही है। इसे हम साहित्यिक प्रतिस्पर्धा के तौर पर देख सकते हैं या बाज़ारवाद की उठापटक अथवा छीना झपटी के रूप में?" उन्होंने अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा-

साहित्य में वाद विवाद, असहमतियों, आलोचना-प्रत्यालोचनाओं, तर्क व विमर्श की लंबी परंपरा रही है जो साहित्य के विकास व परिष्कार के लिए आवश्यक भी होती है और फायदेमंद भी। साहित्यिक ज़मीन पर 'कल्पना पत्रिका विवाद' नजीर की तरह याद हो आई है। ऐसी बहसों में कुछ नये बिंदु उभरते हैं, भिन्न दृष्टिकोण, अलग परिप्रेक्ष्य सामने आता है जिनकी रौशनी में साहित्य को देखना परखना साहित्य के संवर्धन के लिए आवश्यक ज़मीन प्रदान करता है। साहित्यकारों के विमर्श के केंद्र में रचना रहती है, उस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से अलग-अलग पहलुओं पर सार्थक बातचीत होती है और यह बहस महत्त्वपूर्ण होती है और इसे ही साहित्यिक प्रतिस्पर्धा के तौर पर देख सकते हैं। जब साहित्य में बाज़ारवाद की उठापठक अथवा छीना झपटी या बीस-पच्चीस प्रतिशत सेल का रूप लेती है तो इसकी पृष्ठभूमि में निजी

खुंदक, व्यक्तिगत आक्षेप, उठाओ, गिराओ का भाव निहित होगा और निरपेक्षता अपना स्थान छोड़ देगी जो साहित्य के लिए उपयोगी नहीं होता ।

सच पूछिए तो यह “रणनीति” शब्द इतना प्रदूषित प्रतीत होता है कि जिसमें हर तरह की व्याधियाँ, लोलुपताएँ, अवसरवादिता मौजूद हैं। इस शब्द का महज प्रयोग ही उसके भीतर की इन सारी बुराइयों को सतह पर ला देता है साहित्य में यह रणनीति देखी जा रही है उसकी पृष्ठभूमि में कारण जो भी हो वह साहित्य के लिये शुभ नहीं है। हम सब जानते हैं कि बहुत अच्छा लिखने वाले साहित्यकार इस दौड़ में पीछे छूट जाते हैं क्योंकि वह साहित्य में रणनीति के मार्ग को नहीं अपनाते। लेकिन याद रखें कि समय साहित्य को छानता है।

हाँ, आज रचनाकारों के बीच साहित्य के क्षेत्र में जिस तरह एक-दूसरे से आगे निकलने और एक-दूसरे को पिछाड़ने की रणनीति देखी जा रही है लगता है जैसे साहित्यिक क्षेत्र अखाड़ा बन गया और कवि दंगल में उतरने को आतुर हैं। मेरा यह मानना है कि वैचारिकी की भिन्नता टकराहट की बजाय प्रतिस्पर्धात्मक हो तो साहित्य के लिए फायदेमंद होती है । यहाँ व्यक्तिगत टिप्पणी करने का मेरा कोई आशय नहीं ।

पंजाब की हिंदी कविता में सामाजिक सरोकार की स्थिति को समझने के लिए जब कवि एवं चिन्तक राजेश्वर वशिष्ठ से पूछा गया कि “पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक सरोकारों को लेकर आप क्या राय रखते हैं?” तो उनका जो उत्तर था वह न सिर्फ ध्यान आकर्षित करता है अपितु गहराई से सामाजिकता की परिधि को जानने के लिए प्रेरित भी करता है।

कोई कविता सामाजिक सरोकारों के प्रतिक्रिया स्वरूप ही लिखी जाती है, चाहे वह प्रेम कविता ही क्यों न हो। पंजाब हरियाणा में भी हिंदी कविता का वही स्वर है, जो पूरे उत्तर भारत में है। यहाँ की समस्याएँ और संस्कृति एक जैसी हैं। लोग समृद्ध हैं, इसलिए सच्ची प्रगतिशील कविता जन्म नहीं ले पा रही है। यहाँ आदिवासी नहीं हैं और अनुसूचित जातियों/ जनजातियों की आर्थिक स्थिति बुरी नहीं है।

उन वर्गों का स्वर यहाँ की कविता में अलग से सुनाई नहीं देता। महिलाएं भी उच्च शिक्षा दर के कारण बहुत हद तक स्वतंत्र दिखाई देती हैं, फिर भी उनकी कविताओं में स्त्री-पुरुष की सामाजिक असमानताओं का चित्रण देखा जा सकता है। प्राचीन भारत का स्वर्णिम अतीत भी अनेक कवियों की कविता में दिखाई देता है पर वे मध्यकालीन इस्लामी उत्पीड़न पर कलम नहीं चलाते। हर व्यक्ति अपनी धर्मनिरपेक्षता को इजारबंद से कसे रखना चाहता है। नकली प्रगतिशीलता कुछ वयोवृद्ध और युवा कवियों में देखी जा सकती है। बूढ़े बदल नहीं सकते और जवानों को रेवड़ियों के बीच से चाँद लाल नज़र आ रहा है।

यहाँ जातिवाद और साम्प्रदायिकता सरफेस पर नहीं है। ज़मीदार तो हैं तो मगर वैसा शोषण नहीं है जैसा पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में दिखाई देता है। इसलिए ये तत्व इस क्षेत्र की कविताओं में बहुत उभर कर सामने नहीं आते। जातीय संघर्ष, सरकार पर कब्ज़ा करने की होड़ में दिखाई देता है, जिसे लिखने की हिम्मत पुरस्कार संस्कृति पर आश्रित कवियों में हो नहीं सकती। लोग किसानों, मज़दूरों के लिए प्रायोजित कविताओं से लेकर, सरकार के पक्ष और विपक्ष में भी कविताएँ लिख रहे हैं जो यदा-कदा दिखाई देती हैं। इनके

बीच से ही कुछ कवि सच्चे सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकारों और प्रेम की विभिन्न छटाओं पर भी लिख रहे हैं।

पंजाब के युवा आलोचक डॉ. संजय चौहान से पारिवारिक मूल्यों को बचाने और निर्माण करने में जब पंजाब की हिंदी कविता को लेकर पूछा गया- “पारिवारिक मूल्यों को बचाने में पंजाब की हिंदी कविता किस तरह कार्य कर रही है?” तो उनका यह उत्तर काफी हद तक परिदृश्य को स्पष्ट करता दिखाई देता है-

पारिवारिक मूल्यों के संदर्भ में बात करें तो मेरा मानना है कि पंजाब की धरती धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्धशाली है। जिसका प्रभाव यहाँ के व्यक्ति, समाज के साथ-साथ साहित्य पर प्रत्यक्ष-परोक्ष दोनों रूपों में पड़ा है। यही नहीं सिक्खगुरु परंपरा में तो वैश्विक स्तर पर अपना प्रभाव छोड़ा है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि देश विभाजन का सर्वाधिक असर पंजाब पर ही पड़ा है। हजारों परिवारों को अपनी ज़मीन जायदाद से अलग होना पड़ा है। अपनों के बिछुड़ने की असहनीय पीड़ा यहाँ की जनमानस ने झेली है। जिसका स्पष्ट स्वर यहाँ से रचित साहित्य एवं सम्बद्ध साहित्यकारों की रचनाओं में सुना जा सकता है।

परंतु मैं आपसे बिना किसी पूर्वाग्रह के कहना चाहता हूँ कि वर्तमान में पंजाब के पारिवारिक मूल्य तथा जीवनशैली में अत्याधिक बदलाव आया है। पश्चिमी चकाचौंध कर देने वाली जीवनशैली ने पंजाब की युवा पीढ़ी को प्रभावित एवं आकर्षित किया हुआ है। युवाओं के विदेशों में पलायन जारी है। परिणामस्वरूप पारिवारिक अलगाव का संकट उत्पन्न हो रहा है। पंजाब में

रचित अनेक कविताओं में उस पीड़ा की भावात्मक अभिव्यक्ति हुई है, साथ ही रचनाकार सकारात्मक ढंग से इस समस्या के समाधान का प्रयास कर रहे हैं। संबंधगत बदलाव के साथ ही एकल परिवार के प्रति बढ़ते रूझान को यहाँ की कविता व्यक्त करती है।

कवि, लेखक, उपन्यासकार व कहानीकार डॉ. धर्मपाल साहिल से पंजाब की हिंदी कविता में पर्यावरण प्रदूषण को लेकर जब यह प्रश्न पूछा गया- "आपकी दृष्टि में क्या 21वीं सदी की पंजाब की हिंदी कविता हिंदी साहित्य के समानांतर विमर्शों को छू पाई है?" तो उनका जो कहना था ऐसा कहना सम्भव नहीं है। पहले पंजाब की कविता पंजाब के वातावरण, संस्कृति तथा सामाजिक/ राजनैतिक के परिदृश्य को पूरी तरह चित्रित करने में सक्षम हो जाए, तभी हिंदी साहित्य के समानंतर विषयों को छू पाएगी। जब राष्ट्रीय स्तर हिंदी कविता की बात चलती है तो मुख्यधारा में पंजाब के एक आधे नाम को छोड़कर और कोई नाम नहीं उभरता। कविता लिख लेना एक बात है। हिंदी साहित्य के आयामों को छूने वाली कविता लिखना एक अलग बात। स्वयं इस बात का दावा करना या ''मन तुरा हाजी बगोयम, तू मुरा मुल्ला बगो" वाली बात करना ज्यादा सार्थक नहीं लगता।

लेखिका, कवयित्री व शोधकर्ता तथा अभिलेख संयोजिका गीता डोगरा से जब स्त्री विमर्श के व्यावहारिक रूप को लेकर पंजाब के हिंदी कविता के योगदान को जानना चाहा- आप की राय में क्या पंजाब के हिंदी कविता में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श केवल

एक कागज़ी लड़ाई है या जिस का कोई व्यावहारिक रूप भी सामने आता है? तो उनका उत्तर इस प्रकार है-

स्त्री विमर्श महज कागज़ी लड़ाई नहीं। क्या आप महसूस नहीं करते कि पंजाब में स्त्री उत्पीडन किसी हद तक कम भी हुआ है? तेजाब फेंकने, भ्रूण हत्या व दहेज क मामले कम हुए हैं। आंकड़ों के अनुसार भी यही है। मात्र कागज़ो में नहीं यह लड़ाई चलती रहनी चाहिए। लिटरेचर ने अपनी भूमिका निभाई और निभा रहा है।

कवि और लेखक **बलविंदर सिंह अत्री** से पंजाब की आधुनिक कविता में आए परिवर्तनों को समझने के लिए पंजाब की बीसवीं सदी की हिंदी कविता और 21वीं सदी की हिंदी कविता में विषयचयन और भाषा-शैली इत्यादि को लेकर आपको कौन से मुख्य अंतर दिखाई पड़ते हैं? यह प्रश्न पूछा गया जिस का उत्तर यह है-

मैं 20वीं सदी के अंतिम तीन दशकों की हिंदी कविता का साक्षी रहा हूँ। पंजाब की हिंदी कविता आज की तरह तब भी समृद्ध थी। अब इतना अंतर देखता हूँ कि बिम्ब तथा प्रतीकों का चलन अलोप होता जा रहा है। आज का कवि अधिक मुखर है, बढ़िया मेटाफ़र है उसके पास जिसका वह बखूबी से इस्तेमाल करता है। भाषा शैली भी बेहतर हुई है पर 20वीं सदी के मुकाबले आज कई बार कविता में स्पॉटने से भारी होती नज़र आती है।

लेखिका, कवयित्री व प्रवचन कर्ता प्रो०सरला भारद्वाज से भूमंडलीकरण के कारण पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में क्या परिवर्तन आए हैं यह जानने के लिए प्रश्न

किया गया- आपको लगता है कि ग्लोबलाइजेशन या भूमंडलीकरण ने हिंदी कविता को भी प्रभावित किया है? तो उनका उत्तर इस प्रकार है-

वैश्वीकरण ने हिंदी कविता को विश्व में अपने पाठकों तक पहुँचाने के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है। हिंदी कविता की वैश्विक स्तर पर माँग में जितनी वृद्धि होगी उतना ही उसे अपने विषय वस्तु को सक्षम, समृद्ध और विविधमुखी करना होगा। निकट भविष्य में हिंदी कविता विश्व की अन्य भाषाओं में लिखी जा रही कविताओं के समक्ष एक व्यापक और वैश्विक भूमिका में दिखाई देगी। इस समय पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता वैश्विक स्तर पर चर्चित सामाजिक सरोकारों और समस्याओं को व्यक्त कर रही है।

6.2 व्यावहारिक सर्वेक्षण

व्यावहारिक सर्वेक्षण के तहत उन 100 लोगों से अभिमत लिया गया जिन्हें अपने परिवेश और समाज में सक्रिय पाया गया। शामिल होने को तो इनमें युवा, बुज़ुर्ग, महिला, पुरुष सभी शामिल हैं लेकिन इन सबको अलग-अलग रखने की बजाय महिला और पुरुष दो वर्गों में रखा गया है ताकि समुचित तरीके से विश्लेषण हो सके। 100 में से 50 महिलाओं तथा 50 पुरुषों को सर्वेक्षण में शामिल किया गया है। सर्वेक्षण का विश्लेषण आँकड़ों पर आधारित है और इन आँकड़ों को प्रतिशत में प्रदर्शित करने का प्रयास हुआ है।

सर्वेक्षणका विश्लेषण

प्रश्न संख्या 1-5 तक

प्रश्नावली	महिला% (उत्तर- हाँ)	महिला% (उत्तर- नहीं)	पुरुष% (उत्तर- हाँ)	पुरुष% (उत्तर-नहीं)
1. इधर का समाज क्या महिलाओं को पुरुषों के बराबर मानता है?	24%	76%	26%	74%
2. इधर के क्षेत्र में महिलाओं को लेकर सुरक्षा स्थिति ठीक है या नहीं?	36%	64%	40%	60 %
3. भ्रूण हत्या की समस्या से इधर के लोग मुक्त हुए या नहीं?	16%	84%	36 %	64 %
4. इधर के क्षेत्र में लोग लड़कियों की शिक्षा के प्रति जागरूक हैं या नहीं?	64%	36%	68 %	32 %
5. बुजुर्गों की स्थिति यहाँ के परिवार में ठीक है या नहीं?	58%	42%	38 %	62%

सर्वेक्षण का विश्लेषण

प्रश्न संख्या 6-10 तक

प्रश्नावली	महिला% (उत्तर- हाँ)	महिला% (उत्तर- नहीं)	पुरुष% (उत्तर- हाँ)	पुरुष% (उत्तर- नहीं)
6. इधर के क्षेत्र में बालश्रम करवाया जाता है या नहीं?	44%	56%	76%	24 %
7. आपकी दृष्टि में पराली को जलाना उचित है?	44%	66%	60%	40%
8. सांप्रदायिक लड़ाइयाँ इधर होती है या नहीं?	46%	54%	60%	40%
9. इधर का समाज क्या अभी भी जातिवाद को मानता है?	40%	60%	24%	76%
10. बाज़ार का प्रभाव क्या आपके जीवन पर भी पड़ा है ?	78%	22%	64%	36%

सर्वेक्षणका विश्लेषण

प्रश्न संख्या 11-15 तक

प्रश्नावली	महिला% (उत्तर- हाँ)	महिला% (उत्तर- नहीं)	पुरुष% (उत्तर- हाँ)	पुरुष% (उत्तर- नहीं)
11. इधर के लोग रोजगार के लिए प्रवास में रूचि रखते हैं ?	88%	12%	98%	2%
12. क्या यहाँ का युवा रोजगार के अभाव में नशे का शिकार हो रहा है?	74%	26%	64%	36%
13. क्या आपकी दृष्टि में सभी राजनेता भ्रष्ट होते है?	54%	46%	68%	32%
14. पहले की तरह मेले और त्यौहार के प्रति इधर के लोग अभी भी उत्सुक रहते हैं?	60%	40%	54%	46%
15. क्या युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति को छोड़कर पश्चिमी संस्कृति को अपना रही है?	68%	32%	88%	12%

6.3 दस्तावेजी सर्वेक्षण

दस्तावेजी सर्वेक्षण में उन माध्यमों का प्रयोग करने की कोशिश की गयी है जो एक हद तक सत्यता पर आधारित होते हैं। वैसे सभी माध्यम सत्य होते हैं लेकिन इनकी विश्वसनीयता इसलिए बढ़ जाती है क्योंकि इनका प्रकाशन समय-समय पर सरकारों द्वारा किया जाता रहता है। इन्हीं माध्यमों के दम पर योजनाओं का विस्तार और कल्याणकारी भूमिकाओं का चयन किया जाता है। पंजाब की हिंदी कविताओं में इन समस्याओं को खोजा और परखा जा चुका है लेकिन शोध की गंभीरता और विषयगत अनिवार्यता के लिए व्यावहारिक अध्ययन जरूरी हो जाता है इसलिए दस्तावेजी सर्वेक्षण भी किया गया। इसमें विभिन्न समाचार पत्रों, वेब पोर्टल्स आदि से उन समाचारों को उठाया गया है जो एक हद तक विश्वसनीयता पर आधारित हैं। यहाँ प्राप्त न्यूज आदि को ठीक उसी तरह उनके लिंक के साथ दिया जा रहा है। विश्लेषण भी किया गया है और उसके आँकड़ों भी प्रस्तुत किये गए हैं। महिलाओं पर बढ़ते अपराध से लेकर किसान, पर्यावरण समस्या आदि पर आधारित इन समाचारों को देखने के बाद किसी भी तरह से शंका के लिए कोई स्पेस नहीं बचता है।

दस्तावेजी सर्वेक्षण में प्राप्त स्थितियाँ इस प्रकार हैं-

जागरण.कॉम में प्रकाशित डॉ. मोनिका शर्मा के लेख के अनुसार जो महिला संबंधी घरेलू हिंसा को प्रमुखता से दृष्टिगत करता है-

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (NCRB) के मुताबिक देश में वर्ष 2021 में 22,372 गृहिणियों ने आत्महत्या की है। अपनों के बीच स्त्रियों के बिखरते मन-जीवन से जुड़े इन आँकड़ों के मुताबिक हर दिन औसतन 61 गृहिणियों ने ज़िंदगी से मुँह मोड़ लेती है। अपनो का मनोबल बढ़ाने और घर-परिवार को मजबूत नींव की तरह थामे रहने वाली औरतों का यूं जीवन से हारना सामाजिक-पारिवारिक परिवेश में मौजूद कई

परेशानियों की ओर इशारा करता है। हमारे देश में आत्महत्या करने वाली 71.2 प्रतिशत महिलाओं की उम्र 15 से 39 साल है। इस आयु वर्ग में अधिकतर महिलाएँ वैवाहिक जीवन जी रही होती हैं। आमतौर पर घर तक सिमटी औरतें ऐसे अनगिनत दायित्वों से उपजी अपनी भावनात्मक उलझनें किसी से सांझा नहीं कर पातीं। इसीलिए वे आत्महत्या की राह अपनाती हैं।

(https://www.jagran.com/editorial/apnibaat-in-year-2021-22373-women-commit-suicide-in-india-22369035.html)

hindi.news18.com में मार्च 06, 2020 को प्रकाशित समाचार के अनुसार जो महिलाओं के अधिकार और पुरुष मानसिकता को स्पष्ट करती है-

महिलाओं के अधिकार (Women Rights) और उनके हक के लिए पूरी दुनिया में आवाज़ उठ रही है। महिला सशक्तिकरण (Women empowerment) के लिए तमाम उपाय किए जा रहे हैं। जेंडर इक्वैलिटी पूरी दुनिया में बहस का बड़ा मुद्दा है। लेकिन ऐसा लग नहीं रहा है कि हालात ज्यादा बदले हैं।

यूएन (United Nations) की एक ग्लोबल रिपोर्ट बताती है कि दुनिया का हर 10 में से 9 आदमी महिलाओं को लेकर पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। वे अभी भी महिलाओं को अपने बराबर मानने को तैयार नहीं है हर 10 में से 9 आदमी महिलाओं को कमतर मानता है।

यूएन (UN) की घरेलू हिंसा को लेकर जारी की गई एक ग्लोबल रिपोर्ट के मुताबिक आज के जमाने में भी 28 फीसदी लोग पत्नी की पिटाई को सही ठहराते हैं। जन जागरुकता के तमाम उपायों के बाद और मॉर्डन कल्चर को बड़ी आबादी द्वारा अपनाए जाने के बाद भी करीब 28 फीसदी लोग पत्नी की पिटाई को सही ठहराते हैं। इन 28 फीसदी लोगों को लगता है कि घरेलू झगड़े में पति अगर अपनी पत्नी को पीट दे तो कोई बात नहीं। हैरानी की बात है कि ये किसी एक पिछड़े देश की बात नहीं है। ये ग्लोबल रिपोर्ट है। इसके डाटा 80 फीसदी से भी ज्यादा के ग्लोबल पॉपुलेशन से जुटाए गए हैं।

यूएन की रिपोर्ट कहती है कि दुनिया की करीब आधी आबादी जिसमें महिला और पुरुष दोनों शामिल हैं, ये मानते हैं कि पुरुष ही बेहतर राजनेता हो सकते हैं। इसी

तरह से करीब 40 फीसदी लोगों का लगता है कि पुरुष ही बेहतर बिजनेस एग्जीक्यूटिव हो सकते हैं।

(https://hindi.news18.com/news/world/united-nations-report-on-women-says-nearly-everyone-is-sexist-in-some-way-dlva-2918446.html)

बलात्कार आदि की समस्याओं पर गम्भीर रिपोर्ट जो देश के यथास्थिति पर प्रकाश डालती है-

राष्ट्रीय अपराध रिपोर्ट ब्यूरो (NCRB) 2019 में जारी की गई एक रिपोर्ट के मुताबिक देश में प्रतिदिन बलात्कार (Rape Cases in India) के औसतन 87 मामले दर्ज हुए और साल भर के दौरान महिलाओं के खिलाफ अपराध के कुल 4,05,861 मामले दर्ज हुए जो 2018 की तुलना में सात प्रतिशत अधिक हैं।

(https://www.india.com/hindi-news/india-hindi/crimes-in-india-2019-report-87-rape-cases-a-day-crimes-against-women-up-by-7-87-women-raped-daily-in-india-4157028/)

पंजाब सरकार की आधिकारिक वेबपोर्टल से लिया गया दस्तावेज जिसमें स्त्री-पुरुष लिंगानुपात और साक्षरता पर प्रकाश डाला गया है-

पंजाब डॉट गवर्नमेंट इन साइट पर दिए गए आँकड़ों के अनुसार 2011 की जनगणना के अनुसार पंजाब की कुल आबादी 27,743,338 है जिसमें से पुरुषों की जनसंख्या 14,640,284 है और महिलाओं की जनसंख्या 13,103,054 है। पुरुष- महिला लिंग अनुपात 895 है। 2022 में पंजाब की अनुमानित जनसंख्या 30,501,026 है जिसमें से पुरुषों की अनुमानित जनसंख्या 16,095,528 है और महिलाओं की अनुमानित जनसंख्या 14,405,498 है। पुरुष-महिला लिंग अनुपात कम होकर 893 हो गया है।

पंजाब डॉट गवर्नमेंट इन पर दिए गए आँकड़ों के अनुसार महिला साक्षरता दर भी पुरुष साक्षरता दर से कम है। पुरुष साक्षरता दर 80.44% और महिला साक्षरता दर 70.74% है। (**https://punjab.gov.in/state-profile/)**

बच्चों की मानसिकता और यथास्थिति को प्रस्तुत करती रिपोर्ट जिनमें कुंठा और संत्रास के भाव चित्रित होते हैं-

यूनिसेफ इंडिया की प्रतिनिधि डॉ. यास्मीन अली हक ने रिपोर्ट के कुछ प्रमुख निष्कर्ष प्रस्तुत किए। स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स चिल्ड्रन 2021 ने पाया है कि भारत में 15 से 24 साल के बच्चों में से लगभग 14 प्रतिशत या 7 में से 1 ने अक्सर उदास महसूस किया या चीजों को करने में बहुत कम दिलचस्पी दिखाई। बच्चे न केवल एक भावनात्मक त्रासदी जी रहे हैं, कई को उपेक्षा और दुर्व्यवहार का उच्च जोखिम भी है।

(https://hindi.asianetnews.com/national-news/unicef-report-released-2021-on-the-state-of-mental-health-of-the-world-s-children-r0i6ib)

26 मार्च 2021 को टाइम्स ऑफ इंडिया में छपे संजीव वर्मा द्वारा लिखित एक आलेख के अनुसार जिसमें रोजगार और उनसे जुड़ी समस्याओं पर विचार करती है-

पंजाब के 4.78 लाख लोगों ने जनवरी 2016 से अब तक रोजगार के लिए देश छोड़ दिया और इस अवधि के दौरान 2.62 लाख छात्र पढ़ाई के लिए छोड़ गए। विदेश राज्य मंत्री वी मुरलीधरन द्वारा लोकसभा में पेश किए गए आँकड़े राज्य में उभरते जनसांख्यिकीय संकट के बारे में चेतावनी देते हैं। बेरोजगारी का सामना करते हुए, राज्य से बड़ी संख्या में युवा जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश जाते हैं, वास्तव में नौकरियों की तलाश करते हैं ताकि वे हरियाली वाले चरागाहों में बस सकें।

(https://www.google.com/amp/s/m.timesofindia.com/city/chandigarh/since-2016-4-7l-people-from-punjab-went-abroad-for-jobs/amp_articleshow/81698819.cms)

30 अक्टूबर 2021 को टाइम्स ऑफ इंडिया समाचार पत्र में छपे समाचार जो किसानों के संघर्ष और उनकी यथास्थिति को दर्शाती है-

'एक्सीडेंटल डेथ्स एंड सुसाइड्स इन इंडिया' (एडीएसआई) शीर्षक से छपे आलेख में बताया कि किसान संघों ने दावा किया कि सरकारी एजेंसियाँ किसानों की आत्महत्या के आँकड़ों को छुपाती हैं जिससे सही तस्वीर सामने नहीं आती है। वास्तव में आँकड़े बहुत अधिक थे लेकिन दर्ज नहीं किए जा रहे थे। जनवरी 2000 से दिसंबर 2016 तक के आँकड़े एकत्र करने वाले पंजाब के तीन विश्वविद्यालयों पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, पुनीशी विश्वविद्यालय और गुरु नानक देव विश्वविद्यालय द्वारा किए गए सर्वेक्षण के साथ यह तथ्य सामने आया। सर्वेक्षण के अनुसार 16 वर्षों में कुल 16,606 किसानों और खेत मजदूरों ने आत्महत्या की थी, जिससे औसतन एक वर्ष में 1000 से अधिक कृषि आत्महत्याएँ हुईं। कृषि निकायों ने दावा किया कि अगर लगन से दर्ज किया जाए तो वास्तविक आँकड़े तुलनीय होंगे।

एनसीआरबी (NCRB) को राज्यों द्वारा उपलब्ध कराए गए आँकड़ों के अनुसार, 2019 में 1,39,123 लोगों ने अपना जीवन समाप्त कर लिया और 2020 में यह संख्या बढ़कर 1,53,052 हो गई। इनमें से 10,677 (कुल आत्महत्याओं का 7%) कृषि से संबंधित आत्महत्याएँ थीं। भारत में 2019 में दर्ज कुल कृषि आत्महत्याओं में से 5,579 किसान या खेत मज़दूर थे। पंजाब में, किसानों द्वारा की गई 257 आत्महत्याओं में से

245 पुरुष और 12 महिलाएँ थीं, जिनमें से प्रत्येक में 6 महिलाएँ किसान और खेतिहर मजदूर परिवार से थीं। कुल में से 174 किसान थे और 83 खेत मज़दूर थे। आत्महत्या करने वाले 174 काश्तकारों में से 143 अपनी जमीन पर खेती कर रहे थे, जबकि 31 इसे पट्टे पर दे रहे थे। इस प्रकार हजारों किसान हर साल जीवन समाप्त कर रहे हैं।

(**https://www.google.com/amp/s/m.timesofindia.com/city/amritsar/farm-suicides-falling-in-punjab-unions-reject data/amp_articleshow/87389911.cms)**

News18 हिंदी October 22, 2021 को प्रकाशित पर्यावरण से सम्बन्धित दस्तावेज के अनुसार जिसमें पराली से उपजी समस्या को विशेष रूप से दर्ज कराया गया है-पंजाब प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (पीपीसीबी) के अनुसार, पंजाब में पराली जलाने (Stubble burning in Punjab) के मामलों में 2021 में 218 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। धान की कटाई (Paddy harvesting) और गेहूं की बुवाई का समय नजदीक आने के साथ ही खेतों में आग लगने की घटनाएँ (Incidents of Fire) बढ़ जाती हैं। इससे राजधानी दिल्ली सहित पंजाब के साथ लगते पड़ोसी राज्यों में वायु प्रदूषण में बढ़ोतरी हो जाती है। राज्य में 19 सितंबर से 20 अक्टूबर, 2021 तक 2,942 पराली जलाने के मामले दर्ज किए गए हैं, जिनमें से 2,017 केवल 13 से 19 अक्टूबर के बीच दर्ज किए गए हैं, जबकि पहले 24 दिनों में केवल 925 मामले दर्ज किए गए हैं। तरनतारन में 728 मामले सामने आए हैं, इसके बाद अमृतसर (665) और पटियाला (279) हैं। लुधियाना, गुरदासपुर, फिरोजपुर, कपूरथला, फतेहगढ़ साहिब, फरीदकोट

और जालंधर में क्रमशः 186, 158, 142, 123, 113, 106 और 102 मामले दर्ज किए गए। इस प्रकार पराली जलाने से पंजाब की आबोहवा बिगड़ रही है।

(https://hindi.news18.com/news/punjab/stubble-burning-cases-increase-in-218-percent-in-punjab-air-pollution-risk-increased-punss-3810195.html)

17 अगस्त, 2021 को प्रकाशित वृक्षों की अंधाधुंध कटाई को लेकर प्रकाशित अमर उजाला की एक रिपोर्ट के अनुसार-

(न्यूज डेस्क, अमर उजाला, चंडीगढ़ Published by**:** निवेदिता वर्मा Updated Tue, 17Aug 2021 03:49 PM IST) पंजाब में वन क्षेत्र केवल 3 प्रतिशत भूमि है, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर देश की 35 प्रतिशत भूमि को वन भूमि बनाने का लक्ष्य है। पंजाब में पंचायत और बीडीपीओ की मिलीभगत के चलते लगातार पेड़ों की नीलामी को अंजाम दिया जा रहा है। पेड़ों की नीलामी का एक मामला पंजाब के भरथला गाँव में देखा जा सकता है जहाँ पंचायतों और अधिकारियों के बीच मिलीभगत से लुधियाना की भरथाला पंचायत की भूमि पर लगे 150 पेड़ों की कटाई के लिए 26 जुलाई, 2021 को नीलामी नोटिस जारी किया गया। स्थानीय निवासी जगदीश ने पंजाब-हरियाणा हाईकोर्ट में जनहित याचिका दाखिल करते हुए पेड़ों की कटाई का मुद्दा उठाया। याचिका पर पंजाब सरकार सहित अन्य को नोटिस जारी कर जवाब मांगा है। साथ ही पर भी रोक लगा दी।

(https://www.amarujala.com/chandigarh/punjab-haryana-high-court-has-issued-notice-to-punjab-government-in-case-of-cutting-of-150-trees-in-)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पंजाब के कवियों द्वारा उठाए गए समसामयिक विषय, सामाजिक विकृतियाँ व समस्याएँ केवल उनके काव्य तक ही सीमित नहीं है, ये व्यावहारिक रूप में समाज में विचरती भी देखी जा सकती हैं।

उपसंहार

शोध प्रबंध का सार

भावी शोध संकेत

सामाजिक यथार्थ के सन्दर्भ में इक्कीसवीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (2020 तक प्रकाशित चयनित काव्य-संग्रहों के सन्दर्भ में) करते समय विभिन्न प्रकार के विचार और भाव मन-मस्तिष्क में आते रहे हैं। समाज के बदलते परिदृश्य को देखना और उसके यथार्थ को अभिव्यक्ति के धरातल पर लाना एक हद तक चुनौतीपूर्ण रहा है तो रूचिकर भी लगा। विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ इस अर्थ में सहायक सिद्ध हुईं। इन सबके आलोक में प्रस्तुत शोध-प्रबंध में सामाजिक यथार्थ की अवधारणा को ठीक तरीके से स्पष्ट करने का यत्न किया गया।

सामाजिक यथार्थ की अवधारणा पर विचार करें तो पायेंगे कि सामाजिक जीवन के विविध रंग होते हैं। मनुष्य अपने जीवन के प्रारंभ से ही समाज से जुड़ता है और अंत तक उसके साथ जुड़ा रहता है। सच यह भी है कि जीवन के विविध रंग होते हैं तो उन रंगों को अर्थ देने के लिए प्रसंग भी अनेक होते हैं। कभी किन्हीं से जुड़ाव तो कभी किसी के साथ अलगाव का क्रम चलता रहता है। इस चलने की प्रवृत्ति में मनुष्य अपने स्वभाव और व्यवहार को बराबर सामंजस्य के धरातल पर लाने का यत्न करता है। इस यत्न में बहुत कुछ ऐसा होता है जो नैतिकता और आदर्शता से बंधा होता है। इसलिए भी क्योंकि मनुष्य अपने स्वभाव में पहले सामाजिक आदर्शों से जुड़ता है। यदि वह न जुड़े तो सामाजिक जीवन में लोगों को उसे मनुष्य मानने में ही संकोच होगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के प्रथम उद्देश्य 'सामाजिक संरचना एवं सामाजिक यथार्थ की पहचान' की पूर्ति हेतु प्रथम अध्याय 'सामाजिक यथार्थ की अवधारणा का सैद्धांतिक विवेचन' के तहत समाज एवं सामाजिक संरचना को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के विचारों एवं अवधारणाओं का अध्ययन-विश्लेषण किया गया। इस उद्देश्य पर कार्य करते हुए देखने का प्रयास किया गया कि समाज विभिन्न व्यक्तियों, जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों से होते हुए भिन्न-भिन्न समुदायों के संगठित समूहों का

नाम है। यह संगठित समूह अपनी तरह की बौद्धिकता से संचालित होता है जिसमें समय-समय पर बदलाव होता रहता है। विभिन्न विद्वानों एवं मनीषियों ने समाज को अपने-अपने तरीके से परिभाषित किया है। कुछ के अनुसार समाज विभिन्न मनुष्यों के जागरूक मस्तिष्क का एकात्मक रूप है तो कुछ के अनुसार यह एक ऐसा माध्यम है जो मनुष्य को आपस में जोड़कर देखने का कार्य करता है। समाज यथार्थतः व्यक्ति को संगठित करने और उसकी ऊर्जा को सार्थक दिशा देने के लिए जाना जाता है। समाज से जुड़ने के बाद कुछ नियम और कायदे होते हैं जिसे मनुष्य को हर हाल में मानकर चलना होता है।

एक समाज में रहते हुए व्यक्ति कई तरह का जीवन जीता है और यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि हर जीवन का एक अपना यथार्थ होता है। उस यथार्थ को देखने का नज़रिया जिस किसी के पास होता है, उनमें कवि विशेष है। कविता में एक दृष्टि होती है जो यथार्थ के तह तक जाकर उसे अभिव्यक्त करती है। सामाजिक यथार्थ में 'वैयक्तिक संघर्ष' विशेष होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि वैयक्तिक जीवन का संघर्ष सामाजिकता में विशेष भूमिका निभाता है। व्यक्ति के संस्कार, व्यवहार और एक हद तक जीवन के प्रति समर्पण यह सब समाज को गतिशील तो रखते ही हैं प्रभावित भी करते हैं। इस शोध-प्रबंध में वैयक्तिक यथार्थ के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया है और उसके यथार्थ परिदृश्य को यहाँ दिखाने का प्रयास किया गया है।

सामाजिक जीवन में वैयक्तिक, सामाजिक और उसके विभिन्न विमर्श जिनमें दलित, स्त्री, वृद्ध आदि शामिल होते हैं। इस दायरे में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का यथार्थ शामिल होता है। मनुष्य इन सभी के बीच सामंजस्य बिठाने की कोशिश जब करता है तो आदर्श की स्थिति कहलाती है, लेकिन महसूसते हुए जब उसका भुक्तभोगी होता है तब वह सामाजिक यथार्थ होता है। '21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में निहित सामाजिक यथार्थ खोजना' इस शोध प्रबंध का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है जिसकी पूर्ति के लिए दूसरे अध्याय से लेकर पाँचवे अध्याय तक वर्तमान पंजाब में विभिन्न सामाजिक पहलुओं के यथार्थ को खोजने का प्रयास किया गया।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का तीसरा उद्देश्य है 'इक्कीसवीं सदी के पंजाब की हिंदी कवियों के समसामयिक विषयों पर दृष्टिकोण का विवेचन करना है।' इस उद्देश्य पर कार्य करते हुए पाया गया कि मनुष्य जिस समाज में रहता है वह समाज उसके व्यक्तिगत आदर्शों, नैतिकताओं, संघर्षों का प्रतिफल होता है। ऐसा इसलिए भी होता है क्योंकि वह समूह विशेष से अर्जित कर समूह विशेष को ही समृद्ध करने का यत्न करता है। तीसरे अध्याय के अंतर्गत समाकालीन विमर्शों में पंजाब के हिंदी कवियों ने गंभीरता से कार्य करते हुए दलित, स्त्री, वृद्ध एवं पर्यावरण-प्रकृति आदि का यथार्थ प्रस्तुत किया है। दलित और स्त्री-जीवन की यथास्थिति से लगभग सभी परिचित हैं। दोनों के हाशिए पर होने की यथार्थ स्थिति भी किसी से छिपी नहीं है। पंजाब के हिंदी कवि न सिर्फ इन स्थितियों को देखते हैं अपितु उसकी अभिव्यक्ति भी करते हैं। इस अभिव्यक्ति में दलित और स्त्री जीवन का यथार्थ उभर कर सामने आता है तो व्यापक समुदाय उनकी यथास्थिति में सुधार का यत्न भी करता है। पर्यावरण-प्रकृति एक अलग तरह की समस्या है जिसको लेकर पंजाब का कवि-समुदाय खासा चिंतित नज़र आ रहा है। वह देखता है कि बदलते समय में विमर्श तो स्थापित होते जा रहे हैं लेकिन दृष्टिबोध में गंभीरता नहीं आ पा रही है। पंजाब की हिंदी कविता में यह गम्भीरता विशेष रूप से झलकती है, जिसे प्रस्तुत शोध-प्रबंध में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

कोई भी समाज तभी तक सार्थक दिशा में आगे बढ़ सकता है यदि वर्तमान में उसके पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन हो। जहाँ आर्थिक स्थितियाँ कंट्रोल में नहीं रहती हैं वहाँ का समाज मजबूती के साथ आगे नहीं बढ़ पाता है। वर्तमान परिवेश में अर्थतंत्र का बदलता प्रारूप ने हर नागरिक को चिंता में डालकर रखा हुआ है। जो देशी हैं वह विदेशी होना चाहते हैं बगैर इस बात का परवाह किये कि समाज किस दिशा की तरफ जाकर भ्रम में पड़ेगा। आज जिस तरह से पैसा प्रमुख हुआ है और सम्बन्ध कमजोर उससे उपजा यथार्थ यह है कि घर-परिवार, रिश्ते-नाते अपनी जड़ों से कटते जा रहे हैं। बाज़ार ने घर के चूल्हों तक को भी अपनी जद में ले लिया है। प्रवास का आलम यह है कि घर में बुजुर्ग माता-पिता के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं रह पा रहा है। इक्कीसवीं सदी के पंजाब का हिंदी कवि आर्थिक परिवर्तन के इस बदलते स्वरूप से गंभीर रूप से प्रभावित है और उसकी विसंगतियों का चित्रण कर भविष्य को गर्त में जाने से रोकना चाहता है। यहाँ अर्थ-तंत्र को गंभीरता से देखने का प्रयास

किया गया है, जो समाज की जरूरत तो है ही, भावी पीढ़ी की उन्नति और मजबूती के लिए भी आवश्यक है।

सामाजिक यथार्थ में धर्म विशेष विमर्श की माँग करता है। यह देश और यहाँ का सामाजिक परिवेश साम्प्रदायिक शक्तियों के वशीभूत होकर कार्य करते हैं। विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों में बँट कर रहने वाले लोग एक अलग तरह की दुनिया में जीने के अभ्यस्त होते जा रहे हैं जिसे पंजाब का हिंदी कवि गंभीरता से न सिर्फ देख रहा है अपितु उसमें व्यापक परिवर्तन का भी हिमायती है। धर्म और सम्प्रदाय में बँटकर रहने से अच्छा एक ईश्वर और एक दृष्टि को अपना कर यदि मनुष्य चले तो उसे अलगाव और विखराव जैसी समस्याओं से दो-चार न होना पड़े। लेकिन प्रायः देखा गया है कि व्यक्ति उसी का गुणगान करता है जिसमें उसका जन्म होता है या जिसके द्वारा वह पाला-पोषा जाता है। समकालीन पंजाब की हिंदी कविताओं में धार्मिक और साम्प्रदायिक यथार्थ का चित्रण करते समय यह बराबर ध्यान में रखा गया है कि धार्मिक भेद-भाव की बढ़ती खाईं को पाटा जा सके और समन्वयशील प्रवृत्ति को बढ़ाया जा सके।

समसामयिक विषयों के अंतर्गत धर्म और संस्कृति पर जब हम पंजाब के वर्तमान कवियों के दृष्टिकोण को परखते या देखते हैं तो पाते हैं कि मनुष्य जब नैतिकता और आदर्शता से जुड़ाव रखता है तो कहीं न कहीं जीवन-दृष्टि उसकी विकसित होती है। रीतियों-नीतियों का विस्तार यहीं से होता है तो परम्पराओं के प्रति आस्था भी मानवीय स्वभाव में यहीं से विकसित होती है। रीतियों-रिवाजों से जुड़कर मनुष्य यदि समृद्ध होता है तो परम्पराओं से जुड़ना उसके लिए बहुत हद तक सामाजिकता के भाव को विस्तार देना होता है। मनुष्य परम्पराओं और रीतियों-रिवाजों से जितने हद तक जुड़ता है कई बार वह उतनी ही तेजी से उससे परेशान भी होता है। ऐसी स्थिति में परिवर्तन की राह पकड़ लेता है। परिवर्तन किसी भी जागरूक समाज की पहली निशानी होती है।

वर्तमान समय में जो भी सांस्कृतिक परिवर्तन दिखाई दिया है उसके यथार्थ को यहाँ दर्शाने का प्रयास हुआ है। भारतीय समाज इस समय जिस सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है उसे पंजाब का कवि ठीक तरीके से देख ही नहीं रहा है अपितु अभिव्यक्त भी कर रहा है। खाने-पीने से लेकर कला संगीत तक में व्यापक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। बात-व्यवहार का वह लहजा आज कम ही देखने को

मिलता है जो कभी यहाँ का विशेष होता था। पंजाब के कवियों ने कविता के माध्यम से इस यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए बुज़ुर्गों और युवाओं को चेताया भी है। उनकी दृष्टि में समाज सांस्कृतिक समृद्धि से आगे बढ़ता है। यदि सांस्कृतिक रूप से समाज क्षीण होगा तो विकास की जगह अवनति को प्राप्त होगा।

इस तरह प्रस्तुत शोध-प्रबंध में सामाजिक यथार्थ को दिखाने के लिए जो भी उदहारण या विषय उठाए गए हैं उन सभी पर गंभीर कार्य करने का प्रयास हुआ है। समस्याओं को गिनाकर हट जाना किसी भी रूप में शोध नहीं है इसलिए शोध-कार्य के दौरान उनका हल भी सुझाने का पूरा प्रयास किया गया है। कवियों द्वारा व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को चिह्नित करते हुए दर्शाया गया है कि कई बार मनुष्य स्वार्थवश भी लोगों से जुड़ता है। यहाँ तक कि उसके व्यवहार का अधिकांश उसी स्वार्थ से जुड़कर देखा जाने लगता है। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का अपना अस्तित्व होता है। अस्तित्व के कारण ही समाज में जुड़ाव और अलगाव के भाव प्रदर्शित होते हैं। जिसके मन में जिस तरह का भाव उत्पन्न होता है वह उसी तरह का आचरण करता है। सामाजिक अवनति उसके मन-मस्तिष्क में कुंठा और संत्रास से जुड़ी भावना का विकास करते हैं। इस भाव को गंभीरता से लेते हुए उसे व्याख्यायित करने का यत्न आलोच्य शोध-प्रबंध में किया गया है।

पंजाब के हिंदी कवियों ने इस भाव से जुड़े यथार्थ को व्यापक स्तर पर चिह्नित किया है। पंजाब के कवि ने इस भाव को भी अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है कि व्यक्ति वैयक्तिक स्तर पर क्यों एकाकी होने लगता है? क्यों समाज और उसकी गतिविधियों से दूर भागने की कोशिश करता है? जिस समय कवि इन भावों का चित्रण कर रहा होता है उसी समय उसे सम्बन्धों में अंतर्द्वंद्व दिखाई देना शुरू हो जाता है। यह अंतर्द्वंद्व कई बार इतना प्रभावी होता है कि समाज विखराव की तरफ उन्मुख होने लगता है। कवि और कविता की भूमिका यहीं विशेष बन जाती है।

ये दौर बाज़ारवाद से पूरी तरह प्रभावित है जिसमें अर्थतन्त्र निरंतर बदलाव की ज़मीन निर्मित कर रहा है। पंजाब के वर्तमान कवियों ने अर्थतन्त्र से सम्बन्धित समस्याओं को चिह्नित करते हुए दर्शाया है कि पूँजीपति, कार्पोरेट जगत लगातार आम आदमी के जीवन में दखल ही नहीं दे रहे अपितु उन्हें और उनकी जीवन शैली को प्रभावित भी कर रहे हैं। पैतृक संसाधनों में जो कुछ था वह खो रहा है। कृषि के क्षेत्र में प्रवेश करने से युवा कतरा रहे हैं। कृषक या तो आत्महत्या करने के लिए

विवश हो रहे हैं या फिर कर्जों के नीचे दबते जा रहे हैं। इन सबकी वजह से ऐसी समस्याएँ निर्मित हो रही हैं कि सब कुछ होते हुए भी आम आदमी अकेला और अनाथ-सा दिखाई दे रहा है। महानगरों से लेकर कस्बों और छोटे शहरों तक में आदमी दूसरे आदमी से बात करने की स्थिति में नहीं है। भूख से पूरी तरह आक्रांत आम आदमी रोटी की तलाश में भटकते हुए मिलों, फैक्ट्रियों में शोषित हो रहा है। पंजाब का हिंदी कवि इन समस्याओं को न सिर्फ देख रहा है अपितु उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति करते हुए बौद्धिक जगत को चिंतन-विश्लेषण करने के लिए प्रेरित भी कर रहा है।

पंजाब के वर्तमान हिंदी कवियों ने धर्म और संस्कृति सम्बन्धी समस्याओं को चिह्नित करते हुए दर्शाया है कि किस प्रकार धर्म मूल रूप से अपना अर्थ खो रहा है। साम्प्रदायिक भेदभाव बढ़ते जा रहे हैं जिसके ज़द में बड़े ही नहीं अपितु बच्चे भी शामिल होते जा रहे हैं। धर्म अंधविश्वास और स्वार्थ की जकड़न में पड़कर अपने स्वरूप से भटकता जा रहा है। पंजाब में सांप्रदायिक ताकतों ने यहाँ की सामाजिक समरसता और सांप्रदायिक नीति को प्रभावित किया है। बाज़ारी संस्कृति ने पारंपरिक संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है जिसके चलते युवा पूरी तरह से दिग्भ्रमित हो रहे हैं। खान-पान से लेकर बात-व्यवहार तक में समस्याएँ उभर कर आ रही हैं। ग्रामीण संस्कृति विनष्ट हो रहे हैं तो शहरी संस्कृति के दायरे में गाँव पूरी तरह शामिल होते जा रहे हैं।

पंजाब की हिंदी कविता में हर समस्या का समाधान दिखाई देता है बशर्ते कोई देखने की कोशिश करे। वैयक्तिक संघर्ष के चलते कुंठा, संत्रास, सम्बन्धों में अन्तर्द्वन्द्व, एकाकी जीवन की नीरसता आदि से उबरने का समाधान तो सुझाता ही है, मनुष्य को संघर्ष पथ पर बढ़ते हुए साहस का प्रदर्शन करने की प्रेरणा भी देता है। सम्बन्धों में अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त करने के लिए संवाद की सक्रियता को बनाए रखने की सीख देता है तो अपने जीवन में रिश्तों की अहमियत को पहचाने का विवेक सुझाता है। इन माध्यमों की प्राप्ति में ही व्यक्ति खुशहाल जीवन को प्राप्त कर सकता है।

पंजाब का हिंदी कवि दलित जीवन से सम्बन्धित समस्याओं जैसे भुखमरी, गरीबी, सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध लड़ने के लिए मनुष्य को इन सबके खिलाफ सक्रिय होने और अपने अधिकारों की माँग करने, सामाजिक विभेदता से एकजुट होकर लड़ने की प्रेरणा देता है। इस हेतु समाज और सरकार दोनों की ज़िम्मेदारी की बात भी पंजाब का कवि करता है, ताकि जो योजनाएँ कागज़ों में निर्मित हो रही हैं व्यावहारिक तौर पर भी साकार हो सकें।

स्त्री जीवन से सम्बन्धित समस्याएँ जैसे अस्मिता के प्रश्न, बलात्कार, शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न आदि का हल सुझाते हुए पंजाब का वर्तमान कवि इस समाधान को रेखांकित करता है कि यदि एक स्त्री दूसरे स्त्री का दुःख समझे और उसमें सहभागी हो तो स्त्री जीवन से सम्बन्धित बहुत सारी समस्याओं का स्वयं ही हल हो जाए। इसके लिए वह समाज की सचेत नारियों से नारी सम्बन्धित विषयों को बार-बार उठाने का आह्वान भी करता दिखाई देता है।

वर्तमान समय का पंजाब का हिंदी कवि वृद्ध जीवन से सम्बन्धित अकेलेपन, बोरियत, मौन या संवादहीनता की समस्या का हल सुझाते हुए समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है और युवा पीढ़ी को उसके कर्तव्यबोध का एहसास दिलाता है। पर्यावरण-प्रकृति की रक्षा-सुरक्षा सम्बन्धी विषयों को उठाते हुए पंजाब का कवि मनुष्य को रुकने, देखने और संभलकर चलने की सलाह देता दिखाई देता है। वह समाज को चेताता है कि उसे 'माँ' रूपी प्रकृति की सन्तान बनकर रक्षा करनी होगी, तभी इस समस्या से निजात पाया जा सकता है।

पंजाब का वर्तमान कवि मनुष्य को धर्म के संकीर्ण अर्थ के स्थान पर व्यापक अर्थ को अपनाने के लिए कहता दिखाई देता है। यदि सभी धर्म सामंजस्य और सहभागिता की नीति को अपना लें तो यह सांप्रदायिक तनाव व लड़ाइयाँ स्वयंमेव समाप्त हो जाएँगी। सांस्कृतिक समस्याओं से निजात पाने के लिए पंजाब का वर्तमान हिंदी कवि व्यक्ति को अपनी शास्वत भारतीय संस्कृति को पहचानने और अपनाने के लिए आह्वान करता है। रीति-रिवाजों की अनुपालना में समझ और विवेक के इस्तेमाल पर ज़ोर देता है। बाज़ार से दूर रहते हुए लोक में निर्मित वस्तुओं को प्राथमिकता से अपनाने के लिए प्रेरित करता है।

अंततः शोध-प्रबंध की पूर्ति के लिए निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति व्यवस्थित तरीके से सम्पन्न होती है।

हमारे दैनिक जीवन में अक्सर लोग यह कहते हुए पाए जाते हैं कि समाज में जो कुछ हो रहा है उसे साहित्य में दिखाने या अभिव्यक्त करने में असमर्थ है। इसे आप इस तरह भी समझ सकते हैं कि साहित्य में जो दिखाया जाता है वह अक्सर समाज में पाया नहीं जाता है। इस स्थिति को परखने के लिए हमने विभिन्न माध्यमों का अध्ययन किया। विभिन्न माध्यमों में उठाई गयी समस्याओं को देखने-परखने के बाद उनसे जुड़े निष्कर्ष निकालने के लिए चयनित संग्रहों का अध्ययन किया गया। ऐसा करते हुए यह देखा और पाया गया है कि कविता में वही कुछ अभिव्यक्त किया गया जो समाज में वर्तमान है। कोई भी कवि सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए कम से कम कल्पना मात्र के सहारे कुछ नहीं लिख सकता। यदि कुछ होगा तभी वह बोलेगा अन्यथा उसकी विश्वसनीयता खत्म हो जाएगी। यह परखने के लिए व्यावहारिक अध्ययन किया गया और पाया गया कि सब कुछ वही घटित हो रहा जो साहित्य या कविताओं में दिखाया गया है। हम यह भी कह सकते हैं कि कवि एवं कविता द्वारा वही अभिव्यक्त हुआ है जो यथार्थ समाज में घटित हुआ है। विषयों और घटनाओं के लिए अख़बारों, पत्र-पत्रिकाओं, टी.वी. चैनलों से लेकर रेडियो आदि तक का सहारा लिया गया।

इस तरह कहा जा सकता है कि सामाजिक यथार्थ के सन्दर्भ में इक्कीसवीं सदी के पंजाब की हिंदी कविताओं में 'समाज' का जीवंत चित्रण हुआ है जिसके अंतर्गत इस शोध-प्रबंध में यथार्थ को ठीक तरीके से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

भावी शोध संकेत

1. आर्थिक यथार्थ के सन्दर्भ में इक्कीसवीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

2. राजनीतिक यथार्थ और पंजाब की इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता

3. आर्थिक परिवर्तन का स्वरूप और पंजाब की इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता

4. बाज़ार का तन्त्र और इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता

5. पर्यावरण-प्रकृति का बदलता स्वरूप और इक्कीसवीं सदी की पंजाब की हिंदी कविता

6. साम्प्रदायिकता का संकट और पंजाब की हिंदी कविता

7. पंजाब की हिंदी कविताओं में वैयक्तिक यथार्थ की अभिव्यक्ति

8. सांस्कृतिक परिवर्तन का स्वरूप और पंजाब की हिंदी कविता

9. पंजाब की हिंदी कविताओं में मानव-मूल्यों का विवेचनात्मक अध्ययन

10. भाषा शैली की दृष्टि से पंजाब की हिंदी कविताओं का अध्ययन

11. पंजाब की हिंदी कविताओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ:

- कौंके,अमरजीत. *अंतहीन दौड़.* प्रतीक पब्लिकेशनज, 2006.
- कौंके,अमरजीत. *बन रही है नई दुनिया.* बोधि प्रकाशन, 2014.
- जैन,सीमा. *मोम के पंख.* दीपक पब्लिशर्ज, 2006.
- जैन,सीमा. *धूप-छाँव.* एक्सीलेंट पब्लिशिंग हाउस, 2013.
- दर्शन,शुभ. *संघर्ष बस संघर्ष.* युक्ति प्रकाशन, 2011.
- दर्शन,शुभ. *संघर्ष के ज़ख़्म.* अंकुर प्रकाशन, 2017.
- नायक,सुरेश. *रंग आ जाते हैं!.* ट्वेंटी फर्स्ट सेंचरी पब्लिकेशन, 2012.
- नायक,सुरेश. *शिकायत किए बिना.* ट्वेंटी फर्स्ट सेंचरी पब्लिकेशन, 2007.
- प्रभा,शशि. *बहुत कुछ अनुत्तरित.* अयन प्रकाशन, 2011.
- प्रभा,शशि. *संधि रेखा पर खड़ी मैं.* अयन प्रकाशन, 2013.
- प्रभा,शशि. *धरती यह.* महेंद्रा कैपिटल पब्लिशर्ज, 2018.
- सपरा,मोहन. *समय की पाठशाला में.* आस्था प्रकाशन, 2012.
- सपरा,मोहन. *रक्तबीज आदमी है.* आस्था प्रकाशन, 2017.

संदर्भ हिंदी ग्रंथ

- कमलेश्वर. *नई कहानी की भूमिका.* अक्षर प्रकाशन, 1969.
- कुमार सुवास. *गल्प का यथार्थ कथालोचन के आयाम.* वाणी प्रकाशन, 2010.
- केवालिया,मदन. संपा. *पाश्चात्य साहित्य शास्त्र की भूमिका.* संस्करण प्रथम, अनुपम प्रकाशन,1962.
- कौर,जसपाल. *संतकाव्य के धार्मिक दार्शनिक चेतना का आधुनिक सामाजिक सन्दर्भ* (अप्रकाशित शोध-प्रबंध) हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, 2006.
- खेतान, प्रभा. "स्त्री विमर्श के अंतर्विरोध" .*हंस.* सं. राजेन्द्र यादव अक्टूबर 1969.
- गुप्ता, रमणिक संपा. *युद्धरत आम आदमी.* पूर्णांक 108, 2011.
- ठाकुर,देवेश. *साहित्य की सामाजिक भूमिका.* अरविंद प्रकाशन, 1986.
- त्यागी,डॉ. सुमित्रा.*स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवनदर्शन.* साहित्य प्रकाशन, 1978.
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *विचार-प्रवाह.* राजकमल प्रकाशन, 2003.
- नगेंद्र. *साहित्य का समाजशास्त्र.* दिल्ली पब्लिशिंग हाउस, 1982.
- पांडेय,मैनेजर. *साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि.* आधार प्रकाशन, 2018.
- प्रकाश,उदय. *नयी सदी का पंचतन्त्र.* वाणी प्रकाशन, 2012.

- प्रसाद,ईश्वरी, व शैलेन्द्र शर्मा. *प्राचीन भारतीय संस्कृति कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन.* मीनू पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, 1980.
- मिश्र,डॉ. श्याम सुंदर. *अस्तित्ववाद और साहित्य.* पंचशील प्रकाशन, 1984.
- मिश्र,रामदरश. *हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा.* राजकमल प्रकाशन, 2016.
- मिश्र,शिवकुमार. *यथार्थवाद.* वाणी प्रकाशन, 2009.
- मिश्र,भगीरथ. *हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास.* विश्व विद्यालय, सं. २००५ वि.
- मुक्तिबोध,गजानन माधव. *नयी कविता का आत्मसंघर्ष.* राजकमल प्रकाशन, 2018.
- राजपाल,हुकुमचंद. *पंजाब की समकालीन हिंदी कविता.* बिटवीन लांइज, 2015.
- राय, कुबेरनाथ. *मराल.* भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण 2008.
- राय,सर्वजीत.*हिंदी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद.* लोकभारती प्रकाशन, 1993.
- रेणु,राकेश. *आंबेडकर ने कहा था.* सू० एवं प्र० मंत्रालय, 1991.
- लिम्बाले,शरण कुमार. *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र.* वाणी प्रकाशन, 2012.
- वर्मा,महादेवी. *संस्कृति के स्वर.* राजपाल एंड संस, वि.सं. 2040.
- वर्मा,विश्वनाथ प्रसाद. *राजनीति और दर्शन.* सम्मेलन भवन बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1956.

- शर्मा,डॉ.चरणसखी. *तुलसी-काव्य में धर्म और आचरण का स्वरूप.* प्रवीण प्रकाशन, 1984.
- शर्मा,दामोदर, व हरिश्चन्द्र व्यास. *आधुनिक जीवन और पर्यावरण* . प्रभात प्रकाशन, 2007.
- शर्मा,राधेश्याम. *भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक चेतना.* एन. आर. बुक्स, 2008.
- शुक्ल,रामचंद्र. *हिंदी साहित्य का इतिहास.* कमल प्रकाशन, 2008.
- शोभा,डॉ. सावित्री चन्द्र. *समाज और संस्कृति.* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1976.
- श्रीवास्तव,शिवशंकर. *भारतीय संस्कृति.* शारदा पुस्तक भवन, छठा संस्करण 2018.
- सत्यकाम. *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद.* राधाकृष्ण प्रकाशन, 1994.
- सिंह,अजब. *यथार्थवाद: पुनर्मूल्यांकन.* विश्व विद्यालय प्रकाशन, 1998.
- सिंह, प्रभाकर. *आधुनिक साहित्य : विकास और विमर्श.* प्रतिश्रुति प्रकाशन, 2018.
- सिंह,बच्चन. *आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन, 2016.
- सिंह,त्रिभुवन. *हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद.* हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, 1955.
- सुषमा,विजय. *साहित्य और यथार्थ.* वाणी प्रकाशन, 2017.

संदर्भ अंग्रेजी ग्रंथ

- Cooley. *The Social Process*. Southern Illinois University Press, 1966.
- Davis,Kingsle. *Human Society*. The Macmillan Company, 1949.
- Fischer,Ernst. *The Necessity of Art*. Penguin Putnam Mass, 1970.
- Giddings. *Principles of Sociology*. Cosmo Publications, 2004.
- Lukacs,Georg. *Studies in European Realism*. The Merlin Press ltd,1975.
- Maciver,R.M. *Society - An Introductory Analysis*. Macmillan Publishers India limited, 1981.
- Reuters. *Handbook Of Socilogy* . The Dryden Press, 1941.
- Sills,David L. *International Encyclopedia of Social Sciences*. The Macmillan Company : The Free Press, 1979.

हिंदी कोश ग्रंथ

- पाठक,रामचंद.संपा. *भार्गव आदर्श हिंदी शब्दकोश*. भार्गव बुक डिपो प्रकाशक,1952
- प्रसाद,कलिका. संपा. *वृहत् हिंदी कोश*. ज्ञान मंडल लिमिटेड, 2001.
- बसु,नगेंद्रनाथ.संपा. *हिंदी विश्वकोश (तेइसवांभाग)*. बी.आर.पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, 1986.
- रसाल,रमाशंकर शुक्ल.संपा. *भाषा-शब्द-कोश*. रामनारायण प्रकाशन, तृतीय संस्करण 1951.

- वर्मा,रामचंद्र.संपा. *लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश.* संस्करण पहला, लोकभारती प्रकाशन, संवत २००७ वि०
- वर्मा,रामचंद्र.संपा. *मानस हिंदी कोश (खंड-2).* हिंदी साहित्य सम्मेलन, संवत 2019.
- *. विशाल शब्द सागर.* आदीश बुक डिपो, 1985.

अंग्रेजी कोश ग्रंथ

- Bulke,Kamil. *An English Hindi Dictionary*. Sanskriti Prakashan, 2003.
- Webster. *New Dictionary Of The English language* . Merriman Webster, 2005.

वेबपोर्टल

- streekaal.com
- bharatdiscovery.org
- hindisamay.com
- hindi.indiawaterportal.org
- amarujala.com
- hindi.news18.com
- timesofindia.com
- hindi.asianetnews.com
- punjab.gov.in
- jagran.com

परिशिष्ट -

- साक्षात्कार
- प्रश्नावली
- शोध आलेख
- सम्मेलन सहभागिता

साक्षात्कार: डॉ. संजय चौहान

परिचय:

- जन्म : 12 जनवरी,1976
- शिक्षा : एम.ए.,पीएच.डी. (हिंदी)
- संप्रति : सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सरूप रानी राजकीय महिला महाविद्यालय, अमृतसर।
- लेखन : समकालीन साहित्यः विचार और विमर्श,
  आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता और हिंदी उपन्यास
  सैद्धांतिक और सर्जनात्मक आलोचक डॉ. 'शीतांशु' (सम्पादक)
  महेन्द्र भटनागर की कविता संवेदना और सर्जना(सह-सम्पादक)
  कथा कहो उर्वशी बनाम राजी सेठ का कथा-कर्म (सह-सम्पादक)
- सम्मान : राष्ट्रभाषाचार्य सम्मान(2008) ,
  ज्योतिबा फुले फेलोशिप सम्मान (2009)

1. आपकी दृष्टि में साहित्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए? क्या उन उद्देश्यों की पूर्ति वर्तमान लेखन में दिखाई दे रही है? यदि हाँ, कैसे और यदि ना तो क्यों?

उत्तरः साहित्य का उद्देश्य समाजोन्मुखी होना चाहिए। व्यक्ति निर्माण, चरित्र निर्माण के साथ ही लोक कल्याण एवं लोक मंगल की भावना में ही साहित्य की सार्थकता निहित है। कल्पना से इत्तर यथार्थ के धरातल पर सृजित साहित्य ही

समकालीनता, समसामायिकता को व्यक्त करने में समर्थ हो सकता है। सतसाहित्य की गुणवता ही एक स्वच्छ-समृद्ध समाज के निर्माण में सार्थक योगदान दे सकती है। समाज में घटित पल-प्रतिपल की घटनाओं को साहित्य ही तो व्यक्त करता है। वर्तमान लेखन भी इन उद्देश्यों से पृथक नहीं है। सामायिक विमर्शों, आन्दोलनों, चिन्तन से प्रभावित होकर रचनाकार अपनी रचनाशीलता को नियमित रखता है। हाँ, यह भी सच है कि वर्तमान में व्यक्ति, समाज और साहित्य की माँगों के स्वरूप में बदलाव आया है। पंजाब के साहित्य में समष्टि के ऊपर व्यष्टि की धारणा बलवती दिखती है। निज सुख एवं वैचारिकता सर्वोपरि है। फिर भी रचनाकार अपनी वैचारिकता के अनुरूप व्यक्ति और समाज को केन्द्र में रख साहित्य का सृजन कर रहा है। संदर्भ अवश्य बदले हैं, परन्तु उद्देश्य समाज सापेक्ष ही है। परन्तु सोद्देश्यता सीमित हो गई है।

2. कविता लेखन के लिए आज के समय में किन चीजों की जरूरत है? पहले कविता हृदय की भावनाओं की अभिव्यक्ति हुआ करती थी। अब उसमें दिमाग भी लगाया जाने लगा है, क्या आपको ऐसा लगता है?

उत्तरः कविता लेखन हेतु कथ्य, चिन्तन, मनन और लेखन की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। पंजाब की धरती ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध प्रांत है। फिर भी आज पंजाब का कवि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक पात्रों और घटनाओं में रूचि कम ले रहा है। भौतिकतावादी जीवनशैली वर्तमान साहित्य एवं सर्जक पर हावी है। साहित्य सृजन से पूर्व ही पुरस्कार प्राप्ति की कालगणना होने लगती है। भाव-शून्यता की प्रबलता सर्वत्र विद्यमान है। यह सच है कि पहले कविता भावना

जनित घटनाओं, क्षेत्रों एवं पात्रों पर केन्द्रित हुआ करती थी, परन्तु कालक्रम के अनुसार इसमें बदलाव आया है। आधुनिकता, उत्तर आधुनिकतावादी चिन्तन और परिवेश में बुद्धि ने भावना को स्थानांतरित किया है। इसके प्रभाव के कारण कवि भावना की अपेक्षा यथार्थ के धरातल पर अपनी बौद्धिकता का प्रयोग करते हुए कविता की रचना कर रहा है। मन पर बुद्धि का आधिपत्य हो गया है। प्रेम भावनाजनित न रहकर स्वार्थ आधरित हो गया है। दाम्पत्य प्रेम और वात्सल्य प्रेम में प्रतिद्वंद्विता की भावना जागृत हुई है। आज का कवि इससे अलग नहीं है। साहित्य में अर्थतंत्र का हस्तक्षेप एवं प्रभाव नियमितता से बढ़ा है। समकालीनता के प्रभाव में आकर इस कालखण्ड में घटित घटनाओं और व्यवहारों को केन्द्र में रख पंजाब के कवियों ने अपनी सर्जना को पूरा किया है। इतना होने के बावजूद पंजाब के साहित्य में और साहित्यकारों की धारणाओं और मान्यताओं में बदलाव आया है। साहित्य कर्म को प्रचार तंत्र ने बाधित किया है। कुछ लोग चन्द कविताओं को लेकर अपना प्रचार-प्रसार कर रहे हैं तो कुछ पुराने को नयापन देने में प्रयासरत और कुछ सर्जक धरातल से जुड़कर मानवीय संवेदना को अभिव्यक्ति दे रहे हैं। पंजाब की हिंदी कविता को ऐसे रचनाकार की आवश्कता है।

3. क्या आज की कविताओं का मूल्यांकन काव्यशास्त्रीय दृष्टि से करना संभव है? मुक्त छंद के होते हुए भी?

उत्तरः काव्यशास्त्र की कसौटी पर आज की कविता पूर्णतः खरा नहीं उतरती। इसके कई कारण हैं। वर्तमान समय में प्रबन्ध काव्य या खण्डकाव्य का लेखन मृतप्राय हो गया है। मुक्त छंद के प्रति सर्जक और पाठक का झुकाव अधिक है। अतएव काव्यशास्त्रीय मानकों की नियमावली को रचनाकार स्वयं को स्वच्छन्द रखना चाहते

हैं। काव्य हेतु चयनित विषय वस्तु के प्रति लगाव, श्रम साधना एवं बहुज्ञता के साथ समर्पित साहित्य साधना का होना आवश्यक है। इससे आज के बहुतायत रचनाकारों का दूर-दूर तक का कोई नाता नहीं। अधिकांश रचनाकार मुक्त छन्द या फुटकल कविताओं के माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति कर रहे हैं। हाँ, सोद्देश्यता की बात करें तो प्रत्येक रचना अपनी सार्थकता एवं महत्ता रखती है। पंजाब के समकालीन कवियों की भी यही स्थिति है। प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्त छंद एवं शैली में काव्य लेखन की परंपरा ही आगे बढ़ी है। अतः पंजाब की समकालीन हिंदी कविताओं का काव्यशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन करना आंशिक रूप से ही संभव है।

4. आप लंबे समय से पंजाब की हिंदी कविता पर कार्य कर रहे हैं। बीसवीं शताब्दी से लेकर आज तक क्या कुछ परिवर्तन दिखाई दिया है। आपको?

उतरः पंजाब की हिंदी कविता बीसवीं सदी से अब तक विस्तृत फलक पर लिखी गई है। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर रचनाकारों ने काव्य की रचना की है। पंजाब की कवि परंपरा विशाल है, जिन्होंने हिंदी कविता को दूर-दूर तक विस्तार दिया है। आधुनिक काल के विभिन्न वादो और आन्दोलनों से सम्बद्ध कविताएँ इस भूमि से निकली है। स्वतंत्रता आंदोलनों से लेकर देश की आज़ादी और उसके बाद भी रचनाकारों ने ऊर्जा एवं उत्साह के साथ काम किया है। पंजाब के कलुषित काल एवं आंतकवाद से भी प्रभावित होकर कवियों ने काव्य सृजन किया है। इस कालखण्ड के बहुतायत कवियों ने हृदयविदारक घटनाओं एवं भयावह वातावरण का यथार्थ चित्रण किया है। आतंक के वातावरण में कराहती मानवीय संवेदना कविता के मूल रूप से व्यक्त हुई है। बीसवीं सदीं के उतरार्द्ध और इक्कीसवीं सदी में जो रचनाकार लिख रहे हैं उनके चयनित कथ्य एवं अभिव्यक्ति में बदलाव आया है। उत्तर आधुनिक

काल में विमर्शों की माँग में बदलाव आया है। वे कुछ हद तक आत्मनिष्ठता के भाव से ग्रसित दिखते हैं। हाँ, युवा कवि नये उत्साह एवं नये कलेवर के साथ आगे बढ़ रहा है। आयातित बाधाओं से संघर्षरत है। समकाल में कविता के कथ्य में बदलाव आया है। काव्य कला के स्थान पर नये-नये विमर्शों एवं घेरावादियों का वर्चस्व कायम हो रहा है। इन घेरावादियों से कविता को स्वतंत्र रखने की आवश्यकता है।

5. पारिवारिक मूल्यों को बचाने में पंजाब की हिंदी कविता किस तरह कार्य कर रही है?

उत्तरः पारिवारिक मूल्यों के संदर्भ में बात करें तो मेरा मानना है कि पंजाब की धरती धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्धशाली है। जिसका प्रभाव यहाँ के व्यक्ति, समाज के साथ-साथ साहित्य पर प्रत्यक्ष-परोक्ष दोनों रूपों में पड़ा है। यही नहीं सिक्ख गुरु परंपरा में तो वैश्विक स्तर पर अपना प्रभाव छोड़ा है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि देश विभाजन का सर्वाधिक असर पंजाब पर ही पड़ा है। हज़ारों परिवारों को अपनी ज़मीन जायदाद से अलग होना पड़ा है। अपनों के बिछुड़ने की असहनीय पीड़ा यहाँ की जनमानस ने झेली है। जिसका स्पष्ट स्वर यहाँ से रचित साहित्य एवं सम्बद्ध साहित्यकारों की रचनाओं में सुना जा सकता है। परंतु मैं आपसे बिना किसी पूर्वाग्रह के कहना चाहता हूँ कि वर्तमान में पंजाब के पारिवारिक मूल्य तथा जीवनशैली में अत्याधिक बदलाव आया है। पश्चिमी चकाचौंध कर देने वाली जीवनशैली ने पंजाब की युवा पीढ़ी को प्रभावित एवं आकर्षित किया हुआ है। युवाओं के विदेशों में पलायन जारी है। परिणामस्वरूप पारिवारिक अलगाव का संकट उत्पन्न हो रहा है। पंजाब में रचित अनेक कविताओं में उस पीड़ा की भावात्मक अभिव्यक्ति हुई है, साथ ही रचनाकार सकारात्मक ढंग से इस समस्या के समाधान का प्रयास कर

रहे हैं। संबंधगत बदलाव के साथ ही एकल परिवार के प्रति बढ़ते रुझान को यहाँ की कविता व्यक्त करती है।

6. पर्यावरण प्रदूषण के प्रति पंजाब की हिंदी कविता कितनी जागरूकता लाने में समर्थ है? क्या इस क्षेत्र में आपको कुछ निराशा हाथ नहीं लगती? मुझे तो एहसास होता है कि इस क्षेत्र में बहुत कम काम हुआ है?

उत्तरः यह सर्वविदित है कि पंजाब कृषि प्रधान राज्य है साथ ही औद्योगिक भी। भौगोलिक दृष्टि से सुन्दर और आकर्षक भी। पर जब पर्यावरण प्रदूषण की बात करते हैं तो पंजाब इस क्षेत्र इस में भी अग्रणीय है। फसल कटाई के पश्चात खेतों में आग लगाना, अधिक उत्पादन हेतु अधिकाधिक रासायनिक खादों का प्रयोग करना जैसे अनेक कारण है जिससे पर्यायवरण दूषित एवं असंतुलित हो रहा है। अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि पंजाब की हिंदी कविता वीरता, साहस और त्याग की बात तो करती है पर पर्यावरण के विषय में चुप है। किसान और किसानी की बात करती है परन्तु कराहती धरती, विषैले दमघोटू वायु की बात नहीं करती। सुखते जल स्त्रोतों पर लेखनी मौन है। सौंदर्यीकरण के नाम पर कटते असंख्य पेड़ों की बात होनी चाहिए। दरकते पहाड़ों पर बात होनी चाहिए। निश्चित रूप से इस क्षेत्र में लेखन कम हुआ है।

7. क्या आपको पंजाब की हिंदी कविता में समकालीन विमर्शों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है? खासकर दलित और स्त्री विमर्श के मायने में?

उत्तरः समकालीन हिंदी कविता में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श जैसे विमर्शों की चर्चा-परिचर्चा जोरों पर है। चिन्तन, सर्जन, विवेचन

जारी है। जहाँ तक प्रश्न है पंजाब की समकालीन हिंदी कविता में दलित और स्त्री विमर्श की मेरी दृष्टि में पंजाब के हिंदी कथा साहित्य में दलित विमर्श मुख्य केन्द्र में हुआ करता था। उनकी दयनीय स्थिति, सामाजिक उपेक्षा को अनेक कथाकारों ने मुखरता से उठाते हुए महत्त्वपूर्ण साहित्य की रचना की। परन्तु समकालीन हिंदी कविता में इसका अभाव दिखता है। हाँ, जहाँ तक स्त्री विमर्श की बात है तो इससे सम्बद्ध अनेक रचनाकारों द्वारा काव्य लेखन हो रहा है। वरिष्ठ एवं युवा कवियों ने भी इसके रूचि दिखायी है। ऐतिहासिकता तथा सामाजिकता के अतिरिक्त जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए काव्य सृजन हो रहा है। पंजाब की कविताओं में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों चिंतनों को आधार बनाकर स्त्री विषय कविताएँ सृजित हो रही हैं। ऐसे रचनाकारों की लंबी सूची है। जिनके काव्य में स्त्री विमर्श को अभिव्यक्त हुआ है।

8. पंजाब की कविता को आलोचक नहीं मिल रहे है? ऐसा अक्सर सुनाई दे रहा है, क्या आपको भी लगता है?

उत्तरः पंजाब की आलोचकीय परंपरा समृद्धशाली रही है। जिसकी ख्याति हिंदी जगत में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैली है। रही बात पंजाब की कविता को आलोचकों का न मिलना। मेरी धारणा इसके विपरीत है। यह एक छलावा है। कुछ लोगों द्वारा फैलाया गया भ्रमजाल। प्रश्न यह है कि किस कविता के लिए आलोचक नहीं मिल रहा। आखिर क्यों? वह कौन-सी कविता है जो अपनी आलोचना प्रतिआलोचना के लिए साहित्य विवेकी आलोचक को अपनी ओर स्वतः आकर्षित करती है। वह कविता पंजाब की हदबन्दी को तोड़ राष्ट्रीय स्तर पर अपनी चर्चा हेतु साहित्य प्रेमियों व आलोचकों को बाध्य क्यों नहीं करती। एक अन्य पक्ष यह भी है कि

आलोचन कर्म हेतु चिन्तन-मनन, स्वाध्ययन की आवश्यकता होती है। समय-दर-समय स्वयं को मांजने एवं परिमार्जित करने की आवश्यकता होती है। जिसका प्रायः पंजाब के साहित्यकार वर्ग, विशेषकर आलोचना के क्षेत्र में अभाव है। यह भी सत्य है कि पाण्डेय शशिभूषण, गीतांशु, विनोद शाही जैसे स्थापित चर्चित आलोचक है, जो निरंतर आलोचन कर्म में सक्रिय हैं। परन्तु पंजाब की हिंदी कविता उनसे भी अछूती-सी है। कुछ साहित्यकारों द्वारा इस दिशा में कार्य किया जा रहा है। परन्तु वह आलोचना कम समीक्षा अधिक है। ऐसा करना बहुत हद तक उनकी विवशता भी है, क्योंकि जब कवि अपनी कविता की समीक्षा या आलोचना हेतु आग्रह करता है तो वहाँ समीक्षक या आलोचक एक दूसरे में बंध जाते हैं। फिर देखा जाता है कि साहित्य के प्रति उसकी पारखी दृष्टि नीर-क्षीर विवेकी न रहकर प्रशस्तिगान करने लगता है। कुछ नये आलोचक अपनी सामर्थ्य और गुणवता के बल पर साहित्य जगत में अपना स्थान बनाने का प्रयास कर रहे हैं। परन्तु उन्हें अनेक बंदिशों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। उसका स्वतंत्र चिन्तन एवं आलोचन कार्य बाधित होता है। एक पक्ष और भी है। आलोचना जैसे श्रम साध्य कार्य की अपेक्षा अधिकांश युवा साहित्यकार काव्य सृजन तथा लघुकथा के क्षेत्र में हाथ आजमा कर शीघ्रातिशीघ्र चर्चा के केन्द्र में रहना चाहते हैं। यह मिथ्या प्रचार है कि पंजाब की हिंदी कविता में आलोचक नहीं है। समर्थ कवि एवं कविता की आवश्यकता है। युवा आलोचकों में एक नाम डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय जिसके पास दृष्टि है और सामर्थ्य भी। भारत के विभिन्न पत्रिकाओं में इन्हें छापा जा रहा है।

9. युवा कवियों की लेखनी में आप किस तरह का उत्साह और निराशा देख रहे हैं। इस समय की चक्रव्यूह में उनकी लेखनी यथास्थितिवाद की तरफ जा रही है या फिर परिवर्तन और क्रांति की तरफ?

उत्तरः पंजाब के युवा कवियों में उत्साह है और सामर्थ्य भी। परंतु संकट भी कम नहीं। युवा कवियों के काव्य कला और सृजन से कुछ चन्द छत्रपों का सिंहासन डोलने लगता है। कविता जगत पर एकाधिकार की नियति वाले इन छत्रपों फिर षड़यंत्र प्रारंभ होता है। पद, सम्मान के सतरंगी चक्रव्यूह में युवाओं की काव्य कला और उत्साह को घेरने का प्रयत्न प्रारंभ होता है। अलग-अलग शिविरबंदी में बांधने का प्रयास होता है। ऐसी स्थिति में नुकसान कवि के साथ-साथ कविता का भी होता है। मैं एक और भी स्थिति को देखता हूँ। जिस कवि की कुछ रचनाएँ पत्रिकाओं में हो जाती हैं, फिर वह अपने कवि होने का दंभी परिचय देता हुआ बड़े-बड़े सम्मानों की जुगाड़बंदी में लग जाता है। मेरा मानना है कि इससे उसकी काव्यधारा बाधित होती है। कवि के बजाय उसकी कविता को साहित्य समाज के सम्मुख अपना परिचय देना चाहिए। आलोचक स्वयं उसकी ओर आकर्षित हो। जिसका प्रायः अकाल दिखता है। फिर भी मैं पंजाब के युवा हिंदी कवियों एवं उनकी कविता के प्रति नैराश्य का भाव नहीं रखता, कारण है कि अनेक युवा समर्पित कवि है जो तन्मयता, कर्मठता एवं मनोयोग से काव्य कर्म में लगे हैं। उनका सार्थक प्रयास काव्य जगत में परिवर्तन लायेगा।

10. महिला लेखन के प्रति आपका दृष्टिकोण क्या है? किस तरह की कविताएँ उनकी लेखनी से निकलकर आ रही है? वह आरोपवाद से बाहर भी निकलती है या नहीं?

उत्तरः महिला लेखन को मैं सकारात्मक दृष्टिकोण से देखता हूँ। पंजाब की कवयित्रियों ने दशकों से वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनायी है। यहाँ के महिला लेखन में विविधता है। पूर्व रचनाकारों में देश बंटवारे, अपनी ज़मीन से बिछुड़ने का दर्द है तो समकालीन सर्जकों में सामाजिक विसंगतियों के साथ-साथ विदेशों की ओर पलायन करती युवा पीढ़ी के अलगाव, घुटन, तड़प और अफसोस का भी। सम्पन्नता में साधिकार जीवनशैली का चित्रण भी है तो कामकाजी स्त्री की व्यस्तता और खेतों में काम करती स्त्री की विवशता और लाचारी भी। महानगरीय स्वच्छन्द उड़ान है तो ग्रामीण जीवन की बंदिशें और शोषण भी। जहाँ तक आरोपवाद का प्रश्न है तो महिला लेखन में भारतीय और पाश्चात्य चिन्तन और मानसिकता साथ-साथ चलती है। अधिकतर महिला रचनाकार भारतीय जीवन मूल्यों को जीवंत करते हुए अपने मान-सम्मान अधिकार की माँग करती हैं। तो कुछ रचनाकार पाश्चात्य स्त्रीवादी चिन्तन और पश्चिमी जीवनशैली को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान कर अपने अधिकारों की माँग करती हैं।

साक्षात्कार: राजेश्वर वशिष्ठ

परिचय:

जन्म-तिथि : 30 मार्च, 1958, भिवानी हरियाणा।

• हिंदी साहित्य के क्षेत्र में पहचान।

• सात कविता संग्रह तथा चार उपन्यास प्रकाशित।

• सुनो वाल्मीकि कविता संग्रह को हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा 2015 का श्रेष्ठ काव्य कृति सम्मान मिला।

• अगस्त्य के महानायक श्रीराम काव्य पुस्तक पर अखिल हिंदी साहित्य सभा द्वारा 2018 का साहित्य आराधना सम्मान।

• आकाशवाणी रोहतक में 1978-80 तक उद्घोषक के रूप में सेवा। प्रिंट मीडिया, डिजिटल मीडिया और संचार माध्यमों से जुड़ाव। एक स्थानीय रेड़ियो स्टेशन के साथ सलाहकार के रूप में संबद्ध ।

• सार्वजनिक क्षेत्र के एक बैंक से 2018 में कार्यपालक पद (मुख्य प्रबंधक) से सेवा निवृत्त।

1. सर्वप्रथम मैं आपसे पूछना चाहूँगी कि औपचारिक शिक्षा से अलग किस वजह से, ऐसी क्या परिस्थितियाँ बनी कि आपका रुझान लेखन की ओर बढ़ा और आप लेखक बन गए?

उत्तर– मेरा बचपन बड़े एकांत में कटा। मेरे नाना ने मुझे गोद ले लिया था। मैं ननिहाल में रहता था और उन्हें वहाँ, हर समय भय लगा रहता था कि यदि मैं मुहल्ले के लड़कों के साथ खेलूँगा तो गालियाँ देना सीख जाऊँगा, बिगड़ जाऊँगा या किसी दुर्घटना का शिकार हो जाऊँगा। गर्मी के दिनों में स्कूल से लौटने के बाद बहुत सारा समय होता था। स्कूल से मिला होम-वर्क भी चार बजते-बजते निपट जाता था। इन्हीं परिस्थितियों में नाना जी के एक मित्र ने मुझे व्यस्त रखने के लिए सुझाव दिया कि मुझे म्युनिसिपल लाइब्रेरी का सदस्य बन जाना चाहिए और वहाँ से साहित्यिक पुस्तकें लेकर पढ़नी चाहिए। मुझे यह सुझाव भला लगा। एक दिन दोपहर बाद जब मैं पहली बार लाइब्रेरी गया तो मुझे वहाँ देख कर सभी लोग चकित थे। वहाँ आमतौर पर बुज़ुर्ग लोग अख़बार और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने के लिए आते थे। वे जानना चाहते थे कि मैं किस कक्षा का विद्यार्थी हूँ, और कैसी पुस्तकें पढ़ना चाहता हूँ? मैंने बताया कि मैं पाँचवी कक्षा में पढ़ रहा हूँ और हिंदी विषय में मेरी रूचि अधिक है। घर पर मिल जाने कारण मैं बाबू देवकीनंदन खत्री लिखित चंद्रकांता संतति के कई भाग और भूतनाथ पढ़ चुका हूँ। उनकी प्रतिक्रिया कुछ सुखद नहीं थी, शायद ऐसी कि तुम्हारी उम्र के बच्चे को वैसा साहित्य नहीं पढ़ना चाहिए। एक सज्जन ने सुझाव दिया कि मुझे अब वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों से शुरु करना चाहिए। और फिर मैं, मृगनयनी, कचनार, झांसी की रानी, महारानी दुर्गावती और गढ़ कुंढार आदि पढ़ने लगा। यह क्रम आगे बढ़ा तो आचार्य चतुरसेन और शिवानी को पढ़ लिया। आगे के वर्षों में अमृता प्रीतम, यशपाल और भगवती चरण वर्मा से होते हुए मैं अज्ञेय तक पहुँचा।

1974 के वर्ष में, मैट्रिक परीक्षा के बाद की छुट्टियों में मैं महाकवि निराला और रामधारी दिनकर के संग्रहों से गुज़रा और कविता मुझमें बसने लगी। कुछ छोटी-छोटी छंदोबद्ध कविताएँ भी लिखीं। मैट्रिक पास करने के बाद साहित्य सेवन का यह सिलसिला दो सालों तक बंद हो गया क्योंकि मेरे बीमार रहने वाले नाना मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे। उसी आधार पर जैसे, उन दिनों झगड़ा, मारपीट करने वाले लोग हरियाणा-पंजाब में, अपने एक बेटे को वकील जरूर बनाते थे ताकि जमानत वक्त पर हो जाए। डॉक्टर मैं नहीं बन पाया। घरवालों की इच्छाओं पर कुठाराघात करते हुए मैंने आर्ट्स संकाय में दाखिला ले लिया और सायकलोजी (आनर्स) का विद्यार्थी बन गया। अब मेरे पास साहित्य पढ़ने के लिए खूब समय था। वैश्य कॉलेज के लाइब्रेरियन मुझ पर मेहरबान थे और बी. ए. करते-करते मैंने बहुत सारा हिंदी साहित्य पढ़ लिया था। इन्हीं परिस्थितियों में मेरे भीतर का कवि-लेखक जागृत हुआ था।

2. जैसे फैसला देते समय जज के अपने संस्कार उसके निर्णय को प्रभावित करते हैं क्या वैसे ही कवि के अपने संस्कार, पूर्वाग्रह विचारधारा, उसके मन की स्थिति, देश काल का वातावरण कृति को प्रभावित करते हैं? कविता की तटस्थता को सबसे ज्यादा क्या प्रभावित करता है? एक कवि तटस्थ रहते हुए गंभीर काव्य की रचना किस प्रकार कर सकता है?

उत्तर– फैसला देते समय जज को अपने संस्कारों पर नियंत्रण रखना होता है, संस्कार ही किसी को हिंदु, मुसलमान या ईसाई बनाते हैं। ऐसे में जज का विधिक अध्ययन और सामाजिक समझ ही उसके काम आती है। हालांकि सामाजिक समझ कभी-कभी राजनीतिक भी हो जाती है और जजों को भी भर्त्सना का शिकार होना पड़ता है।

साहित्य कानून की तरह सुपरिभाषित व्यवस्थाओं को आधार बना कर नहीं लिखा जा सकता। यहाँ शास्त्रज्ञों की एक परम्परा तो है पर अनुगामियों पर उसे स्वीकार करने की बाध्यता नहीं है। उदाहरण के लिए स्थापित साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रज भाषा के होते हुए भी कविता में खड़ी बोली का प्रयोग आया। भारतेंदु से लेकर सभी बड़े कवियों ने अपनी आरम्भिक रचनाएँ ब्रज भाषा में लिखीं और आगे चल कर वे हिंदी में लिखने लगे। तब उन्होंने छंद के अनुशासन को स्वीकार भी किया और वैसी रचनाएँ भी लिखीं। यह अनुशासन छायावाद तक चला और फिर निराला ने छंद के शास्त्रीय अनुशासन को त्याग कर 'मुक्त छंद' की स्थापना कर दी। आरम्भ में थोड़ा बहुत विरोध हुआ होगा पर यह मुक्ति नए कवियों को भा गई। देशकाल, विचारधारा और निजी संस्कार किसी भी साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रहेंगे ही। भारतेंदु ने अंग्रेज़ी शासन का विरोध किया। प्रसाद ने अपने भारतीयता के संस्कारों को कामायनी में दर्शन की तरह उतार दिया। बच्चन ने अपने जातीय संस्कारों को मधुशाला में अभिव्यक्ति दी।

1936 के आसपास भारत में प्रगतिशील आंदोलन का उदय हुआ। हम अपने स्थानीय दर्शन को छोड़ कर आयातित दर्शन में खो गए क्योंकि उसमें धर्म के विरोध और प्रबल जनवाद की बात थी। दमित, शोषित वर्ग के प्रति संवेदनात्मक झुकाव था। सेठों, साहुकारों, पूँजीपतियों का, यहाँ तक की उच्च सवर्ण जातियों का भी विरोध था। गद्य में प्रेमचंद ऐसा कर ही रहे थे, देखते ही देखते, निराला की कविता– वह तोड़ती पत्थर, इलाहाबाद के पथ पर– कविता में प्रगतिशीलता की स्टेटमेंट बन गई। यह एक जटिल प्रश्न है कि क्या कोई कवि तटस्थ अर्थात् समय और समाज निरपेक्ष होकर कविता लिख सकता है? समाज राजनीति और देशकाल से निरपेक्ष नहीं हो सकता तो

फिर किसी भी कवि की कविता में, उतनी राजनीति तो निश्चित रूप से आएगी ही, जितनी कवि के साँसों में, खून में घुल चुकी है।

हाँ, प्रगतिशीलता के आगमन के बाद, वामपंथी विचार धारा इतनी अधिक प्रसारित और प्रचारित हुई थी कि साहित्य में राष्ट्रीयता और सनातन संस्कारों की आभा, धुंधली होने लगी थी। नए सोच के नाम पर यह एक ऐसी गुटबंदी थी जो साहित्य में दिनों-दिन प्रबल होती गई और आज तक अपने पाँव जमाए है। नेहरु काल, समाजवाद के नाम पर रूस और चीन का पिछलग्गू था अतः उस समय के वामपंथी कवियों को खूब पुरस्कार और रूस तथा चीन की मुफ्त यात्राएँ मिलती थीं। आज भी पुरस्कारों और स्वीकार्यता का भूखा कवि, जो भी लिखता है उसे एक लाल चादर पर अवश्य सजाता है। वह अपनी विशिष्ट सुविधाओं से भरी दुनिया में बैठ कर, कविता में किसान, मजदूर आदिवासी, मुसलमान का ज़िक्र जरूर ले आता है। सत्ता पक्ष को बार-बार गरियाता है। गुटबाज आलोचक उस चादर को देख कर ही उसका मूल्यांकन करते हैं और खेमेबंदी के माध्यम से उसे बड़ा साहित्यकार घोषित करते हैं।

अब उस लाल चादर के समक्ष, दूसरे खेमे, केसरी या हरी चादर बिछने की कोशिश करते नज़र आते हैं। तटस्थता यानी बिना चादर वालों की कविता में लाल-हरे-केसरी-नीले सभी रंग नज़र आते हैं परंतु दुर्भाग्य से उन्हें कोई भी समूह स्वीकार नहीं करता। वामपंथियों को वे दक्षिणपंथी नज़र आते हैं और दक्षिणपंथियों को वामपंथी। आज मुक्तिबोध और धूमिल का नाम सर्वत्र उठते-बैठते ले लिया जाता है, लोग अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र का नाम क्यों संभल कर लेते हैं। तटस्थ होने का प्रयास

करना भारतीय हिंदी साहित्य में अब कवि को मात्र व्यर्थताबोध का अनुभव कराता है।

परिणामतः हम यहाँ पहुँचे कि कोई भी कविता देशकाल से अप्रभावित नहीं रह सकती, अतः तटस्थ कविता की कल्पना, एक मासूम मूर्खता से अधिक कुछ नहीं है। आप देशकाल की राजनीति के प्रति आँख मूंद लेते हैं तो भी, या उसे गालियाँ देते हैं तो भी, आप तटस्थ कैसे मान लिए जा सकते हैं। ऐसी कविता न कभी लिखी गई है, न कभी लिखी जाएगी।

3. आपकी राय में किसी कविता की उत्कृष्टता को जांचने का पैमाना क्या है?

उत्तर – कविता की उत्कृष्टता जांचने का कोई सर्व स्वीकार्य पैमाना नहीं हो सकता। कविता की उत्कृष्टता का निर्णय पाठक की समझ और मानसिकता पर निर्भर करता है। मेरी दृष्टि में, किसी अच्छी कविता को मानवीय-मूल्यों की पेरोकार होते हुए भी संस्कृति बोध से परे नहीं होना चाहिए। उसमें देशकाल की यथार्थपरक छटाएँ हों पर भद्दा प्रलाप न हो। उसमें आशाओं से भरा विचार प्रवाह हो, भाषिक रवानगी हो, टटके बिम्ब हों और सरल भाषा हो। कविता में एब्स्ट्रेक्शन का प्रयोग कुछ कवि खुद को इंटलेक्चुअल दिखाने के लिए करते हैं, वह कविता की पराजय है। मंचीय कविताओं के काल में बड़ी भीड़ और वाहवाही को उत्कृष्टता का पैमाना माना जाता था लेकिन आज की कविता पाठक के मन और संवेदों को प्रभावित करती है, उसे पढ़ कर जब पाठक खुद से साक्षात्कार करता है तो कविता सफल हो जाती है।

4. पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक सरोकारों को लेकर आप क्या राय रखते हैं?

उत्तर– कोई कविता सामाजिक सरोकारों के प्रतिक्रिया स्वरूप ही लिखी जाती है, चाहे वह प्रेम कविता ही क्यों न हो। पंजाब हरियाणा में भी हिंदी कविता का वही स्वर है, जो पूरे उत्तर भारत में है। यहाँ की समस्याएँ और संस्कृति एक जैसी हैं। लोग समृद्ध हैं, इसलिए सच्ची प्रगतिशील कविता जन्म नहीं ले पा रही है। यहाँ आदिवासी नहीं हैं और अनुसूचित जातियों/ जनजातियों की आर्थिक स्थिति बुरी नहीं है। उन वर्गों का स्वर यहाँ की कविता में अलग से सुनाई नहीं देता। महिलाएँ भी उच्च शिक्षा दर के कारण बहुत हद तक स्वतंत्र दिखाई देती हैं, फिर भी उनकी कविताओं में स्त्री-पुरुष की सामाजिक असमानताओं का चित्रण देखा जा सकता है। प्राचीन भारत का स्वर्णिम अतीत भी अनेक कवियों की कविता में दिखाई देता है पर वे मध्यकालीन इस्लामी उत्पीड़न पर कलम नहीं चलाते। हर व्यक्ति अपनी धर्मनिरपेक्षता को इजारबंद से कसे रखना चाहता है। नकली प्रगतिशीलता कुछ वयोवृद्ध और युवा कवियों में देखी जा सकती है। बूढ़े बदल नहीं सकते और जवानों को रेवड़ियों के बीच से चाँद लाल नज़र आ रहा है।

यहाँ जातिवाद और साम्प्रदायिकता सरफेस पर नहीं है। ज़मीदार तो हैं तो मगर वैसा शोषण नहीं है जैसा पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में दिखाई देता है। इसलिए ये तत्व इस क्षेत्र की कविताओं में बहुत उभर कर सामने नहीं आते। जातीय संघर्ष, सरकार पर कब्ज़ा करने की होड़ में दिखाई देता है, जिसे लिखने की हिम्मत पुरस्कार संस्कृति

पर आश्रित कवियों में हो नहीं सकती। लोग किसानों, मज़दूरों के लिए प्रायोजित कविताओं से लेकर, सरकार के पक्ष और विपक्ष में भी कविताएँ लिख रहे हैं जो यदा-कदा दिखाई देती हैं। इनके बीच से ही कुछ कवि सच्चे सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकारों और प्रेम की विभिन्न छटाओं पर भी लिख रहे हैं।

5. एक मान्यता यह है कि अच्छी कविता वह होती है जो अपने समय को दर्ज करती है यानी जिस रचना में कालखंड दर्ज़ होता है। दूसरी ओर वे कविताएं दीर्घजीवी मानी जाती हैं जो इन सीमाओं से, कालखंड से परे होती हैं और जिनकी प्रासंगिकता हर समय में समान रहती है इस विषय में आपका क्या मानना है?

उत्तर– अगर शाश्वत सत्यों की बात छोड़ दी जाए तो हर कविता प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने कालखंड के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। यह कविता के विषय पर निर्भर करेगा कि उसमें कालखंड किस प्रकार से परिलक्षित हो रहा है। कालखंड को सबसे खराब तरीके से राजनीतिक कविताएँ दर्ज़ करती हैं क्योंकि वे किसी एक विचारधारा के एजेंडा के तहत लिखी गई होती हैं। जैसे गुजरात दंगों को लेकर लिखी गई कविताएँ। कालखंड मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी कविताओं में भी उपस्थित रहता है। प्रेम की सामाजिकता का स्वरूप हर कालखंड में बदलता है। स्त्री-पुरुष संबंधों, व्यवहारों की स्वीकृति भी समयानुसार परिवर्तनीय है फिर भी यहाँ कालखंड की उपस्थिति लाउड नहीं होती और ऐसी कविताएँ हर समय में प्रासंगिक बनी रहती हैं।

6. आपकी राय में क्या स्त्री विमर्श एक कागज़ी लड़ाई है या जिसका कोई व्यावहारिक रूप भी सामने आता है?

उत्तर- स्त्री-विमर्श की चर्चा से पहले यह समझना होगा कि भारतीय साहित्य का स्त्री विमर्श, यूरोप और अमेरिका के विमेन लिबरेशन या स्त्री स्वातंत्र्य जैसा विद्रोह-मूलक नहीं है। वहाँ स्त्रियाँ सामान्यतः पिता या पति की कमाई पर आश्रित नहीं होतीं। उन्हें बचपन से लड़कों की ही तरह स्वतंत्र रहना, पैसा कमाना और उसका उचित उपयोग करना वहाँ की सामाजिक व्यवस्था बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के सिखा देती है। वहाँ स्त्री और पुरुष के बीच वर्चस्व का द्वंद्व है। स्त्रियाँ स्वतंत्रता का अर्थ अपने शरीर की स्वतंत्रता से लेती हैं। वे नहीं चाहतीं कि उनके जीवन से जुड़े पुरुष उनके विषय में कोई भी निर्णय लें। वहाँ स्त्रियाँ, घर, परिवार, शारीरिक संबंध जैसे विषयों को लेकर भी निजता चाहती हैं। वे पुरुष के स्त्री पर नैसर्गिक अधिकार को स्वीकार नहीं करतीं। हमारे यहाँ स्त्री विमर्श, पुरुष-सत्तात्मक समाज की पारिवारिक व्यवस्था का पश्चिम जैसा सीधा विरोध नहीं करता, वह उसके भीतर ही स्त्रियों के लिए सम्मान और सुरक्षित आज़ादी की माँग करता है। यहाँ 15 साल की लड़की, बिना पारिवारिक आर्थिक सहायता के अलग, अकेले रहने की सोच नहीं रखती। वह शादी से पहले शारीरिक संबंधों के विषय में अधिक नहीं सोचती। वह विवाह संस्था के कई दुष्परिणामों को देखते हुए भी उसका का नकार नहीं करती। हमारे स्त्री-विमर्श में आज भी पुरुष की आदर्श भूमिका वांछित है।

हमारा स्त्री विमर्श सामाजिक ढांचे के भीतर ही, स्त्री सुरक्षा के साथ स्वतंत्रता की बात करता है। वह शिक्षा, सम्पत्ति, नौकरी में बराबर वेतन और बच्चों के पालन पोषण में पुरुष के सहयोग की माँग करता है। हमारी स्त्री स्वतंत्रता का एक विचित्र स्वरूप यह भी है कि यहाँ स्त्री, उन पर स्त्रियों के द्वारा किए जाने वाले शोषण का विरोध भी करना चाहती है। समकालीन साहित्य में वामपंथी खेमा, स्त्री विमर्श के नाम पर भारतीयता के मूल्यों का विरोध करने का प्रयास भी करता है, पर विमर्श का यह स्वरूप बहुसंख्यक लेखक वर्ग स्वीकार नहीं करता। स्त्री-विमर्श दुनिया में कहीं भी कागज़ी लड़ाई नहीं है, इसका स्वरूप उस भाषिक क्षेत्र की संस्कृति, सामाजिक संरचना और परिवेश तय करता है। भारतीय स्त्री विमर्श के इस स्वरूप को मैंने अपनी कविताओं और उपन्यासों में चित्रित किया है।

7. आपकी दृष्टि में क्या यह सही है कि आज समकालीन कवियों का एक बड़ा वर्ग सस्ती लोकप्रियता के जाल में फंस चुका है?

उत्तर– दुर्भाग्य से हिंदी के वर्तमान साहित्यिक परिवेश में सस्ती लोकप्रियता, अत्यंत लोकप्रिय हो रही है। लोगों के पास पैसा और संसाधन हैं। परिवेश पर दृष्टि रखने वाले महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे कड़े सम्पादक नहीं हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन, अब विद्वान लेखक-सम्पादक नहीं मठाधीश करते हैं। लोग अखबार/पत्रिका में कविता छापने के लिए सम्पादक को धन्यवाद देते हैं – मानो उसने स्तरहीन रचना को छाप कर अहसान किया है। गैर साहित्यिक रूचि के लोग, साहित्य के पुरस्कारों

का आयोजन करते हैं और लोकप्रियता के लालच में लेखक उन्हें अपने लिए मैनेज करते हैं। अन्य भारतीय भाषाओं के परिसरों में अभी प्रतिभा के पक्ष में शर्म लिहाज़ बची है।

8. साहित्य का क्षरण करने वाले घटकों में बाज़ार संचालित सोशल मीडिया की भूमिका को आप कितना अहम मानते हैं?

उत्तर– अब सोशल मीड़िया के अंतर्गत फेसबुक, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, टीवी चैनल आदि की साहित्य के क्षेत्र में व्यापक घुसपैठ है। अब किसी भी साहित्यकार को आम पाठक तक पहुँचने के लिए सम्पादक का अवरोध नहीं झेलना पड़ता। साहित्य के उस विशुद्ध रूप का क्षरण हुआ है जिसे, हम साहित्य से जुड़े लोग साहित्य समझते हैं। लेकिन लुगदी साहित्य तो पहले भी था जो शुद्ध साहित्य से अधिक बिकता था। गुलशन नंदा के उपन्यासों को जितनी लोकप्रियता मिली, उतनी हमारे साहित्य के किसी उपन्यासकार को नहीं मिली। अब जो बहुतायत में लिखा जा रहा है, छप भी जा रहा है उसकी एक अन्य श्रेणी बनाई जा सकती है। जिन्हें खराब हिंदी आती थी, वे अपनी भाषा को नई हिंदी कहने लगे हैं। सोशल मीड़िया को ही सारा दोष क्यों दें, अब हर लेखक स्वायत्त है स्वतंत्र है, उसकी लोक प्रियता उसका ऊँचा ओहदा, आर्थिक स्थिति और मीड़िया के साथ तालमेल तय करता है। दोषी तो यह बाज़ारोन्मुख सामाजिक परिवर्तन है।

9. आजकल एक नया प्रयोग चलन में है कि तथ्य के ना होते हुए भी शिल्प पर ही पूरा ध्यान लगा दिया जाता है। आपकी दृष्टि में एक कवि की प्रतिबद्धता अधिक महत्त्व रखती है या उसका शिल्प?

उत्तर– भाषा के माध्यम से, साहित्य तो तथ्यों और कथ्यों के इर्द-गिर्द ही बुना जाता है। शिल्प उस भाषिक कहन को एक प्रभावी और अलग रूप देने वाला विन्यास है। कवि और लेखक नए शिल्प के साथ रचनाएँ प्रस्तुत करते रहते हैं, पाठक उन्हें पसंद भी करते हैं। विश्व का सबसे अधिक चर्चित लेखन, दाग़िस्तान (उस समय संयुक्त रूस) के लेखक रसूल हमज़ातोव ने 'मेरा दाग़िस्तान' में किया। शिल्प के स्तर पर उस पुस्तक को न कविता कहा जा सकता था, न उपन्यास। बस एक शानदार कृति जिसे आप आरम्भ करके, छोड़ नहीं सकते। मेरी दृष्टि में कवि की प्रतिबद्धता कथ्य और अनुकूल के प्रति होनी चाहिए। मजबूत कथ्य के साथ शिल्प के प्रयोग किए जा सकते हैं कविता में 'एब्स्टेक्शन' सबसे निःकृष्ट शिल्प प्रयोग है।

10. कविता रचनाकार के भीतर की अकुलाहट, व्यग्रता और बेचैनी को जज़्ब किए होती है इसलिए क्या यह कहा जा सकता है कि कविता रचना के भीतर पैठे लेखक से संवाद है?

उत्तर– कविता रचनाकार के अंतर्मन में संचित, संयोजित प्रतिक्रियाओं की सुचिंतित भाषिक प्रस्तुति है। अपने अंतर्निहित तत्वों के साथ, वह कभी-कभी बहुत स्पष्ट होती

है तो कभी यौगिक रूप में होती है, पर निश्चित रूप से, वह रचना के भीतर बैठे कवि से संवाद होती है।

11. वर्तमान में पंजाब की काव्य विधा जिस मोड़ पर है उसे लेकर आप क्या कहना चाहेंगे? नये लेखकों या उन लोगों के लिए जो अभी लिखने की शुरुआत कर रहे हैं के लिए कोई सलाह देना चाहेंगे?

उत्तर– वर्तमान में हमारे क्षेत्र की हिंदी कविता सामान्य गति से पुष्पित पल्लवित हो रही है। युवा और वरिष्ठ कवि नियमित रूप से लिख रहे हैं और प्रकाशित हो रहे हैं। इस समय कविता में कोई आंदोलन नहीं है। धार्मिक असंतोष से बड़ा कोई मुद्दा भी नहीं है, जिसे कवि बहुत फूँक-फूँक कर छूते हैं। जीवन के विभिन्न पक्ष कविता की सीमा में आ रहे हैं। जो लोग लेखन की शुरुआत कर रहे हैं, उन्हें एक स्पष्ट सलाह यह देना चाहूँगा कि वे खूब पढ़े और फिर जितना ज़रूरी हो उतना लिखें। इन दिनों लोग पढ़ने की आदत खो रहे है, बिना परंपरा और अनुशासन जाने टनों लिख रहे हैं।

साक्षात्कार : डॉ. राजवंती मान

परिचय :

- लेखिका, कवयित्री व शोधकर्ता तथा अभिलेख संयोजिका। इनका जन्म हरियाणा के रोहतक जिले के रुड़की गाँव में हुआ। किसान व सैन्य परिवार से संबंध रखती हैं।
- पंजाब यूनिवर्सिटी,चण्डीगढ़ से एम. ए (उर्दू) एवं पीएच. डी.
- राज्य अभिलेखागार, हरियाणा सरकार पंचकूला में उपनिदेशक पद पर कार्यरत रहीं
- हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'सम्मेलन सम्मान' 2020
- हिंदी, अंग्रेजी व उर्दू में लेखन व 16 प्रकाशित पुस्तकें

1. आपको कब और कैसे पता चला कि आपको हिंदी भाषा और साहित्य के काव्य क्षेत्र से जुड़ना है ? ऐसे किसी विशेष कारण या व्यक्तित्व के विषय में बताएं जिस से प्रेरित होकर अपने काव्य के क्षेत्र की ओर रुख किया?

उत्तर : मैंने अपने लेखन की शुरुआत काव्य से नहीं की अपितु ऐतिहासिक शोधपरक लेखन से की और 1998 में पहली पुस्तक प्रकाशित हुई जो इतिहास की श्रेणी में आती है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि मैं संवेदना के स्तर पर विरक्त या विमुख थी। समाज या जीवन में जो कुछ अच्छा या बुरा घटित होता है। रचनाकार के तौर पर पूरी संवेदना से उसमें संलिप्त होती हूँ मानविकी अनुभूतियाँ, व्यथाएँ, घटनाएँ,

निराशाएँ, आवेग, आक्रोश, करुणा, बेचैनी, विद्वेष जो मन अपने अंतर्जगत से लेकर बहिर्जगत तक महसूस करता है वे सभी अनुभव और स्मृतियाँ संचित निधि के रूप में हृदय के अभिलेखागार में समाहित होती जाती हैं जो जब तब कल्पनाओं के तंतु पकड़कर काव्य-रचनाओं में उतरती जाती हैं। मैं मानती हूँ कि संचित अनुभवों की निधि जितनी अधिक समृद्ध होगी रचनाएँ उतनी ही प्रगाढ़ और असरदार होगी।

सो अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में यह कहना सहल या निश्चित नहीं कि फ्लाँ उम्र में मैंने कलम पकड़ी और कोई कविता, कहानी या कोई अन्य रचना रच डाली। लेखन प्रक्रिया के लिए कहीं कोई ऐसा बटन भी नहीं होता कि जिसके ऑन करते ही रचना-धर्मिता फूट पड़े। सृजन प्रक्रिया सतत चलने वाली और कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया है। रचनाकार के मन में कोई न कोई विचार, चिन्तन-मनन या बेचैनी व्याप्त रहती है जो बीज रूप में अंखुआती, करवटें लेती, उगती, फलती, फूलती रहती है या सुप्त अवस्था में दबी पड़ी रहती है जो जब तब रचना के किसी भी रूप में पाठकों के सामने आ जाती है। हर विधा की रचना प्रक्रिया भिन्न होती है। जो सृजन प्रक्रिया कविता की होगी, वह कथा-कहानी, उपन्यास या अन्य शोधपरक लेखन की नहीं होती।

मैं हिंदी भाषा और साहित्य के काव्य क्षेत्र से जुड़ने को एक संयोग ही समझती हूँ। मेरे पितर-पुरखों ने कविता न कभी लिखी न कभी कही-सुनी। खैर, उपक्रम या प्रयत्न का तो कविता की रचना-प्रक्रिया में कम ही दखल होता है। सायास तो कविता की रचना मुझसे हो ही नहीं पाती। वस्तुतः कविता का उद्गम स्रोत वही कुल जमा संवेदनाएँ होती हैं जिसे कोई तात्कालिक घटना एक ट्रिगर की तरह झनझना देती है और उन्हीं तीव्र संवेदनाओं से कोई झरना फूट पड़ता है जैसे महाकवि बाल्मीकि के

शब्द –‘मा निषाद ! प्रतिष्ठाम् त्वंगम शाश्वती समा:’ जैसे बादल के लिए उसमें व्याप्त जल को उठाए फिरना मुश्किल हो जाता है तो वह बरस पड़ता है। हमारे पास यदि शब्द भण्डार पर्याप्त है तो काव्य रचना उन्हें बरतने का सलीका है। परिवेश बिम्बों की शक्ल में रंग भर देता है। अपनी सोच, विचार दृष्टि भाव के बीज हैं। यह सब हमारे पास है तो फिर कविता अवसर की तलाश में है अपने पूरे नाद औ साज के साथ। अभिव्यक्ति के लिए मैंने कविता को नहीं चुना बल्कि कविता खुद ही मेरे पास आ गई। मैंने इसे सहेज लिया इसलिए मैं कई दफे स्वयं अपने को ‘एक्सीडेंटल कवि’ मानती हूँ। मेरी काव्य या साहित्यिक यात्रा ने इतिहास के गलियारों से होकर, उर्दू की संकरी पगडंडियों से निकलकर, हिंदी के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया है। पहली काव्य पुस्तक 2013 में पुस्तक आई जो गजलनुमा कविताएँ कही जा सकती हैं। लेकिन सही अर्थों में मेरी काव्य-यात्रा इसके बाद शुरू हुई और हिंदी के शिखर पुरुष आदरणीय रमेंश कुंतल मेघ जी ने हिंदी साहित्य की और मुड़ने के लिए प्रेरित किया।

2. यह कहा जाता है कि अपने समय के बदलते परिवेश का प्रभाव साहित्य पर देखा जा सकता है। क्या आप भी यह मानते हैं कि बीसवीं सदी के आखिरी दशक में जो व्यापक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलाव हुए उनका प्रभाव साहित्य पर पड़ा है? क्या 21वीं सदी की पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता इस प्रभाव रेखांकित कर पाई है?

उत्तर : जैसा कि उपर जिक्र किया गया है कि समय के बदलते परिवेश का प्रभाव समाज, व्यक्ति एवं साहित्य सब पर पड़ता है। व्यक्ति चाहे वह रचनाकार है या नहीं

समाज का एक छोटा सा हिस्सा होता है। समाज महाद्वीप की तरह है तो व्यक्ति क्षुद्र द्वीप की तरह है। बल्कि अंग्रेजी कवि जॉन डॉन (1572- 1631) के शब्दों में कहें तो- No man is an island, entire in itself; each is a piece of the continent, is a part of the main… [अर्थात् कोई व्यक्ति अपने में सम्पूर्ण द्वीप नहीं होता; वह महाद्वीप का एक टुकड़ा होता है; यानि मुख्य का एक हिस्सा] कुछ दार्शनिक इस कथन को इस तरह मानते हैं कि समाज व्यक्ति को वह बना देता है जो शायद वह अकेला हो तो नहीं हीं बनता यानि वह एक 'डिफरेंट सब्सटेंस' बन जाता है और एक कवि को तो सामाजिक परिवेश बहुत गहरे तक प्रभावित करता है क्यूंकि वह समाज की एक इकाई के तौर पर अधिक संवेदनशील होता है।

बीसवीं सदी का आखिरी दशक वैश्विक स्तर पर हुए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलावों का दौर था। इस दशक के शुरुआत में ही सोवियत रूस का विघटन हुआ और एक देश के पन्द्रह देश बन गये। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं बाजारवाद ने पूरे विश्व को एक बाजार में बदल दिया जाहिर है इसने भारत में भी पांव पसारे। यह देखा गया है कि बदलते परिवेश में सबसे पहले 'मध्यम वर्ग'जो बहुत बड़ा वर्ग है, उसकी प्राथमिकतायें बदलती हैं। आर्थिक स्तर के साथ साथ लोगों की मानसिकता को भी प्रभावित करती हैं। 1991 में जहाँ 1.48 लाख की मारुती 800 कार सामाजिक स्तर का पैमाना थी और बजाज, लम्ब्रेटा स्कूटर (दुपहिया) शान की सवारी होती थी इस दशक के बीतते बीतते पूँजी के प्रवाह और पूँजीवाद के मोह से लोगों को बड़ी गाड़ियाँ और अन्य भौतिक वस्तुएँ लुभाने लगीं। इससे लोगों की जीवन शैली ही नहीं बदली अपितु कविता की प्राणवस्तु को भी प्रभावित किया। साहित्य में नागर जीवन लेखन में प्रमुखता से प्रवेश कर गया। जहाँ तक प्रश्न है कि पंजाब की वर्तमान हिंदी

कविता इस प्रभाव रेखांकित कर पाई है या नहीं, यह शोध छात्रा के शोध का विषय है मैं इसे अपने निर्णय देकर प्रभावित नहीं करुँगी। वैश्वीकरण के उक्त प्रभावों की रौशनी में कुमार विकल से लेकर अनेक हिंदी कवि पंजाब में हिंदी की मशाल उठाये रहे हैं कृपया स्वयं मूल्यांकन करें।

3. आज रचनाकारों के बीच साहित्य के क्षेत्र में एक-दूसरे से आगे निकलने और एक-दूसरे को पिछाड़ने की रणनीति देखी जा रही है। इसे हम साहित्यिक प्रतिस्पर्धा के तौर पर देख सकते हैं या बाज़ारवाद की उठापटक अथवा छीना झपटी के रूप में?

उत्तर : साहित्य में वाद विवाद, असहमतियों, आलोचना-प्रत्यालोचनाओं, तर्क व विमर्श की लंबी परंपरा रही है जो साहित्य के विकास व परिष्कार के लिए आवश्यक भी होती है और फायदेमंद भी।साहित्यिक जमीन पर 'कल्पना पत्रिका विवाद' नजीर की तरह याद हो आई है। ऐसी बहसों में कुछ नये बिंदु उभरते हैं, भिन्न दृष्टिकोण, अलग परिप्रेक्ष्य सामने आता है जिनकी रौशनी में साहित्य को देखना परखना साहित्य के संवर्धन के लिए आवश्यक जमीन प्रदान करता है। साहित्यकारों के विमर्श के केंद्र में रचना रहती है, उस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से अलग-अलग पहलुओं पर सार्थक बातचीत होती है और यह बहस महत्त्वपूर्ण होती है और इसे ही साहित्यिक प्रतिस्पर्धा के तौर पर देख सकते हैं। जब साहित्य में बाज़ारवाद की उठापठक अथवा छीना झपटी या बीस-पच्चीस प्रतिशत सेल का रूप ले लेती है तो इसकी पृष्ठभूमि में निजी खुंदक, व्यक्तिगत आक्षेप, उठाओ गिराओ का भाव निहित होगा और निरपेक्षता अपना स्थान छोड़ देगी जो साहित्य के लिए उपयोगी नहीं होता।

सच पूछिए तो यह 'रणनीति' शब्द इतना प्रदूषित प्रतीत होता है कि जिसमें हर तरह की व्याधियाँ, लोलुपताएँ, अवसरवादिता मौजूद हैं। इस शब्द का महज प्रयोग ही उसके भीतर की इन सारी बुराइयों को सतह पर ला देता है साहित्य में यह रणनीति देखी जा रही है उसकी पृष्ठभूमि में कारण जो भी हो वह साहित्य के लिये शुभ नहीं है। हम सब जानते हैं कि बहुत अच्छा लिखने वाले साहित्यकार इस दौड़ में पीछे छूट जाते हैं क्योंकि वह साहित्य में रणनीति के मार्ग को नहीं अपनाते। लेकिन याद रखें कि समय साहित्य को छानता है ।

हाँ, आज रचनाकारों के बीच साहित्य के क्षेत्र में जिस तरह एक-दूसरे से आगे निकलने और एक-दूसरे को पिछाड़ने की रणनीति देखी जा रही है। लगता है जैसे साहित्यिक क्षेत्र अखाड़ा बन गया और कवि दंगल में उतरने को आतुर हैं। मेरा यह मानना है कि वैचारिकी की भिन्नता टकराहट की बजाय प्रतिस्पर्धात्मक हो तो साहित्य के लिए फायदेमंद होती है। यहाँ व्यक्तिगत टिप्पणी करने का मेरा कोई आशय नहीं।

4. हिंदी साहित्य परंपरा में हमारे अधिकांश कवियों ने जीवन और साहित्य को अलग करके नहीं देखा है। समतोल पर जीवन और साहित्य को जिया है। आपके अनुसार कवि की निजी प्रतिबद्धता और सामाजिक प्रतिबद्धता क्या अलग-अलग होनी चाहिए या नहीं? एक कवि का जो निजी है वह सार्वजनिक भी है और जो सार्वजनिक है वह निजी भी है क्या आप इस बात से सहमत है?

उत्तर : कवि एक सोशल एंटिटी होता है अर्थात् बड़े समाज का एक छोटा हिस्सा इसलिए जो उसके आसपास घटित होता है अच्छा या बुरा, घटनाएँ - दुर्घटनाएँ, दुख-दर्द, पीड़ा, दुर्व्यवहार दुर्व्यवस्था आदि वह उनसे अछूता नहीं रह पाता। प्रतिक्रिया न भी करे तो भी यह चीजें उसके अवचेतन में बैठती जाती है और

आख़िरकार यह आक्रोश, क्षोभ, पीड़ा, गुस्सा रचना में जाहिर हो जाता है और वह निजी तौर पर आराम अनुभव करता है। इसलिए हम कहते हैं कि कविता स्वांत सुखाय है। पर यहां उसका अभिप्रेत स्वांत सुखाय के साथ-साथ बहुजन हिताय भी होता है । अत: जो निजी है वह सार्वजनिक भी है और सार्वजनिक है वह निजी भी है।

5. आपको लगता है कि ग्लोबलाइजेशन या भूमंडलीकरण ने हिंदी कविता को भी प्रभावित किया है यदि है भूमंडलीकरण के कारण आपको पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में कौन-से परिवर्तन नजर आते हैं?

उत्तर: ग्लोबलाइजेशन या भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण ने और बाज़ारवाद और उदारीकरण ने संप्रदायिकता और पूँजीवाद को जन्म दिया है। यहाँ मानव विरोधी गतिविधियाँ भी दिखाई देती है। पूँजीवाद और उससे उपजे ऐश्वर्य ने कविता की प्राथमिक वस्तु यानी उसके प्राण तत्व पर प्रहार किया है जो चिंता और चिंतन का विषय होना चाहिए।   हमारे समक्ष कवियों की भीड़ है पर कुछ ही सजग कवि हैं जो मनुष्य और मनुष्यता के पक्ष में खड़े प्रतीत होते हैं। दूसरा प्रभाव यह है कि इस दौर की कविता में वर्ग वर्ण धर्म भेद गहरा गया है, आकांक्षाओं का कोई अंत नहीं रहा और साथ ही खत्म होता गया नैतिक शास्त्र जो कविता में नजर भी आता है। तीसरा प्रभाव यह हुआ कि शहरी जीवन यानि नागर जीवन और कसौटी बन गया है और कविता की आदि ताकत यानी 'लोक-तत्व' कविता से दूर हो गया। इस कृत्रिम जीवन शैली का प्रभाव कविता की प्रक्रिया और परिणति में दृष्टिगोचर होता है जो पाठकों को आकर्षित नहीं कर पाती, संवेदित नहीं करती, लुभाती नहीं।

6. आपकी राय में अच्छी कविता क्या होती है?

उत्तर : सच कहूँ तो यह प्रश्न अक्सर अनुत्तरित ही रह जाता है। कोई कविता अच्छी है या बुरी इसका जवाब दे पाना कठिन है। किसी रचना पर अपना निर्णय सुना देना न तो कवि के लिए उचित है न संभव। अच्छी कविता क्या हो, मेरे विचार से इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता क्योंकि ऐसा कोई फिक्स्ड पैरामीटर नहीं है कि जिस आधार पर कविता का अच्छा या बुरा होना तय किया जा सके उसके अच्छेपन को नापा जा सके। कविता कवि के उदात्त भावों का सहज सरल प्रवाह होता है जिसका ओर छोर कुछ भी हो सकता है। फिर भी मैं इतना तो अवश्य कहूँगी कि जो कविता स्वान्त सुखाय के भाव से लिखी गई हो लेकिन उसका दूसरा सिरा बहुजन हिताय की ओर जाता है और जिसमें समाज की उपेक्षित, दबी हुई आवाजों को स्वर मिलता है, उसमें 'लोक' की उपस्थिति उभरती है मेरे ख्याल से वह अच्छी कविता कही जा सकती है।

7. दलित, स्त्री, आदिवासी आदि विमर्शों में 21वीं सदी की पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता का क्या स्थान है?

उत्तर: व्यापक अर्थों में देखा जाए तो दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श इन खांचों में साहित्य को बाँटकर न देखा जाए तो ज्यादा उपयुक्त मालूम होता है। परंतु इसमें भी संदेह नहीं कि वर्चस्ववादी या मुख्यधारा के साहित्य में बहुत सी चीजें छूट जाती हैं खासकर दलित, स्त्री या आदिवासी विमर्श आदि। यही वजह है कि यह विमर्श एक अलहदा प्रखंड या विषय के रूप में उभरे हैं। मेरे विचार से इन पर गहराई से बात करना जितना इन विमर्शों के लिए जरूरी है उतना ही मुख्यधारा के

साहित्यिक विमर्शों में भी इन विषयों का समावेश आवश्यक है। 'अपनी-अपनी डफली अपना अपना राग' जैसी विषम परिस्थितियाँ साहित्य के समावेशी और समग्र रूप को अवरुद्ध कर देती हैं। पंजाब के वर्तमान हिंदी कविता में इन विमर्शों का क्या स्थान है यह तो आने वाला समय ही तय कर सकता है क्योंकि वर्तमान में जिस तरह की कविता लिखी जा रही हैं उसमें से अधिकांश में यह विमर्श गायब से ही दिखाई देते हैं। कुछ पीछे जाएँ तो पंजाबी में लाल सिंह दिल और हाल में देशराज काली, बलबीर माधोपुरी आदि दलित विमर्श पर लिखते दिखाई देते हैं।

8. आपके अनुसार क्या पंजाब के वर्तमान कवि अपनी कविता के माध्यम से समसामयिक चिंताओं या विषयों को सही प्रकार से स्वर दे पाए हैं?

उत्तर: पंजाब के वर्तमान कवि अपनी कविता के माध्यम से समसामयिक चिंताओं या विषयों को सही प्रकार से स्वर दे पाए हैं या नहीं या यह उनकी प्राथमिकता है भी नहीं इसकी प्रामाणिक जानकारी तो आपकी शोध से ही मिल सकती है। लेकिन सच यह भी है कि कुमार विकल के बाद पंजाब से हिंदी के राष्ट्रीय पटल पर कोई नाम शायद उस तरह उभर कर नहीं आया। कुछ महत्त्वपूर्ण नाम पंजाब की हिंदी कविता में उपलब्ध हैं जिन पर हिंदी समाज साहित्य गर्व कर सकता है मसलन अमरजीत कौंके, मोहन सपरा, जसबीर चावला आदि के साथ और भी कई नाम लिए जा सकते हैं। एक समय लाल्टू, राजेन्द्र टोंकी, शशि भूषण शीतांशु और डॉ रमेश कुंतल मेघ जैसी हस्तियों का पंजाब में बोलबाला रहा है। हरमोहिन्द्र बेदी आज पंजाब में हिंदी के विकास में लगे हैं। डॉ हुकुमचंद राजपाल और शुभदर्शन लम्बे समय तक पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य की सेवा करते रहे और कुछ नवीन हिंदी पत्रिकाएँ भी अपने

नये कलेवर के साथ सामने आ रहीं हैं। फिर भी यह कहना जरूरी है कि पंजाब में हिंदी को लेकर आगे काम करने के लिए काफी स्कोप है। काव्य को समसामयिक चिंताओं या विषयों को स्वर देने के लिए काव्य-संवेदना तक उतरने, गहन चिंतन-मंथन एवं मौलिक सोच के साथ आगे बढ़ना होगा।

9. आपकी दृष्टि में एक कवि का साहित्यिक और सामाजिक दायित्व क्या है?

उत्तर: व्यक्ति और समाज को एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। अगर कोई पूछे कि कौन पहले आता है? तो यह मुर्गी और अंडे वाली बात होगी। कवि भी समाज में रहने वाला एक व्यक्ति है और व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। जैसा कि ऊपर कहा गया है -No man is an island, entire in itself... उसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य द्वीप है तो समाज महाद्वीप है। मनुष्य तनावग्रस्त है तो समाज तनावग्रस्त है या समाज तनाव में है तो मनुष्य भी बच नहीं सकता, वह भी तनाव में होगा। अपने समय की चुनौतियों को कलमबद्ध करना, समाज की व्याधियों, खामियों, ज्यादतियों, अपेक्षाओं, आकांक्षाओं को स्वर देना, जाहिर करना कवि या रचनाकार का साहित्यिक और सामाजिक दायित्व होता है। बेशक इसके लिए कोई एक निश्चित स्टेटमेंट नहीं दी जा सकती लेकिन कवि अपने समय का टोर्च बीयरर होता है जो उन अँधेरे कोनों तक पहुँचता है जो सामान्यत: नज़रों से ओझल होते हैं।

10. आपकी दृष्टि में पंजाब की समकालीन हिंदी कविता की रचनात्मक चुनौतियाँ क्या है?

उत्तर: आज केवल पंजाब की ही नहीं बल्कि समकालीन हिंदी कविता के कलिए अनेक रचनात्मक चुनौतियाँ हैं। कविता के सामने एक चुनौती तो यही है कि कविता अपनी मूल प्रकृति को दरकिनार करती हुई द्रुतगति से आगे बढ़ती दिखाई देती है। कविता के नाम पर कुछ भी लिखते हैं और उसे कविता कहते हैं। यद्यपि उसमें न कविता, न भाषा, न भाव, न शब्दों की गरिमा ही बरती जाती है। यहाँ अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। और कविता की आदि ताकत अर्थात् प्राण शक्ति यानी लोक-तत्व से तो हाथ खींच ही लेते हैं वह शायद ही कहीं दिखाई देता हो। जाहिर है शहरी जीवन ही जीवन और कसौटी बन गया है। ड्राइंग रूम में लिखी गई कविताएँ पाठकों को कितना आकर्षित कर पाती है यह हमारे सामने है। दूसरी चुनौती यह है कि निबंध के गद्य और कविता के बीच जो अंतर होता है वह कविता की पहचान होता है दिनों दिन यह कम होता दिखाई देता है। यानि निबंध के गद्य और कविता के गद्य के बीच फासला बनाए रखना भी एक चुनौती है। संप्रेषणता की कमी को पाटना भी एक चुनौती है। कविता के नाम पर लगभग गद्य को भला कोई कविता प्रेमी क्यों पढ़ना चाहेगा? क्या हासिल करेगा?

एक बड़ी चुनौती है कि कवियों को हिंदी कविता की लंबी परंपरा का बोध हो या न हो लेकिन वे कवि कहलवाना पसंद करते हैं और लोकप्रिय होने का हर तरीका निकाल लेते हैं। इसके लिए अपने अपने साहित्यिक समूह बना लिए जाते हैं जो हर रचना पर वाह-वाही करते हैं, तालियाँ बजाते हैं और मूल्यांकन के नाम पर प्रशंसा में पन्ने के पन्ने भर देते हैं और कवि फूला नहीं समाता। अपने कवित्व पर इस कदर इतराता है कि वह सबसे बड़े साहित्यिक पुरस्कार का इकलौता हकदार समझने लगता है। रचना का निरपेक्ष मूल्यांकन उन्हें उद्वेलित कर देता है। याद रहे लोकप्रिय होने का अर्थ सस्ता होना नहीं होता है।

11. आप शोध कार्य को साहित्य की किसी विधा के विकास में कितना अहम मानती हैं? आप साहित्य की विभिन्न विधाओं पर कार्य कर रहे शोधार्थियों को क्या संदेश देना चाहेंगी?

उत्तर: मैं किसी विषय या किसी अनुशासन में किये जाने वाले शोध कार्य को पीएचडी या एमफिल की डिग्री लेने तक सीमित करने की बजाय उसे सम्बन्धित विषय के वृहतर ज्ञान भंडार तक पहुँचने की जिज्ञासा की तरह देखती हूँ। विषय चाहे कोई भी हो, साहित्य की कोई विधा हो, शोध उस विषय की गहराई तक ले जाती है जो उस विषय संबंधी ज्ञान, चिंतन-मनन एवं समझ विकसित करने में मददगार होता है और यह महत्त्वपूर्ण है। दूसरे शोध कार्य तर्कशीलता, मूल्यांकन, समाज में अंतर्निहित मान्यताओं एवं धारणाओं का अंकन एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन की माँग करता है और तदनुसार उन पूर्व-स्थापित सिद्धांतो को चुनौती दी जा सकती है और बेहतर और अधिक महत्त्वपूर्ण विचारों को प्रतिस्थापित किता जा सकता है। अगर आप तर्कशील हैं और कल्पनाशील भी तो साहित्य की किसी विधा को पकड़ें या जिस भी विधा में लिखें यह समझ आवश्यक रूप से सहायक सिद्ध होती हैं। मैं अपने संबंध में कहूं तो साहित्य और शोध एक दूसरे को ओवरलैप नहीं करतीं बल्कि साइड बाय साइड चलते हुए एक दूसरे का साथ निभाती हैं और शायद इस तरह एक संतुलित अप्रोच बन पाती है। मेरे विचार से तो शोध हर विधा के लिए अहम है फिर बेशक चाहे वह कविता लेखन ही क्यों न हो।

जब हम किसी ऐतिहासिक विषय पर लिखने के लिए आगे बढ़ते हैं तो हमें गहन शोध का रास्ता पकड़ना ही पड़ता है। इसके कई घटक होते हैं। पहला और सबसे जरूरी

प्राइमरी स्त्रोत यानि प्राथमिक सन्दर्भ जो अमुक पात्र/ घटना/ विषय से संबंधित सरकार के अभिलेखागारों, संग्रहालयों, पुस्तकालयों, दस्तावेजों या रिपोर्ट्स आदि में हो सकते हैं वहाँ तक जाना पड़ता है। दूसरा सेकेंडरी सोर्सेस जिसमें प्रकाशित पुस्तकें उस विषय से संबंधित पढ़ी जानी जाती हैं तीसरा एक अन्य स्त्रोत जिसे मौखिक स्त्रोत या मौखिक इतिहास भी कह सकते हैं इस में लोकवार्ता जनश्रुतियां, लोकगीत वगैरह सभी आते हैं। यहाँ बताती चलूँ कि अमृतलाल नागर जी का उपन्यास 'गदर के फूल' मुख्यत: मौखिक सोर्सेस पर आधारित है। इन सब के अध्ययन के बाद आप जिस नतीजे पर पहुँचते हैं आपका वह लेखन प्रमाणिक होता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं पर कार्य कर रहे शोधार्थियों को यही मेरा संदेश है।

डॉ.राजवंतीमान, मोब. 98146 76936 ; dr.rajwantimann@gmail.com

साक्षात्कार : डॉ. गुरमीत सिंह

परिचय :

कवि और लेखक

जन्मतिथि : 19-03-1969 कानपुर

सम्प्रति: बीपी वाइस प्रिंसिपल, खालसा कालेज, पटियाला

कविता संग्रह: तिरंगा बोल उठा

अनेक मंचों द्वारा लगभग 250 सम्मान पत्र

सम्पर्क सूत्र: 98777 50574

1.आपको कब और कैसे पता चला कि आपको हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र से जुड़ना है? ऐसे किसी विशेष कारण या व्यक्तित्व के विषय में बताएं जिस से प्रेरित होकर आप लेखन की ओर रुख किया?

उत्तर- मुझे बचपन से ही हिंदी से विशेष लगाव रहा है। मेरा बचपन और लड़कपन दोनों ही उत्तर प्रदेश के शहर कानपुर में व्यतीत होने के कारण और पढ़ाई रामकृष्ण मिशन में होने के कारण हिंदी कब मेंरे अंदर समा गई और कब मैं कविता कहानियों के साथ जुड़ गया, पता ही नहीं चला।

2. क्या आप पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता को समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम मानते है?

उत्तर- मैं समझता हूँ कि पंजाब की वर्तमान कविताएं समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हैं, क्योंकि कवियों का रुझान यथार्थ से कहीं ज्यादा प्रकृति, ईश्वर एवं श्रृंगार की ओर है और उससे भी कहीं ज्यादा कविताएँ यथार्थ के लिये नहीं, अपितु पुरस्कार प्राप्त करने के लिए और लोगों की वाहवाही प्राप्त करने के लिए लिखी जा रही हैं।

3. आपकी नज़र में क्या स्त्री लेखन स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के लिए स्त्रियों की समस्याओं पर लिखा जाने वाला साहित्य ही है? स्त्री विमर्श के बारे में अपने विचार व्यक्त करें। क्या पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में स्त्री विमर्श को पर्याप्त स्थान मिला है?

उत्तर- आज की स्त्री पहले से बहुत ज्यादा जागरूक है और अच्छी तरह से काव्य रचना करते समय समझती है कि उसे क्या लिखना है, कैसे शब्दों का चयन करना है, किस तथ्य को उजागर करना है और क्या नहीं लिखना है। यही कारण है कि पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में स्त्री विमर्श को पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ है।

4. साहित्य का क्षरण करने वाले घटकों में आप बाज़ारवाद की भूमिका को कितना अहम मानते हैं? क्या बाज़ारवाद ने पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता को भी प्रभावित किया है?

उत्तर- साहित्य का क्षरण करने में बाजारवाद पूर्ण रूप से जिम्मेदार है। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि कविता लिखने का मूल कारण ही बदल चुका है। लोग सिर्फ लिख रहे हैं या कि यूं कहिए कि कलमघसीटी का दौर आ गया है। जिसे लिखना नहीं आता, वह भी आज कवि बना फिरता है और कारण सिर्फ वही है, साहित्य का बाजारीकरण।

5. बाज़ार और सत्ता कैसा साहित्य चाहते हैं? क्या आज पंजाब का हिंदी कवि भी सस्ती लोकप्रियता के जाल में फंस कर सत्ता के नजदीक रहने की कोशिश कर रहा है?

उत्तर- पूर्णरूपेण सत्य। आज साहित्य पूरी तरह से सत्ता के नजदीक रहने के लिए अपना अस्तित्व गँवा चुका है और यही सबसे बड़ा कारण है आज हिंदी और हिंदी साहित्य के क्षरण का। सस्ती लोकप्रियता और पुरस्कारों का लालच कवियों के सिर चढ़कर बोल रहा है।

6. आपकी दृष्टि में क्या 21वीं सदी की पंजाब की हिंदी कविता हिंदी साहित्य के समानांतर विमर्शों को छू पाई है?

उत्तर- बिल्कुल नहीं। पंजाब की हिंदी कविता 21वी सदी के हिंदी साहित्य के समानांतर विमर्शों से कोसों दूर है और सच्चाई यह है कि अभी भी आँखों पर पट्टी बांध कर पंजाब के हिंदी साहित्य में कविता और कथा लेखन का कार्य जोरों शोरों से चल रहा है।

7. एक कवि को किन लोगों के लिए लिखना चाहिए?

उत्तर- कवि को लिखना चाहिए उन लोगों के लिए, जिन्हें समाज में इंसाफ नहीं मिलता, जो समाज से पिछड़े हुए हैं, जो समाज में एक स्थान चाहते हैं, जिनको समाज ने दुत्कारा हुआ है।

8. पंजाब की बीसवीं सदी की हिंदी कविता और 21वीं सदी की हिंदी कविता में विषय चयन और भाषा-शैली इत्यादि को लेकर आपको कौन से मुख्य अंतर दिखाई पड़ते हैं?

उत्तर- 20वीं सदी की भाषा के मुकाबले 21वीं सदी की भाषा और शब्दों का चयन बहुत ही गिरे हुए स्तर का है। चंद कवियों को छोड़ सभी कवि ऐसे फूहड़ शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं जिनका साहित्य से कोई मतलब नहीं है।

9. यह कहा जाता है कि साहित्य समाज में क्रांति की दिशाओं का संकेतन करता है। क्या पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता समाज में बदलाव या क्रांति लाने में सक्षम है?

उत्तर- क्रांति का इस दौर के साहित्य में स्थान है ही नहीं। क्रांति की बात करने वाले कवि को दबा देने, कुचल देने का दौर चल रहा है।

10. यह माना जाता है कि पंजाब के कवियों ने हिंदी कविता की दुनिया में पर्यावरण और बच्चों की चिंता कम है। आपकी राय में यह बात कितनी सच है?

उत्तर- सही कहा आपने। वातावरण और बच्चों के बारे में लिखने वाले कवि दीपक लेकर ढूंढने से भी नहीं मिलते।

11. नए उभरते हुए कवियों को दृष्टिगत रखते हुए आपको पंजाब की हिंदी कविता का भविष्य कैसा प्रतीत होता है?

उत्तर- युवा पीढ़ी के कुछ अच्छे कवियों को पढ़ा है मैंने और उनसे एक उम्मीद का दीया जला है कहीं मन में कि शायद हिंदी कविता को पंजाब में ये पीढ़ी जिंदा रख सकेगी।

साक्षात्कार : डॉ. गीता डोगरा

परिचय:

कवयित्री व लेखिका

प्रकाशित साहित्य: 14 का लेखन व सम्पादन।

इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में लेख राजनीतिक साक्षात्कार प्रकाशित साहित्यिक, पत्रिकाओं में नियमित रचनाएँ प्रकाशित।

पता: 379/2, फ्रेण्डज़ कॉलोनी, डी.ए.वी. रोड

जालंधर शहर-144008 (पंजाब)

संपर्क : 9876800379, 7889187125

1. सर्वप्रथम मैं आपसे पूछना चाहूँगी कि औपचारिक शिक्षा से अलग किस वजह से, ऐसी क्या परिस्थितियाँ बनी कि आपका रुझान लेखन की ओर बढ़ा?

उत्तर- कोई वजह नहीं रही। एक तो मैं छोटी थी उम्र में। होली का दिन था खूब रौनक थी मोहल्ले में। सुनकर कुछ पंक्तियाँ दिमाग में उभरी मैंने पांच छ: बार दोहराया। मुझे अहसास न था कि यह कविता है और इसे मैंने लिखा है। छठी कक्षा में थी तब। जब इसे मैंने अपनी माँ को सुनाया तो वे बड़ी खुश हुई वे लिटरेचर पढ़ने की दीवानी थी। मैं मोहल्ले की लाइब्रेरी से उनके लिए उपन्यास पढ़ने को लाकर देती माँ खुश होती। उन्होंने बताया कि यह मेरी खुद की रचनाएँ हैं। मेरा मन सचमुच जैसे झूमने लगा और साथ ही कई कुछ मन में चलने लगा? वहीं से लेखन भी अंगड़ाई लेता

रहा। सामाजिक बोध भी हुआ। पहले तो प्रेम कविताएँ ही लिखी जाती हैं पर जल्द ही रुख बदला। बाजार से गुजरती तो आसपास नोटिस लेने लगी। वही कविताओं में उतरने लगा।

2. जैसे फैसला देते समय जज के अपने संस्कार उसके निर्णय को प्रभावित करते हैं क्या वैसे ही कवि के अपने संस्कार, पूर्वाग्रह विचारधारा, उसके मन की स्थिति, देश काल का वातावरण कृति को प्रभावित करते हैं? कविता की तटस्थता को सबसे ज्यादा क्या प्रभावित करता है? क्या पंजाब का हिंदी कवि तटस्थ रहते हुए गंभीर काव्य की रचना कर रहा है?

उत्तर- मन में जो चलता है वही संस्कार बन जाते हैं। घर का माहौल साहित्यक था। भाई बहनों में मैं ही थी जिसे लिटरेचर की समझ आ रही थी मेरी विचारधारा लिटरेचर पढ़ने के साथ साथ मैच्योर हुई इसमें वे भावनाएँ शामिल होती गई जो अपने आसपास देखा महसूस किया। कहते हैं न हर कोई उस तरह संवेदनशील नहीं होता जैसे कि एक कवि। कवि किसी भी घटना के भीतर कवि तह तक पहुँचता है, उसे प्रस्तुत करता है।

3. आपकी राय में किसी कविता की उत्कृष्टता को जांचने का पैमाना क्या है?

उत्तर- कविता एक पहरन की तरह है जो आप ही को नहीं सब को भाए। उसके साथ जिए उसके साथ पिघले। अगर कविता आपको सोचने पर मजबूर कर दे कि यह तो मेरे मन की बात है तो वही कविता की उत्कृष्टता है।

4. पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक सरोकारों को लेकर आप क्या राय रखते हैं?

उत्तर- पंजाब की हिंदी कविता में भी कुंठाएँ आ गई हैं। समाज से अलग नहीं है कविता और हर कोई अपने भीतर झांकता है तो बहुत से सवाल उठते हैं जिनका जवाब नहीं मिलता उसे। वह हर तरफ से अवसाद से ग्रस्त है यही वजह है कि कविता भी उसी परिवेश में जीती है पर कवि के पास शब्द हैं, आस है, वह आसपास देखता है महसूस करता है, लिखता है दिशा दिखाता है उनमें सुरेश सेठ, डॉ. तरसेम गुजराल की कुछ कविताएँ आकर्षित करती हैं। पंजाब में और भी कवि बलविंदर अत्री, सुभाष रस्तोगी और प्रेम विज ने भी अंदाज बदला है। उनमें सामाजिक सरोकार भी हैं। जिस परिवेश में हम जी रहें हैं वह कभी कटाक्ष तो कभी पीड़ित हो कर कविता में शामिल हो गया है।

5. एक मानता यह है कि वह कविता अच्छी होती है जो अपने समय को दर्ज करती है जिनमें रचना का कालखंड होता है दूसरी ओर वे कविताएँ दीर्घजीवी मानी जाती हैं जो इन सीमाओं से, कालखंड से परे होती हैं और जिनकी प्रसंगिकता हर समय में समान रहती है इस विषय में आपका क्या मानना है? क्या इस पैमाने पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता खरी उतरती है?

उत्तर- समय के साथ चलने वाले लेखन को ही श्रेष्ठ माना जाता है। कविता जिंदा भी इसीलिए है कि वह वक्त के साथ ही चलती है। रोमांस व रोमांचक कविताओं के साथ जीने का समय नहीं है। ऐसे में समाज के लिए नए निर्माण की प्रक्रिया में कविता ही

सही भूमिका निभा सकती है। वह एक संदेश दे सकती है और गाहे बगाहे देती भी है। पर इन संदेशों का प्रभाव कितना पड़ा है। कविता भला कितने लोगों तक पहुँचती है। कविता संग्रह छप जाने में ही संतुष्ट हो जाना बड़ी गलती है। कवि कोशिश करते हैं पर उन्हें न तो पाठक ही मिलते हैं और न वह मौका जिसमें वह सीधा आम जनता से जुड सकें। पंजाब में कविता लिखी जा रही है पर आम पाठक तक पहुँच पाए ऐसा रास्ता नहीं मिल पा रहा।

6. आपकी राय में क्या पंजाब के हिंदी कविता में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श केवल एक कागज़ी लड़ाई है या जिसका कोई व्यावहारिक रूप भी सामने आता है?

उत्तर- स्त्री विमर्श महज कागजी लड़ाई नहीं। क्या आप महसूस नहीं करते कि पंजाब में स्त्री उत्पीडन किसी हद तक कम भी हुआ है? तेजाब फेंकने, भ्रूण हत्या व दहेज क मामले कम हुए हैं। आँकड़ों के अनुसार भी यही है। मात्र कागजों में नहीं यह लड़ाई चलती रहनी चाहिए। लिटरेचर ने अपनी भूमिका निभाई और निभा रहा है

7. आपकी दृष्टि में क्या यह सही है कि आज पंजाब के समकालीन हिंदी कवियों का एक बड़ा वर्ग सस्ती लोकप्रियता के जाल में फंस चुका है?

उत्तर- मैं सहमत हूँ। फेसबुक के माध्यम से हम कई साहित्यिक लोगों तक पहुँच तो जाते हैं पर अक्सर कुछ ऐसे नए लिखने वाले जो लेखक या कवि नहीं वे इधर उधर से उठाई गई पंक्तियाँ जोड़ तोड़ कर प्रस्तुत कर देते हैं, वे गुमराह करते हैं। यह सस्ती लोकप्रियता उन्हें तो अच्छी लगती होगी लेकिन दूसरों को खराब करती है लेकिन हम सब इस दौड़ में शामिल हैं पर इससे नुकसान अधिक है, रही बात समकालीन कवियों

की तो ऐसी बात भी नहीं। ये कवि समझदार कवि हैं और संवेदनशील भी। कवि अपना वजूद समझता है, किसी प्रलोभन में नहीं पड़ता। कवि सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में नहीं पड़ना चाहेगा अगर पड़ता है तो नुकसान उठाएगा।

8. साहित्य का क्षरण करने वाले घटकों में बाज़ार संचालित सोशल मीडिया की भूमिका को आप कितना अहम मानते हैं? क्या पंजाब की हिंदी कविता भी इससे प्रभावित हुई है?

उत्तर- सोशल मीडिया की भूमिका किसी हद तक तो ठीक है पर साहित्यिक भूमिका को मैं नहीं समझती कि वह सार्वजनिक रूप से साहित्य क्षेत्र के लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। सूचना तक ठीक है। पंजाब की कविता भी इससे प्रभावित नहीं वर्ना इस साइट पर कविताएँ ही मिलती। जबकि एक विशेष दिन समय निश्चित हो तो शायद कुछ हो पर सीरियस कविता सुनेगा कौन?

9. आजकल एक नया प्रयोग चलन में है कि तथ्य के ना होते हुए भी शिल्प पर ही पूरा ध्यान लगा दिया जाए। क्या आपको यह चलन पंजाब की हिंदी कवियों में भी दिखाई देता है? आपकी दृष्टि में एक कवि की प्रतिबद्धता अधिक महत्त्व रखती है या उसका शिल्प?

उत्तर- देखिए कविता में तथ्य और शिल्प दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। एक को निकाल दें तो कविता का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जो कवि तथ्य रहित कविता लिखता है वह कवि नहीं। शिल्प नहीं तो कविता में रस नहीं। ऐसी बहुत से कवि हैं जो इस तरफ ध्यान नहीं देते। एक कविता जिस अंदाज में लिखी जाए तो उसी अंदाज में दसियों

कविताएँ आप फेस बुक पर देख सकते हैं पर शिल्प भी हो यह जरूरी नहीं। यही कविता पर प्रश्न चिन्ह लगाती है।

10. कविता रचनाकार के भीतर की अकुलाहट, व्यग्रता और बेचैनी को जज़्ब किए होती है, क्या इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंजाब की हिंदी कविता भी रचना के भीतर पैठे लेखक से संवाद है?

उत्तर- कवि जब भी किसी कविता की रचना करता है तो अक्सर उसके भीतर एक अकुलाहट-सी होती है वह समस्या और समाधान के बीच त्रिशंकु की भांति लटक जाता है। मेरी एक पहचान वाले कवि ने कहा कविता में है क्या? चुटकी बजायो, कविता सुनाओ। पर कविता में आज है, कल है, बीता समय भी। सामंजस्य बिठाइए तो, शब्दों को चुनें, आपको मात्र दस या बीस पंक्तियां में अपनी बात रखनी है। शिल्प भी हो और प्रतिबद्धता भी। लोग कविता को इतना आसान क्यों समझते हैं?

11. वर्तमान में पंजाब की काव्य विधा जिस मोड़ पर है उसे लेकर आप क्या कहना चाहेंगी? नये लेखकों या उन लोगों के लिए जो अभी लिखने की शुरुआत कर रहे हैं के लिए कोई सलाह देना चाहेंगी?

उत्तर- इसमें कोई शक नहीं कि पंजाब में अच्छी कविता लिखी जा रही है। बहुत से कवि नए हैं उनमें प्रतिभा भी है। वे नए पुराने कवियों को जरूर पढें अच्छे से। समय रहते वे समय-समय पर कविता संबंधी लेख-रिपोर्ताज पर भी नज़र मारें। कवि संवाद जरूर करे, संवाद रचना से हर लेखक, कवि को कुछ न कुछ हासिल होता है। कवि के

भीतर कई शंकाएँ, कई सवाल होते हैं, संवाद रचने से कवि को समाधान मिल जाते हैं। नए लेखकों को हडबडी में अपनी रचना को फाइनल नहीं मान लेना चाहिए। बारबार पढ़े। जहाँ सुधार की गुंजाइश लगे करें।

साक्षात्कार : बलविंदर सिंह् अत्री

परिचय:

सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन और पत्रकारिता

16 फरवरी 1954 को भारत के पंजाब प्रांत के सीमावर्ती शहर अमृतसर में

कविता और पत्रकारिता के क्षेत्र में चर्चित नाम तथा अलग पहचान।

क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय में सेवा निभाते हुए प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो से उप निदेशक के पद से सेवामुक्त।

विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरर्राष्ट्रीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं में कविताओं का प्रकान दूरदर्शन और आकाशवाणी से रचनाओं का प्रसारण।

सम्पर्क : स्थाई पता 358, तिलक नगर, (पंजाब) 143001

मोबाइल: 9888982232

1.आपको कब और कैसे पता चला कि आपको हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र से जुड़ना है? ऐसे किसी विशेष कारण या व्यक्तित्व के विषय में बताएं जिस से प्रेरित होकर आप लेखन की ओर रुख किया?

उत्तर- कॉलेज जीवन में मैं हिंदी का विद्यार्थी कभी नहीं रहा। पत्र /पत्रिकाओं को पढ़ने का जनून रहता था।1974 में डी ए वी कॉलेज अमृतसर के पुस्तकालय में बैठा हुआ था कि हिंदी के प्रोफेसर डॉ.धर्म स्वरूप गुप्त मेरे पास आ कर बैठ जाते हैं। कुछ बातें हुईं और यह सिलसिला लगातार जारी रहा। उन्होंने ही मुझे हिंदी दिवस के बारे में बताया और प्रेरित किया कि हिंदी दिवस पर कोई आयोजन किया जाए। कुछ दोस्तों को साथ लेकर साहित्यक संस्था का गठन किया और अमृतसर में पहली बार

14 सितम्बर 1974 को सार्वजनिक रूप से हिंदी दिवस का आयोजन हुआ। हिंदी पर चर्चा के साथ कवि गोष्ठी भी हुई।लिखने का कुछ शौक था फिर ऐसे साहित्यक मित्र मिले जब भी मिलते गोष्ठी हो जाती। एक दूसरे को सुनते जहाँ कमी लगती एक दूसरे को बताते। संक्षेप में हिंदी से जोड़ने का काम डॉ.धर्म स्वरूप गुप्त ने किया तो पठन पाठन और साहित्यिक वातावरण ने मेंरे भीतर के कवि को जन्म दिया।

2. क्या आप पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता को समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम मानते है?

उत्तर- पंजाब की हिंदी कविता समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह सक्षम रही है। भले ही ज्यादातर कवियों ने प्रेम और प्रकृति को अधिक महत्त्व दिया है। पंजाब की हिंदी कविता का सही अवलोकन नहीं हुआ है। पंजाब की कविता के बिना हिंदी कविता की बात अधूरी रहेगी।

3. आपकी नज़र में क्या स्त्री लेखन स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के लिए स्त्रियों की समस्याओं पर लिखा जाने वाला साहित्य ही है? स्त्री विमर्श के बारे में अपने विचार व्यक्त करें। क्या पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में स्त्री विमर्श को पर्याप्त स्थान मिला है?

उत्तर- मेरा मानना है महिला समस्याओं पर लिखना सिर्फ महिलाओं का एकाधिकार नहीं है यह विषय पुरुषों से भी जुड़ा हुआ है। पंजाब की हिंदी कविता में महिला विमर्श को वह स्थान नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। अफसोस है कि पंजाब तो क्या अन्य राज्यों में भी महिला विमर्श में कोई नयापन और ताजगी नज़र नहीं आ रही। हम पिछले कई वर्षों से घिसे पिटे प्लेटफार्म पर चलते आ रहे हैं।

4. साहित्य का क्षरण करने वाले घटकों में आप बाज़ारवाद की भूमिका को कितना अहम मानते हैं? क्या बाज़ारवाद ने पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता को भी प्रभावित किया है?

उत्तर- बाज़ारवाद का असर तो हर जगह होता है। पंजाब भी इससे अछूता नहीं है। बाज़ारवाद के प्रभाव में प्रकाशकों ने स्तर की बजाए अपने प्रॉफिट को महत्त्व दिया है। कुछ समय तो ऐसा भी रहा कि प्रकाशक कविता को कोई महत्त्व ही नहीं देता था। अधिक पैसे लेकर पुस्तक प्रकाशित कर कवि को सौंप दी और स्वयं उसके वितरण और प्रचार प्रसार से मुक्त हो गए। बाज़ारवाद से भी ज्यादा नुकसान तो हिंदी कविता को पंजाब के ही वरिष्ठ आत्ममुग्ध कवियों ने पहुँचाया है।

5. बाज़ार और सत्ता कैसा साहित्य चाहते हैं? क्या आज पंजाब का हिंदी कवि भी सस्ती लोकप्रियता के जाल में फंस कर सत्ता के नजदीक रहने की कोशिश कर रहा है?

उत्तर- बाज़ार और सत्ता इस समय राग दरबारी साहित्य की अपेक्षा करते हैं मेरे लिए यह सन्तोष की बात है कि पंजाब के अधिकतर हिंदी कवि इस सब से दूर रह कर कविता लिख रहे हैं। कुछ एक कवि हैं जो सत्ता के भय से खामोश रहना बेहतर समझते हैं। इसे सत्ता के नजदीक जाने का यत्न भी माना जा सकता है, पर अधिकतर कवि मुखर हो कर लिख रहे हैं।

6. आपकी दृष्टि में क्या 21वीं सदी की पंजाब की हिंदी कविता हिंदी साहित्य के समानांतर विमर्शों को छू पाई है?

उत्तर- पंजाब की हिंदी कविता को समग्र रूप से देखें तो निस्संदेह कहा जा सकता है 21वीं सदी की हिंदी कविता हिंदी साहित्य के समानान्तर विमर्शों को छूने में सफल रही है पर अभी भी इसे उत्कृष्ट बनाने की गुंजाइश है।

7. एक कवि को किन लोगों के लिए लिखना चाहिए?

उत्तर- यह अपने आप में ही बड़ा जटिल प्रश्न है कि कवि को किन लोगों के लिए लिखना चाहिए इसका स्वाभाविक जवाब होगा कि हाशिये पर खड़े लोगों के लिए पर मुझे लगता है कि कवि को जो गलत हो रहा है उसके विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद करनी चाहिए। गलत सत्ता में हो रहा हो, व्यवस्था में हो रहा हो समाज में हो रहा हो या धर्म में हो रहा हो। जो गलत को गलत नहीं कह सकता वह कवि हो ही नहीं सकता।

8. पंजाब की बीसवीं सदी की हिंदी कविता और 21वीं सदी की हिंदी कविता में विषय चयन और भाषा-शैली इत्यादि को लेकर आपको कौन से मुख्य अंतर दिखाई पड़ते हैं?

उत्तर- मैं 20वीं सदी के अंतिम तीन दशकों की हिंदी कविता का साक्षी रहा हूँ। पंजाब की हिंदी कविता आज की तरह तब भी समृद्ध थी। अब इतना अंतर देखता हूँ कि बिम्ब तथा प्रतीकों का चलन अलोप होता जा रहा है। आज का कवि अधिक मुखर है, बढ़िया मेटाफ़र है उसके पास जिसका वह बखूबी से इस्तेमाल करता है। भाषा शैली भी बेहतर हुई है पर 20 वीं सदी के मुकाबले आज कई बार कविता में स्पॉट नेस भारी होती नज़र आती है।

9. यह कहा जाता है कि साहित्य समाज में क्रांति की दिशाओं का संकेतन करता है। क्या पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता समाज में बदलाव या क्रांति लाने में सक्षम है?

उत्तर- मेरा मानना है कि पंजाब की हिंदी कविता समाज में बदलाव लाने में पूरी तरह सक्षम है पर अफसोस की बात है कि पिछले कुछ अरसे से पंजाब की हिंदी कविता को सही पटल पर रखने का कोई गम्भीर यत्न ही नहीं किया गया बल्कि इसके विरुद्ध साजिशन उस कविता को आगे किया गया जो तथाकथित समीक्षकों के प्रिय थे। खैर अब स्थिति बदली है। पंजाब की सही हिंदी कविता लोगों तक पहुँच रही है जो क्रांति तो नहीं पर समाज में बदलाव लाने को आतुर दिखाई पड़ती है।

10. यह माना जाता है कि पंजाब के कवियों ने हिंदी कविता की दुनिया में पर्यावरण और बच्चों की चिंता कम है। आपकी राय में यह बात कितनी सच है?

उत्तर- हाँ, यह सत्य है कि पर्यावरण और बच्चों को जो स्थान पंजाब की हिंदी कविता में मिलना चाहिए था नहीं मिला। पर मिला जरूर है। आपको कविता में नदी नाले, पहाड़, पेड़ आदि मिलेंगे पर अंततः इन पर प्रेम भारी पड़ जाता है। यह चिंता का विषय है।

11. नए उभरते हुए कवियों को दृष्टिगत रखते हुए आपको पंजाब की हिंदी कविता का भविष्य कैसा प्रतीत होता है?

उत्तर- पंजाब की कविता का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। कुछ नए प्रकाशन हाउस कविता को प्राथमिकता देकर प्रकाशित कर रहे हैं। सिर्फ प्रकाशन ही नहीं कविता के

प्रचार प्रसार को संवाद को उत्साहित कर रहे हैं। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि पंजाब की हिंदी कविता के बिना कविता की बात करना ही बेमायने है।

साक्षात्कार : प्रो०सरला भारद्वाज

परिचय:

एम०ए० (संस्कृत, हिंदी)

पूर्वाध्यक्ष संस्कृत विभाग एस०डी० कॉलेज फॉर वूमैन, जालन्धर।

पंजाब के दैनिक हिंदी पत्रों एवं साहित्यिक पत्रिकाओं में कविताओं एवं लेखों का प्रकाशन।

राष्ट्रीय संगोष्ठियों में पत्रवाचन एवं सहभागिता।

भाषा विभाग पंजाब, दूरदर्शन एवं आकाशवाणी, जालन्धर तथा विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित कवि गोष्ठियों में भागीदारी।

आकाशवाणी जालन्धर से साहित्य-सुधा कार्यक्रम के अन्तर्गत 50 से अधिक वार्ताएं प्रसारित ।

धार्मिक, साहित्यिक तथा सामाजिक संस्थाओं में भाषण एवं प्रवचन।

1. आपको कब और कैसे पता चला कि आपको हिंदी भाषा और साहित्य के काव्य क्षेत्र से जुड़ना है। ऐसे किसी विशेष कारण या व्यक्तित्व के विषय में बताएं जिससे प्रेरित होकर आपने अपने काव्य के क्षेत्र की ओर रूख किया?

उत्तर: बाल्यकाल से ही मुझे परिवार में सांस्कृतिक और साहित्यिक वातावरण मिला। मेंरे पिताश्री हंसराज शर्मा सेना में थे। अपनी कम्पनी के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के इंचार्ज रहे। वे नाटक लिखते थे, अभिनय करते थे। गीत लिखते थे, उन्हें स्वयं स्वरबद्ध करते थे और गाते थे। मेरा भाई अशोक प्लेटो कवि था और कुशल वक्ता था। पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ द्वारा आयोजित के.के. ग्रोवर भाषण प्रतियोगिता में दो बार

प्रथम स्थान पर रहा। उसे संगीत, नृत्य तथा नाटक की गहरी समझ थी। उसे डी.ए.वी. कॉलेज जालन्धर ने 'रोल ऑफ आनर' से सम्मानित किया था। मैं बाल्यकाल से ही गाने में रूचि लेती थी। सारा दिन गुनगुनाती रहती थी। किशोरावस्था तक आते-आते मैं गुनगुनाते-गुनगुनाते कब गीत और कविता लिखने लगी, पता ही न चला। इतना याद है कि पहली कविता पर पिताश्री ने मेरी पीठ थपथपाते हुए मुझे पुरस्कार स्वरूप 10 रुपये दिए थे। उन्हीं के आशीर्वाद और प्रोत्साहन के कारण तथा भाई के प्रभाव के कारण आज मेरे नाम तीन काव्य संग्रह हैं -

1. कविता मेरा पता

2. धूप के रूप

3. खिड़की से झांकता गुलाब

अपना प्रथम काव्य संग्रह 'कविता मेरा पता' मैंने अपने पिताश्री को ही समर्पित किया है।

2. यह कहा जाता है कि अपने समय के बदलते परिवेश का प्रभाव साहित्य पर देखा जा सकता है। क्या आप भी मानते हैं कि 20वीं सदी क आखिरी दशक में जो व्यापक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलाव हुए, उनका प्रभाव साहित्य पर पड़ा? क्या 21वीं शताब्दी की पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता इस प्रभाव को रेखांकित कर पाई है?

उत्तर: साहित्य कभी भी अपने परिवेश से अलग होकर जीवन्त नहीं रह सकता। उसके लिए सामाजिक समस्याओं और बदलावों को रेखांकित करना जरूरी है।

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, कम्प्यूटर टेक्नालोजी, डिजिटल क्रान्ति आदि 20वीं शताब्दी क अन्तिम दशक की उल्लेखनीय घटनाएँ हैं जिसने पिछली सदी की अपेक्षा लोगों को अधिक एकजुट किया है और इससे वैचारिक समरसता को बल मिला है। उत्पादन के सभी क्षेत्रों में मशीनों का इस्तेमाल होने के कारण रोजगार के अवसर कम हो गए हैं। रोजगार न मिल पाने की स्थिति में लोग निराश होकर तनावग्रस्त हो गए। पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में इन घटनाओं के परिणामस्वरूप होने वाले राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलावों के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया को देखा जा सकता है।

3. आज रचनाकारों के बीच साहित्य के क्षेत्र में एकदूसरे से आगे निकलने की और एक दूसरे को पिछाड़ने की रणनीति देखी जा रही है। क्या यह आपको पंजाब के वर्तमान हिंदी कवियों में भी दिखाई देती है?

उत्तर: प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं का और अधिक गुणात्मक बनाते हुए साहित्यिक क्षेत्र में अधिकाधिक मान-सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त करने की इच्छा रखता है। स्वयं को लेखक के रूप में प्रतिष्ठित करने की स्वस्थ प्रतिस्पर्धा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से चलती रहती है। पंजाब के कवि भी इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं हैं।

4. हिंदी साहित्य परम्परा में हमारे अधिकांश कवियों ने जीवन और साहित्य को अलग करके नहीं देखा है। एक ही समतोल पर जीवन और साहित्य को जिया है। क्या यह बात पंजाब के वर्तमान हिंदी कवियों के विषय में भी खरी उतरती है?

उत्तर: जैसे सफल अभिनेता भावाविष्ट ने होकर अभिनय में तन्मय होता है। उसके अभिनय के आधार पर भी उसकी कला का मूल्यांकन होता है। इसी प्रकार साहित्यकार भी अपने निजी जीवन में कैसा है? किस विचारधारा का समर्थक है? इसका उसकी साहित्यिक रचना से अपरिहार्य संबंध न जोड़कर रचना के आधार पर भी उसका समग्रतः मूल्यांकन किया जाता है। भारत में यही स्वस्थ साहित्यिक परम्परा है।

5. आपको लगता है कि ग्लोबलाइजेशन या भूमंडलीकरण ने हिंदी कविता को भी प्रभावित किया है। यदि हाँ तो भूमंडलीकरण के कारण आपको पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में कौन से परिवर्तन नज़र आ रहे हैं?

उत्तर: वैश्वीकरण ने हिंदी कविता को विश्व में अपने पाठकों तक पहुँचाने के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है। हिंदी कविता की वैश्विक स्तर पर माँग में जितनी वृद्धि होगी उतना ही उसे अपने विषय वस्तु को सक्षम, समृद्ध और विविध मुखी करना होगा। निकट भविष्य में हिंदी कविता विश्व की अन्य भाषाओं में लिखी जा रही कविताओं के समकक्ष एक व्यापक और वैश्विक भूमिका में दिखाई देगी। इस समय पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता वैश्विक स्तर पर चर्चित सामाजिक सरोकारों और समस्याओं को व्यक्त कर रही है।

6. आपकी राय में अच्छी कविता क्या है? क्या पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता को अच्छी कविता कहा जा सकता है?

उत्तर: अच्छी कविता क्या होती है? इस पर भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यचार्यों ने पर्याप्त चिन्तन किया है और चिन्तन अभी भी हो रहा है। अभी तक यह प्रश्न अनुत्तरित

है। अच्छी कविता के बारे में सामान्यतः कहा जा सकता है कि वह पाठकों/श्रोताओं के दिल में उतर जाती है और वे समय-समय पर पुनर्पठन करके उसका रसास्वादन करते रहते हैं। प्रत्येक समर्थ कवि की कुछेक कविताएं ऐसी अवश्य होती हैं।

7: दलित, स्त्री, पर्यावरण आदि विमर्शों में 21वीं सदी की पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता का क्या स्थान है?

उत्तर: दलित, स्त्री और पर्यावरण आधुनिक हिंदी कविता के लिए विमर्श के वे महत्त्वपूर्ण विषय हैं जिनका प्रतिपादन उसे प्रासंगिकता प्रदान करता है। पर्यावरण-प्रदूषण तो वैश्विक स्तर पर ज्वलन्त समस्या बन चुका है। इस समस्या को सुलझाने के लिए समाज का संवेदनशील होना जरूरी है। पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में संवेदनशीलता को जागृत करने और उसके अनुसार समाज और व्यक्ति को सक्रिय बनाने का निस्सन्देह आग्रह दिखाई देता है। जिसे हम स्त्री-विमर्श और दलित कहते हैं वह वस्तुत स्त्रियों और दलितों की व्यथा कथा है। महादेवी वर्मा वर्तमान हिंदी साहित्यकार हैं जिन्होंने स्त्री की व्यथा कथा को समझा और रचनात्मक रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की। पंजाब में स्त्री विमर्श को आगे बढाते हुए अने कवयित्रियों ने अपनी पहचान बनाई है। स्त्री विमर्श की तरह दलित विमर्श में आम आदमी के दुःख-दर्द तनाव संत्रास का चित्रण करने में पंजाब की हिंदी कविता ने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है।

8. आपके अनुसार क्या पंजाब के वर्तमान कवि अपनी कविता के माध्यम से समसामयिक चिंताओं या विषयों को सही प्रकार से स्वर दे पाये हैं?

उत्तर: पंजाब के वर्तमान कवि समाज में गरीबी, बेरोजगारी, नौकरशाही, नेतागिरी, अर्थवाद, जातिवाद, प्रान्तवाद, भाई-भतीजावाद, नैतिक अवमूल्यन आदि समस्याओं को देख रहे हैं। आज संयुक्त परिवार विवाह-व्यवस्था, सामाजिक अनुशासन क्षीण हो रहा है। तलाक बढ़ रहे हैं। जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। इन समस्याओं से वे अद्विग्न और उद्वेलित हो रहे हैं। इनके प्रति अपनी संवेदनशील प्रतिक्रिया को कविताओं में बराबर दर्ज कर रहे हैं।

9. क्या पंजाब की समकालीन हिंदी कविता सांस्कृतिक समस्याओं को समझ कर उन्हें यथास्थिति अभिव्यक्त कर सकने में सक्षम है?

उत्तर: वैश्वीकरण और बाजारवाद के आर्थिक प्रलोभन में हमारी सांस्कृतिक विरासत और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति नई पीढ़ी को उदासीन बनाने के एि धर्मान्तरण आदि अनेक उपाय किए जा रहे हैं। बुद्धिजीवियों का यह दायित्व है कि वे प्रहरी की तरह लागों को याद दिलाते रहें कि कहीं भारत धीरे-धीरे इण्डिया ही न बनकर रह जाये और अपनी संस्कृति की पहचान ही न खो दे। हमारी संस्कृति ही हमारे राष्ट्र की अस्मिता है। इस सांस्कृतिक समस्या पर सामाजिक और धार्मिक स्तर पर विमर्श शुरू हुआ है। पंजाब की समकालीन कविता में भी राष्ट्रवाद के माध्यम से इस समस्या के प्रति चिन्ता व्यक्त की जा रही है।

10. आपकी दृष्टि में पंजाब के समकालीन कवियों की चुनौतियाँ क्या हैं?

उत्तर: पंजाब के समकालीन कवियों के समक्ष वे सब चुनौतियाँ हैं जिनका अन्य प्रदेश के हिंदी कवि सामना कर रहे हैं। इस समय कविता को समाज के लिए किस प्रकर

प्रासंगिक बनाए रखा जाए यह सबसे बड़ी चुनौती है। हाशिए पर पड़े आम आदमी से संवाद रचने तथा मानवता को बचाए रखने के कलिए उसके अन्दर स्वाभिमान पैदा करने की चुनौती भी कम नहीं।

11. आप शोध कार्य को साहित्य की किसी विद्या के विकास में कितना अहम मानते हैं? आप साहित्य की विभिन्न विधाओं पर कार्य कर रहे शोधार्थियों को क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर: प्रत्येक शोध कार्य साहित्य की प्रत्येक विधा का विश्लेषण और मूल्यांकन करते हुए उसकी विशिष्टता को प्रतिष्ठित करता है। जहाँ तक शोधार्थियों के लिए सन्देश का प्रश्न है, शोधार्थी अपने शोध कार्य के माध्यम से अप्रचलित मान्यताओं, आख्यानों, पूर्वाग्रहों तथा अविकसित अवधारणाओं से प्रभावित हुए बिना शास्त्र-सम्मत और तर्कसंगत तथ्यों के वैज्ञानिक मानदण्डों द्वारा विश्लेषणात्मक अध्ययन और नई दृष्टि से विषय के प्रतिपादन पर बल दें।

साक्षात्कार : डॉ. धर्मपाल साहिल

परिचय:

कवि, लेखक, उपन्यासकार व कहानीकार

जन्म 9 अगस्त 1958 (गाँव, जिला होशियारपुर पंजाब)

शैक्षणिक योग्यता: एम.एस.सी. (रसायन शास्त्र) एम.एड., विद्यावाचस्पति(मानद)

सम्प्रति: प्रिंसीपल (सेवानिवृत)

उपन्यास: समझौता एक्सप्रेस, बेटी हूँ, न बायस्कोप खिलने से पहले, ककून, आर्तनाद, और कितनी

कहानी संग्रहः नीलकंठ, किसी भी शहर में, गाउँ

काव्य संग्रहः अहसासों की अंजुरी में, मेरे अन्दर एक समन्दर, पंखों पर उगती भोर, पानी के पास, मुझ में कितना कौन?

ई-मेल: dpsahil_panchvati@yahoo.com

1.आपको कब और कैसे पता चला कि आपको हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र से जुड़ना है? ऐसे किसी विशेष कारण या व्यक्तित्व के विषय में बताएं जिस से प्रेरित होकर आप लेखन की ओर रुख किया?

उत्तर: कक्षा दस में पढ़ते हुए मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ पढ़ीं। उनकी तथा अन्य लेखकों की कहानियाँ पढ़ने में रूचि पैदा हुई। एम.एस.सी (कैमिस्ट्री) प्रथम वर्ष के दौरान कालेज की वार्षिक पत्रिका हेतू (1979-80) प्रथम कहानी 'उपहार' प्रकाशित

हुई। मिली सराहना ने और लिखने हेतु प्रेरित किया। मुझे हिंदी साहित्य पढ़ने तथा लिखने हेतु प्रेरित करने के लिस निःसंदेह मुंशी प्रेमचंद को श्रेय जाता है।

2. क्या आप पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता को समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम मानते है?

उत्तर: पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ मानवीय संवेदना की अच्छे ढंग से अभिव्यक्ति हो रही है। अधिकतर कवि आत्ममुग्धा के शिकार हो रहे हैं।

3. आपकी नज़र में क्या स्त्री लेखन स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के लिए स्त्रियों की समस्याओं पर लिखा जाने वाला साहित्य ही है? स्त्री विमर्श के बारे में अपने विचार व्यक्त करें। क्या पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता में स्त्री विमर्श को पर्याप्त स्थान मिला है?

उत्तर: ऐसा नहीं लगता। आज महिला लेखक 'महिलाओं' के घेरे से बाहर निकल कर सम्पूर्ण समाज, राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी अपनी कलम के दायरे में ला रही हैं। पंजाब में डॉ. गीता डोगरा, डॉ.सरला भारद्वाज, डॉ. सीमा जैन सरीखी कथाकार तथा कवयित्रियाँ 'स्त्री समस्याओं' से बाहर निकलकर विभिन्न आयामों, विस्तारों को छू रही हैं, लेकिन स्त्री विमर्श को लेकर अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

4. साहित्य का क्षरण करने वाले घटकों में आप बाज़ारवाद की भूमिका को कितना अहम मानते हैं? क्या बाज़ारवाद ने पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता को भी प्रभावित किया है?

उत्तर: बिना शक बाज़ारवाद का कुप्रभाव जीवन के अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ साहित्य पर भी पड़ा है। लेकिन साहित्य के क्षरण हेतु मैं बाज़ारवाद को प्रमुख घटक नहीं मानता। नई पीढ़ी में साहित्य के प्रति निरन्तर घट रही रूचि का कारण पंजाब के समाज में साहित्यिक माहौल का न होना है। जीवन में अन्य भौतिक संसाधनों, प्रसाधनों, सुविधाओं, ऐशोआराम को प्राथमिकता देने से साहित्य एक तरह से हाशिये पर चला गया है। लेखकों/कवियों ने भी एक तरह से आम जीवन से दूरी बनाई है। साहित्य दो वक्त की रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाता, इसलिए यह भरे पेट वालों का 'शौक' बनता जा रहा है।

5. बाज़ार और सत्ता कैसा साहित्य चाहते हैं? क्या आज पंजाब का हिंदी कवि भी सस्ती लोकप्रियता के जाल में फंस कर सत्ता के नजदीक रहने की कोशिश कर रहा है?

उत्तर: बाजार और सत्ता अपनी लोकप्रियता में वृद्धि करने वाला साहित्य चाहते हैं। सत्ता से ईनाम सम्मान पाने की लालसा लेखकों/कवियों को बाज़ार व सत्ता वाचक बनने हेतु उकसाती है। पंजाब में भी ऐसे लेखकों/कवियों की कमी नहीं है, जो अपनी रचनाओं तथा व्याख्यानों के माध्यम से सत्ता एवं बाज़ारवाद की खूब निन्दा करते हैं। नुक्ता चीनी करते हैं। समाज हेतु खतरा बताते हैं। इनके शोषण के विरोध में आवाज

बुलन्द करते हैं। लेकिन उसी सत्ता से लाखों रुपये के पुरस्कार हेतु उनके तलुए चाटते फिरते हैं। उसी बाज़ारवाद के हाथों की कठपुतली बन जाते हैं। कथनी करनी में यह अन्तर उन्हें बाज़ार की नजरों में गिराता है तथा उनके रचे साहित्य का भी अवमूल्यन होने लगता है।

6. आपकी दृष्टि में क्या 21वीं सदी की पंजाब की हिंदी कविता हिंदी साहित्य के समानांतर विमर्शों को छू पाई है?

उत्तर: ऐसा कहना सम्भव नहीं है। पहले पंजाब की कविता पंजाब के वातावरण, संस्कृति तथा सामाजिक/राजनैतिक के परिदृश्य को पूरी तरह चित्रित करने में सक्षम हो जाए, तभी हिंदी साहित्य के समानंतर विषयों को छू पाएगी। जब राष्ट्रीय स्तर हिंदी कविता की बात चलती है तो मुख्यधारा में पंजाब के एक आधे नाम को छोड़कर और कोई नाम नहीं उभरता। कविता लिख लेना एक बात है। हिंदी साहित्य के आयामों को छूने वाली कविता लिखना एक अलग बात। स्वयं इस बात का दावा करना या "मन तुरा हाजी बगोयम, तू मुरा मुल्ला बगो" वाली बात करना ज्यादा सार्थक नहीं लगता।

7. एक कवि को किन लोगों के लिए लिखना चाहिए?

उत्तर- कवि ने अगर सामाजिक यथार्थ को अपनी कविताओं के माध्यम से चित्रित करना है तो उसे समाज के शोषित, पीड़ित, अन्याय के शिकार लोगों के साथ ही खड़े होना चाहिए। दबे-कुचलों की आवाज़ बनना चाहिए या शाश्वत सत्य को निडरता व दिलेरी से कविता के माध्यम से प्रकट करना चाहिए।

8. पंजाब की बीसवीं सदी की हिंदी कविता और 21वीं सदी की हिंदी कविता में विषय चयन और भाषा-शैली इत्यादि को लेकर आपको कौन से मुख्य अंतर दिखाई पड़ते हैं?

उत्तर: 20वीं एवं 21वीं सदी में जहां तकनीक व सूचना औद्योगिकरण ने जीवन के हरेक क्षेत्र को प्रभावित किया है, साहित्य भी उससे अछूता नहीं रहा। 21वीं सदी में डिजीटलाइजेशन ने सर्वाधिक मानवीय सोच, मानवीय रिश्तों तथा मानवीय आकांक्षाओं पर असर डाला है। पंजाब की कविता भी इन्हीं केन्द्र बिन्दुओं के गिर्द घूमती है। इस युग में बाज़ारवाद के प्रभाव तले व्यापारिकता हमारी व्यावहारिकता में भी शामिल हो गयी है। हमारी दिनचर्या, हमारा रहन-सहन, बोलचाल, गीत संगीत, फिल्में, त्योहार, रस्मों रिवाज, भाषा, साहित्य सभी कुछ इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका है। पंजाब के कवियों ने न सिर्फ लक्षणों की अपनी कविता में निशानदेही की है, बल्कि काव्य शिल्प के अन्तर्गत नई तकनालोजी वाली शब्दावली, मुहावरों, प्रतीकों व बिम्बों का उपयोग भी किया है। इस प्रकार की कुछ झलक सुरेश सेठ, तरसेम गुजराल, डॉ. सीमा जैन, डॉ. बलवेन्द्र सिंह तथा डॉ. महेन्द्र सिंह बेदी, कुलभूषण कालड़ा व डा. गीता डोगरा की कविताओं में देखने को मिलती है।

9. यह कहा जाता है कि साहित्य समाज में क्रांति की दिशाओं का संकेतन करता है। क्या पंजाब की वर्तमान हिंदी कविता समाज में बदलाव या क्रांति लाने में सक्षम है?

उत्तर: साहित्य को सामाजिक बदलाव तथा क्रान्ति जनक भी कहा जाता है। लेकिन वर्तमान में पंजाब की कविता तो स्वयं शिल्प एवं विलय की दृष्टि से बदलाव की स्थिति से गुजर रही है। विशेष लहरों के प्रभाव से जन्मी कविता, तो उस समय में विशेष उत्प्रेरक का कार्य कर जाती है। वर्तमान में पंजाब में कोई ऐसी लहर दिखाई नहीं देती। हां, एक ‘साईलैंट रेवोल्यूशन’ की ओर संकेत अवश्य करती है। वह है वर्तमान में नई पीढ़ी का भारत विवाद पद्धति। संस्कृति से विमुख होकर ‘लिव इन’ की ओर आकर्षित होना। ऐसे में स्त्री-मर्द सम्बन्धों की नई परिभाषा गढ़ने का प्रयास हो रहा है, जिसे युवा कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा आवाज़ देने का प्रयास किया है।

10. यह माना जाता है कि पंजाब के कवियों ने हिंदी कविता की दुनिया में पर्यावरण और बच्चों की चिंता कम है। आपकी राय में यह बात कितनी सच है?

उत्तर: ऐसा नहीं है, पंजाब के कवियों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपनी कविता में पर्यावरण तथा बच्चों के प्रति कुछ न कुछ अवश्य कहा है। केवल पर्यावरण या बच्चों को ही आधार बनाकर कोई विरला कवि ही लिख रहा होगा। इस दृष्टि से पंजाब की कविता के समूचे परिपेक्ष्य में सहमत हुआ जा सकता है।

11. नए उभरते हुए कवियों को दृष्टिगत रखते हुए आपको पंजाब की हिंदी कविता का भविष्य कैसा प्रतीत होता है?

उत्तर : आज के युवा कवियों को आसान एवं सरल माध्यम मिल चुका है फेसबुक और व्हटसैप का। वह जो भी कविता जैसा कुछ लिखते हैं झटपट स्क्रीन पर पोस्ट कर देते हैं, फिर इन कच्ची-पक्की कविताओं पर लाइक/कमैंटस के झूठे-सच्चे मार्कस लेकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। पुराने कवियों की रचनाओं /पुस्तकों को पढ़ने का शौक नाममात्र रह गया है। किसी प्रतिष्ठित परिपक्व कवि को अपनी रचना दिखाने का कष्ट नहीं करते। ऐसे में इन उभरते कवियों की परिपक्वता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। जिन्होंने गम्भीरता से कविता का सृजन को चुना है, वह अवश्य पंजाब की हिंदी कविता के समानान्तर ले जाने में सक्षम होंगे ।

समाज के व्यावहारिक सर्वेक्षण हेतु प्रश्नावली

नाम.......................................

पुरुष/ महिला..............................

उम्र...

कार्य...

शिक्षा..

सम्पर्क: पता...

मो...............................ईमेल.....................

1. इधर का समाज क्या महिलाओं को पुरुषों के बराबर मानता है?

   हाँ

   नहीं

2. इधर के क्षेत्र में महिलाओं को लेकर सुरक्षा स्थिति ठीक है या नहीं?

   हाँ

   नहीं

3. भ्रूण हत्या की समस्या से इधर के लोग मुक्त हुए या नहीं?

   हाँ

   नहीं

4. इधर के क्षेत्र में लोग लड़कियों की शिक्षा के प्रति जागरूक हैं या नहीं?

हाँ

नहीं

5. बुजुर्गों की स्थिति यहाँ के परिवार में ठीक है या नहीं?

हाँ

नहीं

6. इधर के क्षेत्र में बालश्रम करवाया जाता है या नहीं?

हाँ

नहीं

7. आपकी दृष्टि में पराली को जलाना उचित है?

हाँ

नहीं

8. सांप्रदायिक लड़ाइयाँ इधर होती है या नहीं?

हाँ

नहीं

9. इधर का समाज क्या अभी भी जातिवाद को मानता है?

हाँ

नहीं

10. बाज़ार का प्रभाव क्या आपके जीवन पर भी पड़ा है ?

हाँ

नहीं

11. इधर के लोग रोजगार के लिए प्रवास में रूचि रखते हैं ?

हाँ

नहीं

12. क्या यहाँ का युवा रोजगार के अभाव में नशे का शिकार हो रहा है?

हाँ

नहीं

13. क्या आपकी दृष्टि में सभी राजनेता भ्रष्ट होते है?

हाँ

नहीं

14. पहले की तरह मेले और त्यौहार के प्रति इधर के लोग अभी भी उत्सुक रहते हैं?

हाँ

नहीं

15. क्या युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति को छोड़कर पश्चिमी संस्कृति को अपना रही है?

हाँ

नहीं

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-04 No.01 April 2022

पंजाब की 21वीं सदी की हिंदी कविता में चित्रित वैयक्तिक यथार्थ

प्रीति गुप्ता पीएच-डी. शोधार्थी हिन्दी-विभाग समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी फगवाड़ा, पंजाब भारत

डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय सहायक प्राध्यापक हिन्दी-विभाग समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी फगवाड़ा, पंजाब भारत

शोध सारांश:

"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है" ये बात जितने हद तक सही है उतना ही यह भी सही है कि मनुष्य के व्यक्तिगत भाव समाज को समृद्ध और मजबूत बनाते हैं। मनुष्य के लिए समाज वह माध्यम है जो उसे सह-अस्तित्व और सहभागिता का पाठ पढ़ाता है। हम पारिवारिक, सामूहिक, सांगठनिक एवं सामाजिक यथार्थ की बात करते हैं जो बगैर वैयक्तिक संघर्ष को समझे ठीक ढंग से नहीं स्पष्ट किया जा सकता है। वैयक्तिक संघर्ष ही वह स्थिति होती है जो व्यक्ति को सामाजिकता का उच्च आदर्श प्रदान करती है। पंजाब की हिंदी कविताओं में चित्रित वैयक्तिक संघर्ष को अभिव्यक्त करना ही इस शोध लेख का उद्देश्य है।

बीज शब्द: सामाजिकता, वैयक्तिक संघर्ष, चुनौतियों, वैश्वीकरण, युवा, यथार्थ, इक्कीसवीं सदी।

सामाजिकता के घेरे में रहते हुए मनुष्य को कई अनचाही घटनाओं का सामना करना पड़ता है। यह घटनाएं प्राकृतिक हो सकती हैं अथवा मनुष्य जनित भी। मनुष्य विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए और उनके कारण पैदा हुई समस्याओं को झेलते हुए संघर्ष के भी मार्ग पर कदम बढ़ाता रहता है। इस मार्ग पर चलना आसान नहीं होता, मनुष्य को कदम-कदम पर परेशानियां झेलनी पड़ती हैं। मनुष्य जैसे-जैसे आगे बढ़ता है उसकी जिम्मेदारियां भी बढ़ती जाती हैं। ये जिम्मेदारियां व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक होती हैं और ये व्यक्ति को संघर्ष के मार्ग पर बने रहने के लिए प्रेरित करती हैं। व्यक्ति का खुद के लिए किया गया वैयक्तिक संघर्ष दूसरों के लिए भी प्रेरणास्रोत होता है।

समाज के बदलते स्वरूप और परिवेश के कारण मनुष्य का जीवन भी कभी स्थिर नहीं रहता उसमें यथास्थिति परिवर्तन होता रहता है। भविष्य के संभावनाशील होने के कारण मनुष्य अपने वर्तमान से जूझते हुए अपने अस्तित्व की तलाश करता है। जीवन में जीवन में घटित होने वाली छोटी-छोटी घटनाएं उसके अस्तित्व को चुनौती देती हैं। व्यक्ति इन चुनौतियों से जूझता ही नहीं बल्कि इनका समाधान खोजने का भी भरपूर प्रयास करता है। इस प्रकार वैयक्तिक संघर्ष के भाव से ही व्यक्ति में अस्तित्वबोध का भाव जागृत होता है। जीवन को जीते हुए व्यक्ति जो अनुभव प्राप्त करता है उन्हीं से उसके जीवन के सत्य या वैयक्तिक यथार्थ का निर्माण होता है। पंजाब का कवि मनुष्य जीवन को चुनौती देने वाली इन समस्याओं को पहचानता है। उसे पता है कि जिंदगी वही नहीं जो हमें दिखाई देती है। पर्दे के पीछे ऐसी बहुत-सी स्थितियां होती है जो मनुष्य को संघर्ष की दुनिया में धकेलती है। अपने काव्य ग्रंथ *संघर्ष बस संघर्ष* में संकलित कविता 'संघर्ष की विरासत' में शुभ दर्शन कहते हैं-

जिन्दगी वही नहीं मेरे बच्चे
जो हमें दिखाई देती है
पर्दे के पीछे
जन्म से मृत्यु तक
की वह तस्वीरें होती हैं
जो पल-पल

Copyright@ 2022Author

पंजाब की 21वीं सदी की हिंदी कविता में दलित-विमर्श

प्रीति गुप्ता
शोधार्थी, हिंदी-विभाग
समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा
डॉ॰ अनिल कुमार पांडेय, शोध निर्देशक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी-विभाग
समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा

भारतीय भावभूमि पर 'समाज' का अस्तित्व इसलिए है कि सभी एक-दूसरे का सम्मान करें। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का महत्त्व स्वीकार करते हुए उसके सुख-दुःख में सहभागी हों। सहभागिता एक परंपरा बनकर उभरे जिसकी अनुपालना यथार्थतः की जाए, ऐसी कोशिश समाज में वर्तमान होनी चाहिए। समय-दर-समय कोशिश होती रही और समाज विकसित अवस्था को प्राप्त होता रहा। विकास के साथ-साथ मनुष्य पहले संगठनों में और फिर समुदायों में इकट्ठा होता रहा। इकट्ठे संगठन और समुदाय 'समाज' का निर्माण करते हैं। समाज एक अनुबंध के रूप में काम करता है जिसमें शामिल होनेवाले सभी लोग पारस्परिक नियमों और शर्तों को स्वीकार करते हैं। ये शर्त और नियम इस रूप में अधिक कार्य करते हैं कि कोई किसी के सुख में बाधा न बने और दुःख में एकत्रित होकर उसका साथ दें। समाज में शामिल लोग समय-समय पर अनेक प्रकार के परिवर्तन लाते हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया अपनी अवस्था में चलती रहती है।

समाज धीरे-धीरे और अधिक विकसित होता है। समाज के विकास के साथ-साथ शक्ति और सत्ता का आविर्भाव होता है और फिर यहीं से सामाजिक नियमों की निर्मिति अलग रूप में होने लगती है। समाज के विकास में अनेक कारक अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं जिसमें धर्म, संस्कृति, जाति, वंश, वर्ग शामिल किए जा सकते हैं। समाज पहले वर्ण-वर्ग के रूप में विभाजित होना शुरू होता है उसके बाद धर्म और संस्कृति के आधार पर। चतुर्वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की व्यवस्था होती ही इसलिए है कि लोग कर्म के आधार पर अपना कार्य अपनाएँ और समाज में खुलकर बगैर किसी हस्तक्षेप के अपना कार्य करें।

समय के साथ-साथ नियमों और शर्तों में परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के तहत जो वर्ण-व्यवस्था कभी कर्म के आधार पर निर्मित होती थी वह 'जाति' और 'वंश' के आधार पर निर्मित होने लगी। 'उच्च जाति' और 'निम्न जाति' का प्रादुर्भाव यहीं से शुरू होता है। ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ बालक ब्राह्मण, क्षत्रिय के घर में क्षत्रिय, वैश्य के घर में वैश्य और शूद्र के घर में पैदा हुआ तो शूद्र। यह स्थिति एक परंपरा-सी बनती गई। आज के दिन में इसी को यथार्थ माना जाना लगा है और लोग इसी के अनुसार जीने के लिए अभ्यस्त होने लगे हैं।

ISSN 0975-735X

15:52

21 वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना

प्रीति गुप्ता
शोधार्थी, एलपीयू,फगवाड़ा एवं
सहायक प्राध्यापक, एमएम (डीयू), मुलाना
डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा

मानव सभ्य हो या बर्बर, प्रकृति की संतान है, उसका स्वामी कदापि नहीं। किंतु आज का मानव इस बात को पूरी तरह से भूल चुका है। वह अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्रकृति का दोहन कर उसके स्वनियमित संतुलन को बिगाड़ रहा है। परिणामस्वरूप प्रदूषण या प्राकृतिक असंतुलन जैसी समस्याओं का फैलाव हो रहा है। पर्यावरण संरक्षण आज विश्व का सर्वाधिक चर्चा का विषय बन चुका है। सम्मेलनों, संगोष्ठियों तथा अन्य प्रचार माध्यमों द्वारा जनमत को इस विषय में जागरूक करने के प्रयास लगातार हो रहे हैं। समाजविदों, भूगोलविदों, जीववैज्ञानिकों एवं चिकित्सा वैज्ञानिकों के साथ-साथ आधुनिक साहित्यकार भी पर्यावरण संरक्षण को अपनी लेखनी का विषय बना रहे हैं। 21वीं सदी के पहले के साहित्य में पर्यावरण चेतना का स्वर उतना अधिक मुखरित नहीं था। इसका कारण यह है कि तब प्रकृति के तत्त्वों में विकार की समस्याएँ दृष्टिगोचर नहीं होती थीं। 20वीं सदी के अंत में भारत सरकार द्वारा ग्लोबलाइजेशन का कांसेप्ट अपनाया गया। इस भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप औद्योगीकरण, नगरीकरण, यांत्रिक तकनीक के अत्यधिक प्रसार, कोयले तथा पेट्रो पदार्थों के जलने से निकलने वाली जहरीली गैसें, प्राकृतिक उपादनों का अनियमित दोहन, पेड़ों की अंधाधुंध कटाई आदि ऐसे मूलभूत कारण हैं जो पर्यावरणीय प्रदूषण के लिए उत्तरदायी हैं। वर्तमान सदी में स्थितियाँ इतनी भयावह हो गई हैं कि पर्यावरण प्रदूषण समाज की सबसे बड़ी चिंता बन चुका है। समाज की चिंता से स्वयं को जोड़ना और उसकी अभिव्यक्ति करना कवि या साहित्यकार का मुख्य कर्म होता है। 21वीं सदी के पंजाब के हिंदी कवि अपने इस कर्तव्य का निर्वाह अपनी लेखनी के माध्यम से भली-भांति करते हैं। उसकी दृष्टि समाज की जिन विषमताओं और विद्रूपताओं की ओर गई है उनमें पर्यावरण प्रदूषण प्रमुख है। प्रकृति का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जो उसकी कलम से अछूता रहा हो। 21वीं सदी के पंजाब के हिंदीकवि संघर्ष और चेतना के कवि हैं। वे इस बात से पूरी तरह भिज्ञ हैं कि पर्यावरण प्रदूषण जनजीवन में विभिन्न रोगों को उत्पन्न करेगा जिससे संपूर्ण मानवजाति खतरे में पड़ जाएगी। इस गंभीर विषय में दो-चार लोगों के चिंतन करने से कुछ लाभ न होगा अपितु पर्यावरण संरक्षण के लिए जनजागरण की आवश्यकता है। वर्तमान हिंदीकवि अपनी कविता के माध्यम से इसी जनआंदोलन के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं। वह संपूर्ण मानवजाति को पृथ्वी की रक्षा करने के लिए आग्रह करते हुए कह उठता है–

धरती कर रही चीत्कार/ लगा रही अपने बच्चों से गुहार

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक),

गुरु फाउंडेशन, रोहतक (हरियाणा)

एवं

संगम ISSN : 2321-8037 अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि

श्री/श्रीमती/डॉ. प्रीति गुप्ता, शोधार्थी

संस्था/पता लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

ने दिनांक 4 सितम्बर 2022 को

हिन्दी भाषा : शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के संदर्भ में

विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता की तथा

सामाजिक उत्थान में पंजाब की आधुनिक कविता का योगदान

विषय पर अपना शोध आलेख प्रस्तुत किया।

डॉ. अरूणा अंचल	डॉ. रेखा सोनी	विकास	अनिल कुमार
अधिष्ठाता एवं विभागाध्यक्षा	सम्पादक	संयोजक	महासचिव

ABVHU/24-25/02/22-141

आज़ादी का अमृत महोत्सव

अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय

भोपाल, मध्यप्रदेश

एवं

साहित्य संचय शोध संवाद फाउंडेशन (रजि.)

सोनिया विहार, दिल्ली

दो दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता

प्रमाण-पत्र

24-25 फरवरी 2022

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री/श्री : प्रीति गुप्ता, शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब ने अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश एवं साहित्य संचय शोध संवाद फाउंडेशन, दिल्ली, द्वारा 24-25 फरवरी, 2022 को 'हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता' विषय पर आयोजित दो दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया एवं पंजाब की आधुनिक कविता में राष्ट्रीय-भावना विषय पर अपना शोधालेख प्रस्तुत किया।

प्रो. खेमसिंह डहेरिया
कुलपति
अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय
भोपाल

श्री यशवंत सिंह पटेल
कुलसचिव
अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय
भोपाल

मनोज कुमार
संस्थापक एवं रा. अध्यक्ष
साहित्य संचय शोध संवाद फाउंडेशन
दिल्ली

सुमन रानी
रा. सचिव
साहित्य संचय शोध संवाद फाउंडेशन
दिल्ली

संजय कुमार
रा. उपसचिव
साहित्य संचय शोध संवाद फाउंडेशन

विलक्षणा : एक सार्थक पहल समिति,
अजायब, रोहतक (हरियाणा) (रजि. : 02314)
सरस्वती साहित्य संस्थान एवं
चरखी दादरी (हरियाणा) (रजि. : 02812)
गीना देवी शोध संस्थान
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी (हरियाणा)

के संयुक्त तत्त्वाधान में आयोजित
हिन्दी साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति
एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय (Multi Disciplinary) संगोष्ठी

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि
श्री/श्रीमती/डॉ. प्रीति गुप्ता
संस्था/स्थान शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालंधर

ने दिनांक 09 जनवरी 2022 को हिन्दी साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति विषय पर जनता कॉलेज, चरखी दादरी (हरियाणा) में आयोजित एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता की और पंजाब की 21वीं सदी की हिंदी कविता में जन जीवन का चित्रण विषय पर अपना शोध-आलेख प्रस्तुत किया।

डॉ. सुलक्षणा अहलावत, अध्यक्षा
विलक्षणा : एक सार्थक पहल समिति

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
महासचिव, सरस्वती साहित्य संस्थान

डॉ. वनिता कुमारी
समन्वयक

डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
संयोजक/सचिव

क्र.सं.- 123

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक : 25.08.2021

विषय : अस्मितामूलक विमर्श के विविध आयाम

प्रमाणित किया जाता है कि ...प्रीति गुप्ता...

पता शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालंधर...

ने विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग द्वारा आयोजित अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी में 21वीं सदी के पंजाब की हिंदी कविता में पर्यावरण विमर्श... शीर्षक आलेख प्रस्तुत किया/सहभागिता दी।

संयोजक
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

अध्यक्ष
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

विलक्षणा : एक सार्थक पहल समिति
अजायब, रोहतक (हरियाणा) (रजि.),
इण्डो-यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन)
एवं
बोहल शोध मंजूषा
ISSN 2395:7115
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी (हरियाणा)
के संयुक्त तत्त्वाधान में आयोजित
महिला सशक्तिकरण : विविध आयाम
दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय (Multi Disciplinary) सेमिनार

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/डॉ. प्रीति गुप्ता, शोधार्थी
संस्था/स्थान लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब
ने दिनांक 13-14 मार्च 2021 को महिला सशक्तिकरण : विविध आयाम विषय पर
जयपुर, राजस्थान में आयोजित दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में सहभागिता
की और पंजाब की आधुनिक कविता में महिला सशक्तिकरण
की अभिव्यक्ति विषय पर अपना शोध-आलेख प्रस्तुत किया।

डॉ. सुलक्षणा अहलावत, अध्यक्षा
विलक्षणा : एक सार्थक पहल समिति

राकेश शंकर भारती, अध्यक्ष
इण्डो-यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन)

डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
संयोजक/सम्पादक